घाट भुलाना बाट बिनु

आचार्य रजनीश

सम्पादक
डॉक्टर रामचन्द्र प्रसाद
एम० ए०, पी० एच-डी० (एडिनबरा)
डी० लिट० (पटना)

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

जादूगर आनन्द के लिए—

रामचन्द्र

अन्तर्वस्तु

१. आमुख ... १
२. आदेश नहीं, निवेदन ... १२
३. नया वर्ष : नया संदेश ... २५
४. अनजाना ही जीवन है ... ३७
५. सरलता, सजगता और शून्यता ... ५५
६. जीवन और मृत्यु ... ७६
७. ज्ञान–गंगा ... ९५
८. कृष्ण की अनासक्ति, बुद्ध की उपेक्षा, महावीर की वीतरागता, क्राइस्ट की तटस्थता ... १२४
९. व्यक्ति को शांति और समाज को क्रांति ... १३५
१०. प्रेम नगर के पथ पर ... १४५
११. जीवन–एक स्वप्न ... १६२
१२. धर्म मनुष्य–केन्द्रित हो ... १८५

आमुख

आचार्य रजनीश के प्रवचनों में रहस्य और अर्थ का रचनात्मक सम्मिश्रण मिलता है और उनके व्यक्तित्व में तरलता एवं सुदृढ़ता का मणि-कांचन संयोग। वे निर्भीक हैं, फिर भी उनमें उस व्यक्ति की झिझक है जो जाड़े में किसी जल-प्रवाह को पैदल चलकर पार करता हो! वे जागरुक हैं, फिर भी उस व्यक्ति के समान हैं जो चारों ओर अपने पड़ोसियों से भयभीत हो!

वे उस बर्फ की तरह तरल हैं जो पिघल रही हो!

वे ठोस हैं मानों कोई अनगढ़ा काठ हों!

वे प्रशस्त हैं मानों कोई उपत्यका हों!

वे मलिन हैं मानों पंकिल जल हों![1]

---

१. दे० लाओत्से, ताओ-तेह-किंग, अध्याय १५।

यदि उनके प्रवचन अगाध प्रतीत होते हैं तो इसका कारण यह है कि वे निस्सीम हैं; यदि वे दुर्ग्राह्य हैं तो इसका कारण यह है कि वे जीवन्त हैं। आचार्यजी ग्रन्थों और विश्वासों के उस पार जाते हैं जहाँ स्वयं जीवन है। वे चाहते हैं कि हम जीवन से, स्वयं से संयुक्त हो जायँ और हम में इस ज्ञान का उन्मेष हो कि हम वस्तुतः क्या हैं। मोहनिद्रा में डूबा हुआ व्यक्ति अपने को संसार में पाता है सही, परन्तु संसार उसे स्वयं से पृथक् और नितान्त भिन्न दीख पड़ता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसका यह अहं किसी अज्ञात समष्टि का एक खंड-मात्र है, एक ऐसा खंड जो उन सारे अन्यांन्य खंडों से कभी तो संत्रस्त होता है, कभी सुखी जिनसे उसका सम्पर्क स्थापित होता है। इस प्रकार वह जिस स्थिति से वस्तुओं का संचालन करता है वह (स्थिति) उन वस्तुओं से सर्वथा पृथक् और बाहर होती है तथा उसका जीवन अपने ही भिन्न-भिन्न खंडों का हस्तविधान अथवा परिचालन-मात्र रह जाता है। जीवन से विच्छिन्न होने के कारण समंजन के लिए वह जो प्रयास भी करता है वह पूर्णता के बोध से नियमित न होने के कारण विफल हो जाता है। इस प्रकार उसका सारा जीवन उन खंडों से ही संघर्ष करने में बीत जाता है जो उसके अनुमान के बाहर थे।

बौद्ध धर्मगुरुओं की तरह आचार्य रजनीश की भी यह मान्यता रही है कि सामान्य व्यक्ति का आन्तरिक जीवन बाह्य विखंडन का ही हूबहू प्रतिबिम्ब होता है। वस्तु-जगत् से उसका विच्छेद निज से विच्छिन्न होने का द्योतन करता है और उसे ऐसा लगता है कि वह चाहे जिस बिंदु से स्वयं तक पहुँचने की कोशिश करे, उसे न तो अपनी पूर्णता का एहसास हो सकता है और न किसी योजना को कार्यान्वित करने के लिए उसकी सारी शक्तियाँ केन्द्रीभूत हो सकती हैं। जब अपने शब्दों या कार्यों के माध्यम से वह आत्माभिव्यक्ति का प्रयास करता है तब उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह उनमें पूर्णतया—अपनी समस्त सत्ता के साथ—वर्तमान नहीं हो सकता और चूँकि उसकी प्रतिक्रियाएँ उसके किसी खंड-विशेष से ही अनुमोदित एवं निस्सृत होती हैं, इसलिए उन्हें पूर्ण आप्तता भी मिली नहीं होती। कोई भी व्यक्ति तब तक एकनिष्ठ और हार्दिक नहीं हो सकता जब तक उसे अपनी पूर्णता की उपलब्धि नहीं हो गई रहती। जब तक उसकी क्रिया में कर्ता अपनी पूर्णता में वर्तमान नहीं रहता

तब तक क्रिया दिखावे की क्रिया—अभिनय-मात्र—रहती है, असत्य होती है। जिस अनुपात में हम स्वयं और जगत् से विच्छिन्न होते हैं उसी अनुपात में हमारा आन्तरिक जीवन तथा जगत् के साथ हमारे व्यवहार असत्य हुआ करते हैं। अपने सच्चे स्वरूप से अनभिज्ञ होना ही इन दोनों विच्छेदों का मूल कारण है। जीवन से उन्मूलित एवं अपने ही स्वरूप से अनभिज्ञ होने के कारण हम दुखी हैं। आचार्यजी का लक्ष्य मानवता को इस दुख से मुक्त करना है। ध्यान-सम्प्रदाय के आचार्यों की तरह वे भी कहते हैं :

सामने शून्य जगत् में जो परिवर्तन हो रहे हैं
वे अज्ञान के कारण ही यथार्थ दीख पड़ते हैं;
सत्य के पीछे दौड़ने की कोशिश मत करो,
केवल मन की सारी आस्थाओं और विचारों को छोड़ दो।

"लंकावतारसूत्र' में कहा गया है कि परमार्थ (परम सत्य) आर्यज्ञान के माध्यम से उपलब्ध आन्तरिक अनुभूति की अवस्था है और चूंकि यह शब्दों और विचारणाओं की परिधि के बाहर है, इसलिए इनके द्वारा इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। आचार्यजी भी कहते हैं कि जहाँ परम सत्य आत्म-अनात्म के विरोध से परे होता है, वहीं दूसरी ओर शब्द द्वैत-मूलक चिन्तन से उत्पन्न होते हैं। परम सत्य वह आत्मा ही है जो सभी बाह्य एवं आभ्यन्तर रूपों से मुक्त होती है। इस कारण शब्द आत्मा का वर्णन नहीं कर सकते, विवेक-बुद्धि इसे प्रकाशित नहीं कर सकती। 'द्वैत के साथ रुकना' अशोभन है :

ज्योंही सत्-असत् का द्वैत खड़ा होता है,
भ्रान्ति पैदा होती है, मन खो जाता है।

आचार्यजी का लक्ष्य वही है जो ध्यान-सम्प्रदाय के धर्मनायकों का लक्ष्य माना जाता रहा है :

धर्मग्रन्थों से परे एक विशेष संप्रेषण;
शब्दों और वर्णों पर निर्भर न होना;
मनुष्य की आत्मा की ओर सीधा संकेत;

अपने स्वभाव का साक्षात्कार और बुद्धत्व की प्राप्ति।

हम अपने मन को पहचानें, देखें। इसकी गति-विधि का निरीक्षण करें :

जिसे तुम चाहते हो, उसे उसके विरुद्ध खड़ा कर देना।
जिसे तुम नहीं चाहते—मन का सबसे बड़ा रोग है।
जब पथ के गूढ़ अर्थ का पता नहीं होता,
तब मन की शान्ति भंग होती है, जीवन व्यर्थ होता है।

निरीक्षक पक्ष-ग्रहण न करे, बल्कि अपनी वासनाओं, विचारों को ऐसे ही देखे 'जैसे कोई सागर पर खड़ा हो, सागर की लहरों को देखता हो।' कृष्णमूर्ति ने इसे निर्विकल्प सजगता कहा है। *यह बिलकुल तटस्थ निरीक्षण है।*[1] जेन निकाय (ध्यान–सम्प्रदाय) के धर्माचार्यों के अनुसार :

धर्म-पथ में कठिनाइयाँ नहीं होतीं;
केवल यह किसी का पक्ष-ग्रहण नहीं करता,
वरन् घृणा और प्रेम से परे होकर
यह पूर्ण और निरावरण प्रकट होता है।
पथ अनन्त शून्य की तरह पूर्ण है,
न कुछ अधिक है और न कुछ कम;
जब हम चुनाव करते हैं,
तभी इसकी तथता अदृश्य हो जाती है।
बाहरी बंधनों का पीछा मत करो
और न अन्तस् के शून्य में ही रमो;
जब मन वस्तुओं के अद्वैत में शान्तिपूर्वक निवास करे
तब द्वैत का आप ही विलोप हो जाता है।

सत्य की सहज अनुभूति पर बल देते हुए आचार्यजी कहते हैं कि हम इसके सम्बन्ध में लच्छेदार प्रवचनों के श्रवण–मात्र से ही संतुष्ट न होकर जीवन की गंगा में उतरें और उसके सहज अमृत का पान करें। सत्य की प्यास तब तक नहीं मिटती जब तक हम यथार्थ के संजीवन जल का पान नहीं करते। आत्मज्ञान और मोक्ष की उपलब्धि केवल सुनने और सोचने से नहीं होती। कल्पना कीजिए कि किसी मरुभूमि में—जहां की धरती तप रही हो और जहां न वृक्षों की शीतल छाँह हो और न जलाशय, कोई यात्री पश्चिम से पूर्व की ओर जा रहा है। रास्ते में उसकी भेंट एक ऐसे यात्री से होती है जो पूर्व से आ रहा है और वह उससे पूछ बैठता है : 'महाशय, मुझे बहुत प्यास लगी है, क्या आप बता

---

१. साधना-४४, ५०, ५४।

सकते हैं कि मुझे वह जलाशय कहाँ मिलेगा जहाँ मैं अपनी प्यास बुझा सकूँगा ?' पूर्व से आनेवाला यात्री कहता है : 'मित्र, कुछ दूर जाने पर तुम्हें दो पगडंडियाँ मिलेंगी। एक दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर जाती है। तुम उस पर चलो जो दाहिनी ओर जाती है। कुछ दूर चलने पर तुम्हें एक जलाशय मिलेगा और वहीं प्राणों को परितृप्त करनेवाला अमृत-तुल्य शीतल जल और छाँह भी।' क्या जलाशय और छाँह के वर्णन से वह प्यासा यात्री परितृप्त हो गया होगा ? उसे शान्ति तो तभी मिली होगी जब जलाशय के पास पहुँचकर उसने उसके जल में स्नान किया होगा और उसका जल पीकर अपनी प्यास बुझायी होगी। धर्म की बातें सुनने, उन पर विचार करने और बुद्धि की सहायता से उन्हें समझ लेने से ही कोई ज्ञानी नहीं हो जाता। यदि तथागत एक और कल्प तक जीवित रहकर हमें इस बात के लिए आश्वस्त कर लेते कि अमृत का स्वाद, उसकी सुरभि, उसकी संजीवनी शीतलता अपूर्व होती है, तो क्या हम उनके वर्णनों से अमृत का स्वाद चख लेते ? हमें इस बात का ज्ञान हो जाता कि अमृत कैसा होता है ? उनके वर्णनों से क्या सचमुच अमृत का पान कर लेते ?

कदापि नहीं।

केवल श्रवण और चिन्तन से हमें प्रज्ञापारमिता के सच्चे स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता।

जिस प्रकार आचार्यजी के प्रवचन, उनके शब्द उनकी निजी अनुभूतियों से निस्सृत होते हैं, उसी प्रकार हमारा धर्म, हमारा सत्य हमारे जीवन में न्यस्त और हमारी निजी अनुभूतियों पर आधारित रहे। यदि घर लौटने की अभीप्सा हो तो हम अपनी राह स्वयं ही खोज निकालें। सत्य की खोज कर रहे हों तो जीवन में पुनः प्रवेश करें जिससे वस्तु-जगत् स्वयं से पृथक् और बाहर न दीख पड़े। जीवन के साथ संयोग होने पर ही जगत् अपना हो जाता है; हम उसके प्राणों में उसी प्रकार स्पंदित होने लगते हैं जिस प्रकार वह हमारे प्राणों में स्पंदित होने लगता है। जीवन उन अनेकानेक खंडों का संग्रह-मात्र नहीं रह जाता जिनका सम्बन्ध केवल बाह्य एवं दैवकृत होता है। इसकी सजीव पूर्णता में खंडों का अपना अस्तित्व तो रहता ही है, पर साथ ही वे समग्र के साथ भी पूर्णतया संयुक्त हो जाते हैं। सभी पदार्थों की एकता उसके आन्तरिक जीवन की अखंडता में प्रतिबिम्बित होने लगती है और उसके बायें हाथ को दाहिने हाथ की गति-विधि का पूरा-पूरा पता रहने लगता है। उसकी शक्तियाँ अपनी ही सत्ता की

भिन्न-भिन्न टुकड़ियों के परस्पर संघर्ष के कारण छिन्न-भिन्न नहीं होतीं, जिसके परिणामस्वरूप जीवन के प्रत्येक पल के प्रति वह सजग रहता है, उसका उपयोग करता है। उसके क्रिया-कलाप उसके व्यक्तित्व की समग्रता से उत्पन्न होने के कारण समग्रता से मंडित होते हैं, उसका जीवन खंडों से परिचालित नहीं होता और न खंडों का परिचालन-मात्र होता है।

जीवन और स्वयं के साथ ऐसे निरुपाधिक संयोग को जीवन की स्वीकृति अथवा उसके साथ पुनर्मैत्री-मात्र नहीं कह सकते। विवश होकर अपने भाग्य से संतुष्ट हो रहने में अथवा संसार जैसा भी हो उसे उसी रूप में स्वीकृत कर लेने में द्वैत अवश्य है, क्योंकि तब भी हम उससे पृथक् होते हैं जिसके साथ हमारा समझौता हुआ रहता है। स्वीकृति और त्याग, दोनों के मूल में पार्थक्य का भाव रहता है। परन्तु किसी के साथ पूर्णरूपेण एक हो जाना स्वीकृति और निरसन से परे होता है। ऐसे एकीकरण का मूलाधार निस्स्वार्थ प्रेम है। प्रेम का यही चमत्कार है कि जहाँ एक ओर तो वह तर्क के नियमों का अतिक्रमण कर व्यक्तित्व से ऊपर उठ जाता है, वहीं दूसरी ओर वह व्यक्तित्व को पोषित और समृद्ध करता है। प्रेम पार्थक्य की भावना पर विजय पाता है, पर इस भावना को मिटने नहीं देता। यदि पार्थक्य ही अन्तिम सत्य होता तो न तो सच्चे सम्पर्क की सम्भावना रह जाती और न सच्चे प्रेम की। इसके विपरीत यदि पार्थक्य न होता तो वे ध्रुव भी नहीं होते जिनके बीच प्रेम फलित होता है। इस प्रकार यदि अ और ब में प्रेम है तो इसमें सन्देह नहीं कि यद्यपि अ अ है और ब ब, फिर भी अ ब है और ब अ। जीवन के साथ ऐसा ही प्रेम-पूर्ण संयोग स्थापित करना आचार्यजी का लक्ष्य है।

ध्यान-सम्प्रदाय के धर्मगुरुओं के समान उन्होंने भी प्रेम के महत्त्व का गुणगान किया है और बताया है कि सच्चे प्रेम में भय नाम की कोई चीज नहीं होती। धर्मभीरु लोग तथा ईश्वर से डरनेवाले पुजारी धार्मिक नहीं होते। जब जीवन अपने प्रत्येक पल में परिपूर्ण होता है तब उसमें कल की चिन्ता का स्थान नहीं रह जाता। चिन्ता तो जीवन से विच्छिन्न होने का प्रमाण है; इसका आधार यह भय है कि हमारी आशाएँ फलीभूत नहीं होंगी अथवा हमने क्षण भर के लिए जिसे पकड़ रखा है वह हमसे खो जायगा। आचार्यजी यह नहीं मानते कि प्रेम के जीवन में समस्याएँ उत्पन्न नहीं होतीं; वस्तुतः चुनौतियाँ और संघर्षों के ताने-बाने से ही जीवन का सच्चा निर्माण होता है। जहाँ जीवन के

साथ संयोग होता है, वहाँ समस्याएँ अहंकार द्वारा प्रक्षिप्त न होकर यथार्थ होती हैं और वहीं उनके उत्तर कृत्रिम एवं ढुलमुल न होकर रचनात्मक तथा हार्दिक होते हैं। जीवन के साथ समंजित और अभिन्न रहनेवाला व्यक्ति भी एक-न-एक दिन मरता ही है, पर उसकी मृत्यु विशिष्ट प्रकार की होती है। चूंकि मृत्यु उसे बाहर से धराशायी नहीं करती, इसलिए वह उससे भयभीत नहीं होता। वह अपनी मृत्यु के साथ भी उसी प्रकार एकरूप एवं अभिन्न रहता है जिस प्रकार अपने जीवन के साथ। वस्तुतः एक विचित्र प्रकार से वह जीवन-मरण से परे होता है। उसके लिए नित्यता (eternity) कोई मरणोत्तर दशा नहीं होती; वर्तमान क्षण की अनन्तता को काम में लाना ही उसकी दृष्टि में नित्यता का जीवन है।

आचार्यजी द्वारा प्रदत्त निम्नलिखित दस सूत्र चिरस्मरणीय हैं :

१. किसी की आज्ञा कभी मत मानो जब तक कि वह स्वयं की ही आज्ञा न हो;

२. जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है;

३. सत्य स्वयं में है, इसलिए उसे और कहीं मत खोजना;

४. प्रेम प्रार्थना है;

५. शून्य होना सत्य का द्वार है; शून्यता ही साधन है, साध्य है, सिद्धि है;

६. जीवन है, अभी और यहीं;

७. जियो, जागे हुए;

८. तैरो मत—बहो,

९. मरो प्रतिपल ताकि प्रतिपल नए हो सको;

१०. खोजो मत; जो है—है; रुको और देखो।

वे तैरने की सलाह न देकर बहने का परामर्श देते हैं। उनकी दृष्टि में हमारी महत्त्वाकांक्षाएँ जीवन को आमूल विपाक्त कर डालती हैं। वे जानते हैं कि—

यदि योग्यता की पदमर्यादा न बढ़े तो न विग्रह हो और न संघर्ष।

यदि दुर्लभ पदार्थ वरीय न बनें तो लोग दस्युवृत्ति से भी मुक्त रहें।

यदि उसकी ओर जो स्पृहणीय है उनका ध्यान आकृष्ट न किया जाय तो उनके हृदय अनुद्विग्न रहें।

इसलिए सन्त और ज्ञानी अपनी शासन-व्यवस्था में उनके उदरों को भरते किन्तु उनके हृदयों को शून्य करते हैं; वे उनकी हड्डियों को दृढ़तर बनाते

पर उनकी इच्छाशक्ति को निर्बल करते हैं।[1]

रुकना और देखना अनिवार्य है :

पकड़ने और भरने से रुक जाना ही अधिक श्रेयस्कर है।
यद्यपि तलवार को तीक्ष्ण करने में आप इसकी धार को महसूस कर सकते हैं,
परन्तु दीर्घावधि तक इसकी तीक्ष्णता का आश्वासन नहीं दे सकते।
सोने और हीरे से भरे हुए भवन की कोई रक्षा नहीं कर सकता।
समृद्धि और सम्मान से औद्धत्य उत्पन्न होगा ही; इसलिए उनके पीछे-
पीछे असत् का चलना स्वाभाविक है।
कार्य की सफल निष्पत्ति के उपरान्त (जब कर्ता का यश फैलने लगे)
ओझल हो जाना ही स्वर्गिक ताओ है।[2]

जैन तत्त्वज्ञानियों के अनुसार परमात्मा जीवन का पर्याय है। वह हमसे परे नहीं है, बल्कि हममें ही है, हम वही हैं। आचार्यजी भी कहते हैं कि जो जीवन को जान लेता है, वह सब जान लेता है—जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है। अपने मनोभावों के समुचित सम्प्रेषण के लिए वे द्वैतमूलक भाषा का प्रयोग करते हैं, उन लोगों की भाषा में अपने मनोभावों को व्यक्त करते हैं जो द्वैत के दास हैं, पर साथ ही वे यह भी चाहते हैं कि ऊर्ध्वगमन की यात्रा में हम इस भाषा तक ही न रुककर इससे आगे बढ़ें। आचार्यजी भी जैन धर्माचार्यों की तरह कहते हैं कि सच्चे धर्म की जड़ें व्यक्तिगत अनुभूति में होती हैं और सभी कार्य तभी तक उपयोगी होते हैं जब तक वे, तत्त्वतः, सर्जनात्मक हैं। परन्तु वे कार्य जो किसी सम्प्रदाय या धर्म-निकाय के सिद्धान्तों का अंधानुगमन-मात्र करते हैं अथवा उनके ही सिद्धान्तों से अनुशासित होते हैं, सर्जनात्मक नहीं हो सकते। यही कारण है कि विश्व के सभी तत्त्वदर्शी सर्जक और क्रान्तिकारी रहे हैं। यदि बुद्ध भी अपने समसामयिकों की चित्तवृत्ति से प्रभावित होकर उनका-सा ही आचरण करते तो इतिहास की दृष्टि में उनके अस्तित्व का क्या मूल्य होता ?

ध्यान-सम्प्रदाय के आचार्यों के इस मत को आचार्य रजनीश भी स्वीकार करते हैं कि न कहीं कोई 'सृजनहार', 'जगत्कर्ता', 'जगदीश्वर' या 'विधाता' है

१. ताओ-तेह-किंग, अध्याय ३ (अनुवाद—लेखक)।

२. उपरिवत्, अध्याय ९।

और न कहीं कोई भगवान-जैसी चीज। स्वयं के अतिरिक्त ऐसा कोई भी व्यक्ति या वस्तु नहीं जिस पर हम निर्भर हो सकें। हमें यह स्वीकार करना होगा कि जहाँ बुद्धदेव, लाओत्से, ईसा मसीह प्रभृति चेतनाओं की अनुभूतियों में मौलिक समानता मिलती है, वहीं दूसरी ओर उनके अनुयायियों द्वारा रचे गए धर्मों के स्वाँग में विषमता ही अधिक है, समानता कम। चूँकि सत्य का सम्बन्ध व्यक्तिगत अनुभूति से है, इसलिए सम्प्रदायों से, उनकी अराजकता से, इसे मुक्त करना ही होगा। आचार्यजी जिसे परम सत्य कहते हैं उसे उस बौद्धिक तल पर ग्रहण नहीं किया जा सकता जिस पर हम जीवन की भिन्न-भिन्न समस्याओं को ग्रहण करते या समझने की चेष्टा करते हैं।

जब अद्वैत का पूरा ज्ञान नहीं होता,
तभी दो तरह की हानियाँ होती हैं—
सत्ता की अस्वीकृति इसके नितान्त निषेध की ओर प्रवृत्त कर सकती है जब कि शून्यता की स्वीकृति स्वयं अपने ही निषेध का कारण बन जाती है।
शब्दबाहुल्य और ऊहापोह—
इनके साथ रहना ही लक्ष्य से दूर भटक जाने का प्रमाण है;
इसलिए छोड़ें हम शब्दों को, त्यागें अपनी बुद्धिक्रियाओं को………।
मूल की ओर लौटने पर ही अर्थ का लाभ होता है।
जब हम बाहरी वस्तुओं का अनुगमन करते हैं, विवेक का लोप हो जाता है।
ज्योंही हम भीतर से प्रबुद्ध होते हैं,
दृश्य जगत् की शून्यता के उस पार चले जाते हैं।

आचार्यजी के 'उपदेशों' को समझने के लिए दृष्टि की नमनीयता एवं उदारता अनिवार्य है। नमनीयता मुक्तचित्तता का पर्याय है। उनके प्रवचनों में दृष्टि की उन्मुक्तता का वैसा ही आह्लादजनक वातावरण मिलता है जैसा जेन धर्मनायकों की शिक्षाओं में। गौतम बुद्ध की तरह वे भी कहते हैं : 'हम अपना दीप आप बनें, अपनी ही शरण में जाएँ; किसी बाहरी शरणालय की खोज न करें। सत्य के दीपक को पकड़ रखें, सत्य के आसरे को न छोड़ें। स्वयं के अतिरिक्त किसी अन्य शरण की तलाश न करें। वे लोग, जो आज या कल—मेरी मृत्यु के अनन्तर—अपना दीपक आप बनेंगे, जो किसी बाहरी आसरे पर निर्भर न होंगे वरन् सत्य को अपना दीपक मान उससे ही संलग्न रहेंगे, जो सत्य को अपना आसरा मान उसे पकड़ रखेंगे और अन्य किसी आश्रय की तलाश

नहीं करेंगे, जो अपने सिवा किसी अन्य पर निर्भर नहीं होंगे—वे लोग (ज्ञान के, सत्य के) सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ होंगे।'

सिद्धान्तों ने सत्य की बुरी तरह हत्या कर दी है। लोग अपने भीतर देदीप्यमान आत्मा को नहीं देखते, सिद्धान्तों में परमात्मा की तलाश करते हैं।

कहा जाता है कि शोदाई एरो जो ध्यान की शिक्षा ग्रहण करना चाहता था, बासो के पास आया। ध्यानाचार्य ने पूछा : तुम्हारा आना किस लिए हुआ है ?'

'मुझे ज्ञान चाहिए, मैं बुद्ध-ज्ञान की प्राप्ति के लिए लालायित हूँ।'

'बुद्ध-ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है, ऐसे ज्ञान का सम्बन्ध शैतान से है।'

जब एरो ने आचार्य की बात नहीं समझी तब आचार्य ने उसे सेकितो नामक एक अन्य ध्यानाचार्य के पास भेज दिया। एरो ने आते ही सेकितो से पूछा :

'बुद्ध कौन है ?'

'तुममें बुद्धत्व के लक्षण नहीं हैं ?'

'पशुओं के बारे में आपकी क्या राय है ?'

'उनमें है।'

'तब मुझमें क्यों नहीं ?' एरो ने स्वाभाविक जिज्ञासा से यह प्रश्न किया।

'क्योंकि तुम पूछते हो।' सेकितो ने जवाब दिया।

आचार्य के इस कथन से एरो की उलझन मिट गई और उसे ज्ञान हो गया।

आचार्यजी भी चाहते हैं कि व्यक्ति मान्यताओं और विश्वासों में न पड़े, क्योंकि वह दिशा अनुभव और ज्ञान की दिशा नहीं है। विचार कभी भी ज्ञात के पार नहीं ले जाते।

वे जीवन की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं।

जीवन है अभी और यहीं।

उसमें उतरा जा सकता है।

मृत्यु या तो भविष्य में है या अतीत में, वर्तमान में कदापि नहीं। लेकिन जीवन तो सदा वर्तमान में है, वह वर्तमान ही है। इसलिए उसे जाना जा सकता है, उसे जिया जा सकता है—उसके सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता नहीं है। वस्तुत: उसके सम्बन्ध में विचार करनेवाले लोग उसे चूक जाते हैं—कारण, विचार की गति अतीत और भविष्य में ही होती है।

विचार वर्तमान में नहीं होता; वह भी मृत है, मृत्यु का सहधर्मी है। उसमें जीवन के तत्त्व नहीं हैं।

इसलिए जीवन का विचार नहीं होता, होती है अनुभूति।

अनुभूति है निर्विचार, निःशब्द, मौन, शून्य। इसलिए निर्विचार चैतन्य को वे 'जीवनानुभूति का द्वार' कहते हैं। जीवन को जान लेनेवाले लोग मृत्यु को भी जान लेते हैं, क्योंकि 'मृत्यु जीवन को न जानने में पैदा हुआ भ्रम-मात्र है।' जो जीवन को नहीं जानता, वह स्वभावतः शरीर को ही 'स्वयं' मान लेता है। चूँकि शरीर मरता-मिटता है और इसकी इकाई विसर्जित होती है, इसलिए इससे ही इसके पूर्ण अंत होने की धारणा पैदा होती है। इसके भय से पीड़ित व्यक्ति 'आत्मा अमर है', 'आत्मा अमर है' का जाप करने लगते हैं। लेकिन ये दोनों धारणाएँ एक ही भ्रम से उत्पन्न होती हैं। वे एक ही भ्रान्ति के दो रूप और दो प्रकार के व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ हैं। लेकिन स्मरण रहे कि दोनों की भ्रान्ति एक है और दोनों प्रकार से वही भ्रान्ति मजबूत होती है।

डॉ० रामचन्द्र प्रसाद

नहीं करेंगे, जो अपने सिवा किसी अन्य पर निर्भर नहीं होंगे—वे लोग (ज्ञान के, सत्य के) सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ होंगे।'

सिद्धान्तों ने सत्य की बुरी तरह हत्या कर दी है। लोग अपने भीतर देदीप्यमान आत्मा को नहीं देखते, सिद्धान्तों में परमात्मा की तलाश करते हैं।

कहा जाता है कि शोदाई एरो जो ध्यान की शिक्षा ग्रहण करना चाहता था, बासो के पास आया। ध्यानाचार्य ने पूछा : तुम्हारा आना किस लिए हुआ है ?'

'मुझे ज्ञान चाहिए, मैं बुद्ध-ज्ञान की प्राप्ति के लिए लालायित हूँ।'

'बुद्ध-ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है, ऐसे ज्ञान का सम्बन्ध शैतान से है।'

जब एरो ने आचार्य की बात नहीं समझी तब आचार्य ने उसे सेकितो नामक एक अन्य ध्यानाचार्य के पास भेज दिया। एरो ने आते ही सेकितो से पूछा :

'बुद्ध कौन है ?'

'तुममें बुद्धत्व के लक्षण नहीं हैं ?'

'पशुओं के बारे में आपकी क्या राय है ?'

'उनमें है।'

'तब मुझमें क्यों नहीं ?' एरो ने स्वाभाविक जिज्ञासा से यह प्रश्न किया।

'क्योंकि तुम पूछते हो।' सेकितो ने जवाब दिया।

आचार्य के इस कथन से एरो की उलझन मिट गई और उसे ज्ञान हो गया।

आचार्यजी भी चाहते हैं कि व्यक्ति मान्यताओं और विश्वासों में न पड़े, क्योंकि वह दिशा अनुभव और ज्ञान की दिशा नहीं है। विचार कभी भी ज्ञात के पार नहीं ले जाते।

वे जीवन की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं।

जीवन है अभी और यहीं।

उसमें उतरा जा सकता है।

मृत्यु या तो भविष्य में है या अतीत में, वर्तमान में कदापि नहीं। लेकिन जीवन तो सदा वर्तमान में है, वह वर्तमान ही है। इसलिए उसे जाना जा सकता है, उसे जिया जा सकता है—उसके सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः उसके सम्बन्ध में विचार करनेवाले लोग उसे चूक जाते हैं—कारण, विचार की गति अतीत और भविष्य में ही होती है।

विचार वर्तमान में नहीं होता; वह भी मृत है, मृत्यु का सहधर्मी है। उसमें जीवन के तत्त्व नहीं हैं।

इसलिए जीवन का विचार नहीं होता, होती है अनुभूति।

अनुभूति है निर्विचार, निःशब्द, मौन, शून्य। इसलिए निर्विचार चैतन्य को वे 'जीवनानुभूति का द्वार' कहते हैं। जीवन को जान लेनेवाले लोग मृत्यु को भी जान लेते हैं, क्योंकि 'मृत्यु जीवन को न जानने से पैदा हुआ भ्रम-मात्र है।' जो जीवन को नहीं जानता, वह स्वभावतः शरीर को ही 'स्वयं' मान लेता है। चूंकि शरीर मरता-मिटता है और इसकी इकाई विसर्जित होती है, इसलिए इससे ही इसके पूर्ण अंत होने की धारणा पैदा होती है। इसके भय से पीड़ित व्यक्ति 'आत्मा अमर है', 'आत्मा अमर है' का जाप करने लगते हैं। लेकिन ये दोनों धारणाएँ एक ही भ्रम से उत्पन्न होती हैं। वे एक ही भ्रान्ति के दो रूप और दो प्रकार के व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ हैं। लेकिन स्मरण रहे कि दोनों की भ्रान्ति एक है और दोनों प्रकार से वही भ्रान्ति मजबूत होती है।

डॉ० रामचन्द्र प्रसाद

आदेश नहीं, निवेदन

निपट एक व्यक्ति की भाँति जो मुझे ठीक लगता है वह मैं कहता हूँ। न तो मेरी कोई संस्था है, न कोई संगठन। जीवन जागृति केन्द्र उन लोगों का संगठन है जिन्हें मेरी बात ठीक लगती है। लेकिन मैं उस संगठन का हिस्सा नहीं हूँ और उस संगठन का मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं है। मेरी तो उनसे कोई शर्त नहीं है, उनसे मैं बँधा हुआ नहीं हूँ। इसलिए जितनी प्रवृत्तियाँ चलती हैं, जिन्हें मेरी बात ठीक लगती है, उनके द्वारा चलती हैं। मेरे द्वारा तो सिर्फ एक ही प्रवृत्ति चलती है कि जो मुझे ठीक लगता है वह मैं कहता हूँ। उससे ज्यादा मेरी कोई प्रवृत्ति नहीं है। इसलिए निरंतर निवेदन करता रहता हूँ कि जो मुझे ठीक लगता है वह आपको भी ठीक लगे, यह जरूरी नहीं है। बहुत ज्यादा संभावना तो यही है वह ठीक न लगे। क्योंकि दो व्यक्तियों को एक-सी बात ठीक लगे,

यह एक असंभावना है। असल में दो व्यक्ति इतने भिन्न-भिन्न हैं कि एक ही बात पर अगर राजी होते हैं तो सिर्फ अज्ञान के कारण, ज्ञान के कारण दो व्यक्ति राजी नहीं होते। तो पूछा जा सकता है कि फिर मैं क्यों कहता हूँ अगर दूसरे को मुझे राजी नहीं करना है, प्रभावित नहीं करना है, अपने साथ बांधना नहीं है।

असल में आज तक निरंतर तभी कोई बोला है जब उसे संगठन बनाना हो, तभी कोई बोला है जब उसे किसी को प्रभावित करना हो, तभी कोई बोला है जब उसे पंथ और सम्प्रदाय चलाना हो। मैं बोलने को अत्यंत सहज बात मानता हूँ। मुझे जो ठीक लगता है उसे कहने में मुझे आनंद आता है इसलिए बोलता हूँ, आपको प्रभावित करने के लिए नहीं। एक फूल खिलता है और उस फूल से सुगंध झरती है, रास्ते पर चलने वाले लोगों को प्रभावित करने के लिए नहीं। फूल को आनंद है, वह खिला है, उसकी सुगंध मिलती है। जो मुझे आनंदपूर्ण लगता है, वह बोलता हूँ। मेरी अपनी समझ यह है कि जो आपको प्रभावित करने के लिए बोल रहा है वह आपका दुश्मन है, क्योंकि किसी भी तरह की प्रभावित करने की चेष्टा बहुत गहरे में दूसरे व्यक्ति को गुलाम बनाने की चेष्टा है। प्रभावित होना आध्यात्मिक गुलामी है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि लोग प्रभावित करने के डर से बोलें ही नहीं। एक चित्रकार एक पेंटिंग बना रहा है। हो सकता है वह सिर्फ प्रभावित करने के लिए बना रहा हो। यह भी हो सकता है कि दूसरों से कोई प्रयोजन ही न हो। बनाना उसका आनन्द हो और वह दूसरों को दिखा रहा है सिर्फ अपने आनंद की अभिव्यक्ति की भाँति। शब्द भी चित्रों की भाँति या रंगों की भाँति अभिव्यक्ति हैं। आपको प्रभावित करने के लिए या अपने को व्यक्त करने को। इसलिए मैं निरंतर निवेदन करता रहता हूँ कि भूल से मुझसे प्रभावित न हों। लेकिन ध्यान रहे, प्रभावित होने के दो ढंग हैं। मेरे पक्ष में प्रभावित होना भी प्रभावित होना है, मेरे विपक्ष में प्रभावित होना भी प्रभावित होना है। इसलिए इस खयाल में मत रहना कि जो मेरे पक्ष में हैं वे मुझसे प्रभावित हो गए हैं और जो विपक्ष में हैं वे प्रभावित नहीं हुए। विपक्ष में जो हैं वे भी मुझसे प्रभावित हैं। प्रभावित होने से बचना हो तो पक्ष-विपक्ष से बचना पड़ता है, नहीं तो प्रभाव पड़ ही जाता है। प्रभाव के दो ढंग हैं। अक्सर हमें लगता है कि पक्ष वाला प्रभावित है, विपक्ष वाला प्रभावित नहीं है पर विपक्ष वाला भी उतना ही प्रभावित है।

मार्क्स मरा तो उसकी कब्र पर बहुत लोग नहीं थे दस-बीस मित्र थे। फिर भी एंजिल्स ने जो उसकी कब्र पर दो बातें कही हैं उनमें से एक बात बड़ी कीमती थी। बीस-पच्चीस आदमी जिसको विदा करने आए हों उसकी कब्र पर बोलते हुए एंजिल्स ने कहा कि मार्क्स दुनियाँ का बहुत बड़ा आदमी है। एक आदमी ने पूछा—जिसको विदा करने बीस-पच्चीस ही लोग आए उसको आप बहुत बड़ा आदमी कहते हैं? एंजिल्स ने कहा—इसलिए मैं बड़ा आदमी कह रहा हूं कि मार्क्स की कोई बात सुने तो प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। उस आदमी ने कहा—बहुत-से लोग मार्क्स के दुश्मन हैं। तो एंजिल्स ने कहा—मैं यही कह रहा हूँ, पक्ष या विपक्ष में मार्क्स के संबंध में कोई निर्णय लेना ही पड़ेगा। यही प्रभाव है।

लेकिन मैं कोई बड़ा आदमी नहीं हूँ और मैं मानता हूँ कि सब बड़े आदमियों ने दुनियाँ को नुकसान पहुँचाया है, क्योंकि दूसरे को छोटा बनाए बिना बड़ा होना असंभव है। दूसरों को छोटा बनाना ही पड़ेगा बड़े होने के लिए। मैं मानता हूँ कि बड़ा आदमी होने की जो आकांक्षा है वही दूसरे को प्रभावित करने का रूप लेती है। और बड़े आदमी होने की जो आकांक्षा है वह बहुत गहरे में, किसी हीनता की ग्रंथि से पैदा होती है। इसलिए सब बड़े आदमी बहुत भीतर हीन ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। वे दूसरों को प्रभावित करके अंततः अपने को प्रभावित करना चाहते हैं कि मैं बड़ा आदमी हूँ। इतने लोग मुझसे प्रभावित हैं तो बड़ा आदमी होना ही चाहिए। दूसरों को प्रभावित करके वे अपने को विश्वास दिलाना चाहते हैं। आपको प्रभावित करके मैं अपने को कोई विश्वास नहीं दिलाना चाहता कि मैं कौन हूं। मैं जो हूँ, उससे मैं राजी हूँ और छोटे और बड़े दोनों की परिभाषा से बाहर खड़ा हूँ, क्योंकि छोटे और बड़े की परिभाषा दूसरों से तुलना करने से पैदा होती है। मेरी ऐसी समझ है कि एक-एक आदमी इतना अपने जैसा है कि तुलना हो नहीं सकती। आप मुझसे बड़े हैं या छोटे, यह सवाल असंगत है क्योंकि मैं मैं हूँ, आप आप हैं। कोई तुलना का उपाय नहीं है। मैं मानता हूँ, एक-एक मनुष्य अतुलनीय है, इसलिए छोटे-बड़े की सब बातें मुझे बकवास मालूम पड़ती हैं। इसलिए प्रभावित करने का तो कोई सवाल नहीं है। लेकिन अपनी बात कहना जरूर चाहता हूँ और अपनी बात में आपको सुनने के लिए साझीदार भी बनाना चाहता हूँ। जो मुझे दिखायी पड़ता है वह मैं आपसे निवेदन कर देना चाहता हूँ। वह निवेदन है,

आग्रह नहीं है। मेरा तो निवेदन यही है कि न आप मानने की फिक्र करना, न न मानने की। वह आपको एक विचार की प्रतिक्रिया में ले आ सके तो काफी है। वह विचार-प्रतिक्रिया अंततः मेरी न रह जायगी, आपकी ही हो जायगी। लेकिन मेरे मित्र हैं, मेरे शत्रु हैं। मेरी तरफ से कोई मेरा मित्र नहीं है, मेरी तरफ से मेरा कोई शत्रु नहीं है। उनकी ही तरफ से वह हैं। हम सब साझीदार हैं एक जगत् में। लेकिन मेरे मित्र कुछ करेंगे, मेरे शत्रु भी कुछ करेंगे।

कुछ दिन पहले की एक बात है। एक आदमी ने मेरा पैर न छुआ, मेरा सिर छुआ। दो आदमी मेरे साथ बैठे थे। उन्होंने कहा, यह क्या करते हो? मैंने कहा, उसे करने दो। उसे सिर छूने की मौज आई है, उसे छूने दो। इसलिए मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि किसी को अपना पैर भी मेरे सिर से छुलाने की मौज आ जाय तो मैं मना न करूँगा। मेरी समझ यह है कि सब तरह के विधायक वक्तव्य श्रद्धा पैदा करवाते हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि दुनियाँ में उन लोगों के पैर सर्वाधिक छुए गए हैं जिन्होंने कहा, मत छुओ, मत छुओ। लोगों ने कहा, अद्भुत आदमी है, इसके तो छूने ही पड़ेंगे। बुद्ध कहते हैं, मत छुओ मेरे पैर। लेकिन 'बुद्धं शरणं गच्छामि' जितना बुद्ध के सामने कहा गया है किसी के सामने नहीं कहा गया है। बुद्ध कहते हैं, मत बनाओ मेरी प्रतिमाएँ। जितनी प्रतिमाएँ बुद्ध की हैं उतनी किसी आदमी की नहीं हैं। आश्चर्य है। आदमी का मन बहुत आश्चर्यजनक है। निषेध ही आमंत्रण है। दरवाजे पर लिख दो कि यहाँ झाँकना मना है, फिर इतने हिम्मतवर आदमी बहुत मुश्किल से होंगे जो बिना झांके निकल जायें। और अगर कोई सज्जन किसी वक्त संयम साधकर निकल गए तो फिर कोई बहाना खोजकर इस गली से उनको लौटना पड़ेगा। और अगर दिन में हिम्मत करके न लौट पायें, तो रात सपने में जरूर लौटेंगे। मेरे पैर में कुछ भी नहीं है। इतना भी नहीं है कि मैं आपसे कहूँ कि मत छुओ, इतना भी नहीं है कि मैं निषेध करूँ। इसलिए मैं आपको कोई आज्ञा नहीं देना चाहता। आज्ञा में ही गुरु बनना शुरू हो जाता है। मैं किसी का गुरु नहीं हूँ। मैं शिष्य, न जानकर बताता हूँ, न अनजाने, लेकिम कोई बन जाय तो मेरे पास कोई उपाय नहीं है उसे रोकने का। मुझे पता नहीं चलता है। पता चलता है तब तो मैं लड़ता हूँ। कोई आकर मुझे कहता है कि मैं आपका शिष्य हूँ तब मैं लड़ता

मार्क्स मरा तो उसकी कब्र पर बहुत लोग नहीं थे दस-बीस मित्र थे। फिर भी एंजिल्स ने जो उसकी कब्र पर दो बातें कही हैं उनमें से एक बात बड़ी कीमती थी। बीस-पच्चीस आदमी जिसको विदा करने आए हों उसकी कब्र पर बोलते हुए एंजिल्स ने कहा कि मार्क्स दुनियाँ का बहुत बड़ा आदमी है। एक आदमी ने पूछा—जिसको विदा करने बीस-पच्चीस ही लोग आए उसको आप बहुत बड़ा आदमी कहते हैं ? एंजिल्स ने कहा—इसलिए मैं बड़ा आदमी कह रहा हूं कि मार्क्स की कोई बात सुने तो प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। उस आदमी ने कहा—बहुत-से लोग मार्क्स के दुश्मन हैं। तो एंजिल्स ने कहा—मैं यही कह रहा हूं, पक्ष या विपक्ष में मार्क्स के संबंध में कोई निर्णय लेना ही पड़ेगा। यही प्रभाव है।

लेकिन मैं कोई बड़ा आदमी नहीं हूं और मैं मानता हूं कि सब बड़े आदमियों ने दुनियाँ को नुकसान पहुँचाया है, क्योंकि दूसरे को छोटा बनाए बिना बड़ा होना असंभव है। दूसरों को छोटा बनाना ही पड़ेगा, बड़े होने के लिए। मैं मानता हूँ कि बड़ा आदमी होने की जो आकांक्षा है वही दूसरे को प्रभावित करने का रूप लेती है। और बड़े आदमी होने की जो आकांक्षा है वह बहुत गहरे में, किसी हीनता की ग्रंथि से पैदा होती है। इसलिए सब बड़े आदमी बहुत भीतर हीन ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। वे दूसरों को प्रभावित करके अंततः अपने को प्रभावित करना चाहते हैं कि मैं बड़ा आदमी हूं। इतने लोग मुझसे प्रभावित हैं तो बड़ा आदमी होना ही चाहिए। दूसरों को प्रभावित करके वे अपने को विश्वास दिलाना चाहते हैं। आपको प्रभावित करके मैं अपने को कोई विश्वास नहीं दिलाना चाहता कि मैं कौन हूं। मैं जो हूं, उससे मैं राजी हूं और छोटे और बड़े दोनों की परिभाषा से बाहर खड़ा हूँ, क्योंकि छोटे और बड़े की परिभाषा दूसरों से तुलना करने से पैदा होती है। मेरी ऐसी समझ है कि एक-एक आदमी इतना अपने जैसा है कि तुलना हो नहीं सकती। आप मुझसे बड़े हैं या छोटे, यह सवाल असंगत है क्योंकि मैं मैं हूं, आप आप हैं। कोई तुलना का उपाय नहीं है। मैं मानता हूं, एक-एक मनुष्य अतुलनीय है, इसलिए छोटे-बड़े की सब बातें मुझे बकवास मालूम पड़ती हैं। इसलिए प्रभावित करने का तो कोई सवाल नहीं है। लेकिन अपनी बात कहना जरूर चाहता हूँ और अपनी बात में आपको सुनने के लिए साझीदार भी बनाना चाहता हूँ। जो मुझे दिखायी पड़ता है वह मैं आपसे निवेदन कर देना चाहता हूँ। वह निवेदन है,

आग्रह नहीं है। मेरा तो निवेदन यही है कि न आप मानने की फिक्र करना, न न मानने की। वह आपको एक विचार की प्रतिक्रिया में ले आ सके तो काफी है। वह विचार-प्रतिक्रिया अंततः मेरी न रह जायगी, आपकी ही हो जायगी। लेकिन मेरे मित्र हैं, मेरे शत्रु हैं। मेरी तरफ से कोई मेरा मित्र नहीं है, मेरी तरफ से मेरा कोई शत्रु नहीं है। उनकी ही तरफ से वह हैं। हम सब साझीदार हैं एक जगत् में। लेकिन मेरे मित्र कुछ करेंगे, मेरे शत्रु भी कुछ करेंगे।

कुछ दिन पहले की एक बात है। एक आदमी ने मेरा पैर न छुआ, मेरा सिर छुआ। दो आदमी मेरे साथ बैठे थे। उन्होंने कहा, यह क्या करते हो? मैंने कहा, उसे करने दो। उसे सिर छूने की मौज आई है, उसे छूने दो। इसलिए मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि किसी को अपना पैर भी मेरे सिर से छुलाने की मौज आ जाय तो मैं मना न करूँगा। मेरी समझ यह है कि सब तरह के विधायक वक्तव्य श्रद्धा पैदा करवाते हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि दुनियाँ में उन लोगों के पैर सर्वाधिक छुए गए हैं जिन्होंने कहा, मत छुओ, मत छुओ। लोगों ने कहा, अद्‌भुत आदमी है, इसके तो छूने ही पड़ेंगे। बुद्ध कहते हैं, मत छुओ मेरे पैर। लेकिन 'बुद्धं शरणं गच्छामि' जितना बुद्ध के सामने कहा गया है किसी के सामने नहीं कहा गया है। बुद्ध कहते हैं, मत बनाओ मेरी प्रतिमाएँ। जितनी प्रतिमाएँ बुद्ध की हैं उतनी किसी आदमी की नहीं हैं। आश्चर्य है। आदमी का मन बहुत आश्चर्यजनक है। निषेध ही आमंत्रण है। दरवाजे पर लिख दो कि यहाँ झाँकना मना है, फिर इतने हिम्मतवर आदमी बहुत मुश्किल से होंगे जो बिना झाँके निकल जायँ। और अगर कोई सज्जन किसी वक्त संयम साधकर निकल गए तो फिर कोई बहाना खोजकर इस गली से उनको लौटना पड़ेगा। और अगर दिन में हिम्मत करके न लौट पायें, तो रात सपने में जरूर लौटेंगे। मेरे पैर में कुछ भी नहीं है। इतना भी नहीं है कि मैं आपसे कहूँ कि मत छुओ, इतना भी नहीं है कि मैं निषेध करूँ। इसलिए मैं आपको कोई आज्ञा नहीं देना चाहता। आज्ञा में ही गुरु बनना शुरू हो जाता है। मैं किसी का गुरु नहीं हूँ। मैं शिष्य, न जानकर बनाता हूँ, न अनजाने, लेकिन कोई बन जाय तो मेरे पास कोई उपाय नहीं है उसे रोकने का। मुझे पता नहीं चलता है। पता चलता है तब तो मैं लड़ता हूँ। कोई आकर मुझे कहता है कि मैं आपका शिष्य हूँ तब मैं लड़ता

हूँ। लेकिन कोई आए ही न, मुझे पता ही न चले तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। और अगर मुझसे कोई कहने भी आता है कि मैं आपका शिष्य हूँ तब भी मैं यह नहीं कहता कि तुम मेरे शिष्य नहीं हो क्योंकि यह हक मुझे नहीं है। इतना ही मैं कहता हूँ कि मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। मैंने किसी का गुरु होने का भार नहीं लिया है। क्योंकि मैं मानता हूँ, सभी गुरु पंगु करने वाले सिद्ध हो गए हैं। असल में गुरु बनने का मतलब यह है कि तुम्हारा बोझ मैं लेता हूँ। मैं किसी का बोझ नहीं लेता हूँ। अपना ही बोझ जिन्दगी में काफी है। किसी दूसरे का बोझ लेने का सवाल नहीं है और अगर मुझे कोई बात ठीक लगती है तो वह मैं आपसे कह देता हूँ। लेकिन इससे मेरा आपका कोई लेन-देन का संबंध नहीं बनता है। बल्कि मैं अनुगृहीत हूँ कि मेरी बातें आपने सुनी। आपकी तरफ से अनुग्रह नहीं मानता क्योंकि लेन-देन के बड़े सूक्ष्म नियम हैं। कहीं पैसे लिये जाते हैं, कहीं श्रद्धा ली जाती है, कहीं अनुग्रह लिया जाता है; लेकिन सब बड़े सूक्ष्म नियम हैं। आपसे मैं कुछ नहीं लेता। धन्यवाद देता हूँ आपको कि आपने मेरी बात सुन ली। यह भी क्या कम है? किसके पास समय है, किसके पास सुविधा है? बात खत्म हो गई। इसके आगे मुझे प्रयोजन नहीं है।

लेकिन हमारा देश हजारों साल से गुरुओं के नीचे जी रहा है। यह बिना संबंध बनाए नहीं रहता। यह संबंध बनाने की चेष्टा करता है। आदेश ही मानता है, चाहे विपरीत आदेश ही क्यों न हों। यह कहता है, कुछ हमें आदेश दे दो जो हम मानकर चलें। मैं कोई आदेश नहीं देता। मेरा जो भी है, वह निवेदन है। असल में मेरे आसपास ढाँचा बनाना मुश्किल ही है क्योंकि मैं कोई ढाँचे का आदमी नहीं हूँ। नारगोल में जमीन मिलती थी, मेरे मित्रों ने सब विधान बनाया था, केबिनेट तक बात हो गई थी। मंत्री राजी थे छः सौ एकड़ जमीन देने को। दो-चार दिन में सब तय हो जाने वाला था। गाँधी जी के सम्बन्ध में एक वक्तव्य मैंने दिया। मित्रों ने आकर कहा कि इस वक्तव्य को अभी बाहर प्रकट न किया जाय, पहले वह जमीन मिल जाय, फिर हम वक्तव्य प्रकट करेंगे। मैंने कहा, जमीन के लिए अगर वक्तव्य रुकेगा तब तो अंततः मैं ही रुक जाऊँगा। जमीन जाने दो। मित्र बहुत दुखी हुए, मुझे छोड़कर ही चले गए। दुश्मनी हो गई। क्योंकि मित्र जब दुखी होते हैं तो दुश्मनी से कम पर नहीं रुकते। इसलिए मित्र बनाना खतरनाक है। मैं मित्र नहीं बनाता हूँ, क्योंकि मित्र बनाने का मतलब है पोटेंशियल शत्रु बनाना। आज नहीं, कल

शत्रु बन सकता है। मित्र के सिवा शत्रु कोई नहीं बनता है। मैं निपट अकेला आदमी हूँ, घूमता रहता हूँ। यदि आपको अच्छी लगती है मेरी बात, आप मित्र मिलकर कुछ करते हैं, मैं आपको रोक नहीं सकता, लेकिन आप मुझे किसी ढाँचे में नहीं बाँध सकेंगे।

मेरी कोई निष्ठा नहीं है, मेरी कोई श्रद्धा नहीं है इसलिए मेरे साथ ढाँचा बनाना मुश्किल है, क्योंकि ढाँचा बनता है श्रद्धा पर, निष्ठा पर। और ढाँचा बनता है उन लोगों के साथ जिनमें एक तरह की कांसिस्टेंसी होगी, जो आज कहेंगे, कल भी कहेंगे, परसों भी कहेंगे, तब आप ढाँचा बना सकते हैं। कल मैं कुछ कहूँ, परसों कुछ कहूँ तो ढाँचा बन नहीं पायगा, सब कुछ गड़बड़ हो जायगा। मेरे-जैसे लोगों के पास ढाँचा कभी नहीं बना। ढाँचा तभी बनता है जब मैं मरने की तैयारी करूँ कि आज मैं फाइनली मर जाता हूँ। अब मैं कल से वही कहूँगा जो मैंने आज कहा। अब मेरे कल आज की पुनरुक्ति होंगे, अब मेरा कोई कल नया नहीं होगा। अब हर आनेवाला कल, मेरे आज का ही रिपीटीशन होगा, तब ढाँचा बनता है। अभी कुछ मित्र उत्सुक हैं। थोड़े दिन में थक जायँगे, समझ जायँगे कि आदमी गड़बड़ है, अब इसके पास ढाँचे नहीं बन सकते। अभी इधर तीन साल के मेरे मित्रों के नाम का आप पता लगायेंगे तो आपको पता चल जायगा कि जो मित्र छह महीने पहले थे, छह महीने बाद मुझे नहीं मिलते। उसमें उनका कसूर नहीं है, कसूर जो है वह मेरा है। क्योंकि वह चाहते थे कांसिस्टेंसी। वह चाहते थे कि जो आपने कहा था वह अब इधर-उधर मत करना; और मैं कहता हूँ जिन्दगी बहुत इनकंसिस्टेंट है, सिर्फ मौत कंसिस्टंट है। जिन्दगी का भरोसा नहीं। हम सुबह सूरज से कहें कि तुम कल जैसे निकले थे वही रूप-रंग में निकलो; क्योंकि मैंने तुमसे कहा था कि भगवन्, हम तुम्हारी पूजा करेंगे और आज तुम बदल गए! सूरज कहेगा; तुम पूजा मत करो, लेकिन कोई और उपाय नहीं है।

मैं निपट अकेला आदमी हूँ, घूमता फिरता हूँ, जो मुझे ठीक लगता है कहता रहता हूँ। किसी को ठीक लगता है, मान लेता है, नहीं ठीक लगता है, नहीं मानता है। मैं न कोई मित्र बनाता हूँ, न कोई शत्रु बनाता हूँ। वह सब आपकी तरफ से है, वह मेरा काम नहीं है। उसके लिए मुझे आप कभी भी जिम्मेदार नहीं ठहरा सकेंगे। मेरा काम इतना ही था कि मैंने कह दिया। और कल अगर लौटकर आपने कहा कि आपने कल यह कहा तो मैं कहूँगा कि

कल का जो आदमी था वह मर चुका, मैं दूसरा आदमी हूँ, वह आदमी नहीं हूँ। इसलिए इन प्रश्नों की कोई संगति मुझसे नहीं है।

दूसरी बात सामान्य-असामान्य की है। मेरे लिए कोई मामूली, सामान्य आदमी नहीं है। जिसको सामान्य आदमी कहते हैं मेरे लिए कोई भी नहीं है। और जिसको असामान्य आदमी कहते हैं वह भी मेरे लिए कोई नहीं है। तुलना में बड़ी हिंसा है। इस मुल्क में मैं जगह-जगह घूमता हूँ। सामान्य आदमी की तलाश की, पर मिला नहीं। जो भी मिला उसने कहा, ये सामान्य आदमी जो हैं नहीं समझ सकेंगे। एक भी आदमी ने नहीं कहा कि मैं सामान्य आदमी हूँ, मैं नहीं समझ सकूंगा। प्रत्येक आदमी अपने तई विशेष है, और प्रत्येक आदमी की विशेषता है जो उससे हिंसा करवाती है कि दूसरा सामान्य है। कोई सामान्य नहीं है। सामान्य आदमी पैदा ही नहीं होता। अरबी कहावत मैंने सुनी है कि भगवान जब आदमी को बनाकर भेज देता है तो जिस आदमी को भी बनाता है उसके कान में कह देता है कि तुमसे बढ़कर आदमी मैंने कभी बनाया नहीं। सभी से कह देता है तो हरेक यह खयाल लेकर आता है कि मैं विशेष हूँ और दूसरा सामान्य है। कोई सामान्य नहीं है, कोई विशेष नहीं है। या तो सभी सामान्य हैं या सभी विशेष हैं, और कोई सोचता हो कि मैं ऐसा वर्गीकरण करूँ, ऐसी क्लास बनाऊँ कि विशेष लोगों के लिए कुछ और कहूँ और सामान्य लोगों के लिए कुछ और कहूँ, यह मेरे वश के बाहर है। मेरे लिए ऐसा कोई वर्ग नहीं है और मेरे पास कहने के लिए दो बातें भी नहीं हैं। जो है वही है, वही कह सकता हूँ। अगर आप भी चले जायँ और दीवाल के सामने मुझे कहना पड़े, तो भी मैं वही कह सकता हूँ जो आपसे कह रहा था।

दूसरी बात आपने कही कि यहाँ कोई मंडन मिश्र या शंकर नहीं बैठे हुए हैं। अच्छा ही है कि नहीं बैठे हैं क्योंकि मंडन मिश्र अब दुबारा होंगे तो कार्बन कापी ही हो सकते हैं। हर आदमी एक बार होता है—मंडन मिश्र भी एक बार होते हैं और आप भी एक ही बार होते हैं। यूनीकनेस इतनी गहरी हैं कि एक आदमी दुबारा पुनरुक्त नहीं होता है। इसीलिए एक-एक व्यक्ति की महिमा अलग है। वह जैसा है वह वैसा ही है। अगर बुद्ध अपने जैसे हैं तो जिसे हम सामान्य कहते हैं वह भी अपने जैसा है। कौन बुद्ध उसका मुकाबला कर सकता है ? अगर वह बुद्ध का मुकाबला नहीं कर सकता है तो कौन बुद्ध उसका मुकाबला कर सकता है। लेकिन मनुष्य की चिन्तना, जो

सदा अहंकार केन्द्रित रही, उसने वर्गीकरण किए, विभाजन किए। शूद्र बनाए, ब्राह्मण बनाए। महापुरुष बनाए, सामान्य जन बनाए। ज्ञानी बनाए, अज्ञानी बनाए। इस जगत में वर्ग नहीं है, व्यक्ति ही है और एक व्यक्ति बिलकुल अकेला है, दूसरा भी नहीं है कि उसका वर्ग बनाया जाय। वर्ग बनाने के लिए कम से कम दो तो चाहिए। तो मैं मंडन मिश्र की ज्यादा इज्जत नहीं करता आपसे, और न मंडन मिश्र से कम इज्जत करता हूँ आपकी। मंडन मिश्र मंडन मिश्र हैं, आप आप हैं। दोनों अपनी जगह अद्‌भुत हैं, लेकिन मुझे जो निवेदन करना है वह मंडन मिश्र होते तो भी यही करता और आप हैं तो भी यही करूँगा। कोई उपाय ही नहीं है इसमें। एक फूल खिला है और रास्ते से मंडन मिश्र निकलें, तो वह फूल कोई दूसरी सुगंध नहीं फेंकता। और गाँव का चमार निकला, बड़ा सामान्य आदमी निकला, तो अपनी सुगंध सिकोड़ नहीं लेता। नहीं, फूल अपनी सुगंध फेंकता रहता है। हाँ, ऐसे फूल हो सकते हैं प्लास्टिक के बनाए हुए और यांत्रिक जो आदमी देख कर सुगंध दें। आप कहते हैं, तत्व दर्शन की भाषा मत बोलिए। बड़ी ही मुश्किल बात है। एक संगीतज्ञ से कहिए कि संगीत की भाषा में नहीं, जरा किसी और भाषा में संगीत सुनाइए। और एक चित्रकार से कहिए कि रंगों की भाषा मैं नहीं जानता हूँ, जरा किसी और भाषा में चित्र बनाइए, तब हम समझ सकेंगे। मैं जो हूँ वही निवेदन कर सकता हूँ। संगीतज्ञ हूँ तो वीणा बजाऊँगा, चित्रकार हूँ तो रंग पोतूंगा। जो मैं कर सकता हूँ, वही कर सकता हूँ। मेरे भीतर कई तरह के आदमी नहीं हैं। मैं एक ही तरह का आदमी हूँ। इसलिए बहुत तरह के चेहरे बनाना मुश्किल है मेरे लिए। एक ही चेहरा है मेरे पास। सामान्य आदमी के सामने खड़ा होता हूँ और जिसको आप असामान्य कहते हैं उसके सामने खड़ा होता हूँ तो भी वही हूँ।

एक फकीर—बोधिधर्म–हिन्दुस्तान से कोई १४०० वर्ष पूर्व चीन गया। जब वह चीन पहुँचा तो वहाँ के लोग बहुत परेशान हुए, क्योंकि वह दीवाल की तरफ मुँह करके बैठता था, लोगों की तरफ पीठ कर लेता था। जब चीन का सम्राट् मिलने आया तो दूसरे फकीरों ने कहा, आप जरा कृपा कर यह आदत छोड़ें। सम्राट् मिलने आ रहा है, वह बहुत नाराज हो जायगा। आप उसकी तरफ पीठ करके बैठे हैं। आज दीवाल की तरफ मुँह न चलेगा, सामान्य आदमी के साथ चल गया, वह बात दूसरी है। बोधिधर्म हँसने

लगा। उसने कहा, यदि मेरे लिए सामान्य आदमी और सम्राट् भिन्न होता तब तो तुम जो कहते हो ठीक कहते हो। मेरे लिए तो कोई भी आए, मैं दीवाल की तरफ ही मुँह करूँगा। लोगों ने पूछा कि ऐसा क्यों पागलपन पकड़ लिया है कि दीवाल की तरफ मुँह कर रहे हो? तो उसने कहा कि दीवाल की तरफ मुँह रखने का कुल कारण इतना ही है कि लोगों की तरफ मैंने बहुत बार मुँह करके देखा तो वहाँ भी दीवाल ही पाई। मैंने सोचा कि नाहक क्यों परेशानी करनी है।

आज तक दुनियाँ में बुद्ध भी आए, महावीर भी आए और विनोबा भी आए। मुझे ज्यादा पता नहीं है, लेकिन मैं मानता हूँ कि विनोबा आग्रही हैं, प्रचारक हैं। आग्रह है उनका कि ऐसी शक्ल दे देंगे, समाज को ऐसा बना देंगे। सत्याग्रह कहीं होगा आग्रह? महावीर आग्रही हैं, गाँधी आग्रही हैं। वे शक्ल देना चाहते थे, वे व्यक्ति का एक ढाँचा देना चाहते थे कि ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, एक नैतिकता देना चाहते थे, एक धर्म देना चाहते थे, एक आदत देना चाहते थे। मैं आग्रही नहीं हूँ। मैं कोई ढाँचा आपको देना नहीं चाहता। मैं नहीं कहता, ऐसा आदमी अच्छा आदमी होगा। और ढाँचे की बात करने-वाले लोग गलती ही कर रहे हैं। आदमी मशीन नहीं है। मैं तो अच्छे आदमी का भी ढाँचा नहीं देना चाहता; क्योंकि जब मैं देखता हूँ मुझे लगता है कि अकेला राम रह जाय तो दुनियाँ बहुत बेरौनक हो जायगी रावण के बिना—बहुत बुरी हो जायगी। मुझे तो लगता है रावण उतना ही जरूरी है, जितना राम है। मुझे लगता है रामलीला कोई करके देखे रावण के बिना, तो पता चलेगा। फिर रामलीला होती नहीं, आगे बढ़ती नहीं। रामलीला में रावण जरूरी हिस्सा है। जिसको हम बुरा कहते हैं, मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति है। जिसको हम हिंसक कहते हैं, मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति है, जिसको हम पापी कहते हैं मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति है। असल में मेरे मन में किसी की अस्वीकृति नहीं है, क्योंकि अस्वीकृति हुई कि प्रभावित करने की चेष्टा शुरू हुई। जैसे ही मुझे लगा कि आप गलत हैं, आपका कुर्त्ता ऐसा होना चाहिए और आपके बाल ऐसे कटने चाहिए और आपको इस ढंग से बैठना चाहिए, मैंने आपके साथ दुर्व्यवहार शुरू किया। दुर्व्यवहार के बहुत ढंग हैं और गुरु जितना दुर्व्यवहार करता है उतना कोई भी नहीं करता है; क्योंकि वह आपको काटता है। वह कहता है कि ढाँचे में आओ, ब्रह्मचर्य

साधो, अहिंसा साधो, सत्य साधा, यह साधो, वह साधो—थोपता चला जाता है। वह आपको काट-पीट कर जैसे पत्थर काटता हो, कोई मूर्ति बनती हो, ऐसा काटता है। महावीर को भी आग्रह है काटने का लोगों को। बुद्ध को भी आग्रह है, गाँधी को भी, विनोवा को भी। उन आग्रही लोगों से मेरा कोई लेना-देना नहीं। वे आदमी को एक शक्ल देना चाहते हैं। मैं मानता हूँ कि एक आदमी को किसी दूसरे आदमी की शक्ल देने का हक नहीं है। यही हिंसा है। जैसे ही कोई पति कहता है कि पत्नी ऐसी होनी चाहिए कि हिंसा शुरू हो गई। बाप कहता है कि बेटा ऐसा होना चाहिए, हिंसा शुरू हो गई। जब भी कोई किसी दूसरे से कहता है कि ऐसे बनो तब भीतर से हिटलर बोलने लगता है। वह चाहे खद्दर के वस्त्र पहने हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता!

आदमी टार्चर करने के बहुत कुशल रास्ते खोजता है। जो बहुत नासमझ हैं वे आपकी छाती पर छुरी रख देते हैं, आपको टार्चर करने के लिए। जो ज्यादा समझदार हैं वे अपनी छाती पर छुरी रख लेते हैं और कहते हैं हम अनशन करके मर जायेंगे लेकिन तुम्हें ऐसा होना चाहिए। यह सब छुरेबाजी है। दूसरे की छाती पर रखते हो तो हिंसा है, अपनी छाती पर रखते हो तो अहिंसा कैसे हो गई? नहीं, असल में जैसे ही मैं दूसरे आदमी को इन्कार करता हूँ हिंसा शुरू हो गई। जैसे ही में कहता हूँ कि दूसरा आदमी ऐसा नहीं, तो मैंने अपने को थोपना शुरू कर दिया। नहीं, यह मेरा प्रयास नहीं है। मैं मानता हूँ रावण अपनी जगह है और बड़ा जरूरी है और बड़ा प्यारा है। राम अपनी जगह हैं। और अगर मैं पूजा करने जाऊँगा तो दोनों की करूँगा या दोनों की नहीं करूँगा। लेकिन हमें चुनाव करना पसन्द है। स्पष्ट कहिए, राम के पक्ष में हैं कि रावण के। मैं आदमी के पक्ष में हूँ। रावण के भी नहीं और राम के भी नहीं। आदमी एक अनंत घटना है, उसमें अनंत रूप हैं। मुझे गुलाब का फूल भी पसन्द है और चमेली का, चम्पा का और धतूरे का भी। मुझे कैक्टस भी पसंद है, कांटे वाला और मुलायम फूलों वाला पेड़ भी पसन्द है; लेकिन मैं नहीं कहता कि कैक्टस के कांटे झाड़ देने चाहिए। मैं परमात्मा का यह जगत् जैसा है इसको समग्रता से स्वीकार करता हूँ। यह जो अस्वीकृति है वह प्रभावित करने की, चिन्ता आ जाती है कि आदमी को बदलो, संगठन बनाओ, समूह बनाओ, घेरा बनाओ। बदलो आदमी को।

आदमी को ऐसा बदलो जैसा हम चाहते हैं। आपको किसने कहा कि आदमीको बदलो? आप हैं कौन? आप भी एक आदमी हैं, थोड़ा बोल लेते हैं ढंग से या थोड़े कपड़े छोड़कर नंगे खड़े हो जाते हैं या बीड़ी नहीं पीते, पान नहीं खाते। यह आपकी मौज है। लेकिन जब वह दूसरा आदमी बीड़ी पी रहा है, जब नहीं बीड़ी पीनेवाला उसको पुलिस की आँखों से देखता है तब हिंसा शुरू हो जाती है। कौन हकदार है? कोई हकदार नहीं है किसी पर। इसलिए मुझे मत गिनें। मुझे न कोई प्रचार करना है, न कोई सर्वोदय लाना है और न कोई समाज का आदर्श बदलना है, न एक व्यक्ति को ऐसा बनाना है वैसा बनाना है। जब मैं कुछ कह रहा हूँ तो वह कहना मेरा आनन्द है। उससे ज्यादा नहीं। हाँ, अगर मुझे लगता है कि बीड़ी पीने में मैंने बहुत दुख पाया, तो मैं निवेदन करूँगा कि बीड़ी पीकर मैंने बहुत दुख पाया। लेकिन तब भी मैं आपको घृणा की दृष्टि से नहीं देख सकता कि आप बीड़ी पी रहे हैं; क्योंकि कोई आदमी बीड़ी पीकर सुख पा रहा हो इसकी पूरी संभावना है। मैंने दुख पाया वह मैं कह देता हूँ। लेकिन मेरा दुख सबका दुख नहीं है और मेरा सुख सबका सुख नहीं है। एक आदमी का नर्क दूसरे का स्वर्ग हो सकता है। एक आदमी का स्वर्ग दूसरे का नर्क हो सकता है। यह भिन्नता की मेरे मन में स्वीकृति है।

कुछ ही दिन पहले की बात है। मैं एक ट्रेन में सवार हुआ। जिस कंपार्टमेंट में मैं था उसमें एक और मित्र थे। वे मुझे देखकर एकदम घबरा गए जैसा कि महात्माओं को देखकर घबरा जाना चाहिए। एकदम उन्होंने नमस्कार किया और कहा, "महात्मा जी!" मुझे ऐसा लगा कि मेरा आना उनको अच्छा नहीं लगा। असल में महात्मा का आना किसी को भी जिन्दगी में अच्छा नहीं लगता, क्योंकि महात्मा बिना गड़बड़ किए नहीं रह सकता, नहीं तो उसका महात्मापन खो जायगा। मैंने उनसे कहा, ऐसा लगता है, मेरे आने से आप सुखी नहीं हुए। मैं दूसरे कम्पार्टमेंट में चला जाऊँ? उन्होंने कहा, नहीं नहीं, बड़ा आनन्द हुआ आपके आने पर। मैंने कहा, आप जो कह रहे हैं वह कुछ और कह रहे हैं, आपका चेहरा कुछ और कह रहा है। उन्होंने कहा, क्या आप मेरे भीतर की बात पकड़ते हैं? मैंने कहा, भीतर की बात नहीं पकड़ता, आपका चेहरा इन्कार कर रहा है। उन्होंने कहा, आपने बात ही उठा दी तो मैं आपसे कह ही दूँ कि मैं सफर में चलता हूँ तो मुझे शराब

पीने की आदत है ! मैंने आर्डर दे रखा है। सोडा आ गया, शराब आ गई। आपको देखकर मैं डर गया और मैंने कहा अब मुश्किल हो गई ! अब न शराब पी सकता हूँ, न आमलेट खा सकता हूँ। मैंने कहा, लेकिन क्या आप मुझे शराब पिलायेंगे ? उन्होंने कहा, नहीं नहीं, मैं क्यों पिलाऊँगा ? मैंने कहा, आप पियेंगे तो मैं क्यों रोकूँगा ? अगर आप मुझे जबर्दस्ती शराब पिलाएँ, जितनी हिंसा यह होगी उससे कम हिंसा यह न होगी कि मैं आपको शराब पीने न दूँ। ये दोनों बराबर हिंसाएँ हैं। आप मजे से पियें। उन्होंने कहा, नहीं, एक संत के रहते हुए मैं कैसे पियूँगा ! मैंने कहा, कैसे पागल हो गए हैं ! शराब पीनी है कि संत को पीना है ? मैं दुष्ट आदमी नहीं हूँ। अगर आपको फिर भी तकलीफ हो तो मैं चला जाऊँ। उन्होंने कहा, नहीं नहीं, आप बैठें। उन्होंने बड़े डरते-डरते शराब पी। बाद में उन्होंने मुझसे एक बात कही जो हिन्दुस्तान भर के सब संतों—जिन्दा और मुर्दो—को बता देनी है। उन्होंने मुझसे कहा कि आप संत-जैसे दिखाई पड़ने वाले पहले आदमी हैं जो मुझे भले आदमी मालूम पड़े। असल में संत भले आदमी हो ही नहीं सकते। अधिकतर संत सैडिस्ट होते हैं, या मेसोचिस्ट होते हैं। या तो वे दूसरे को सताते हैं या खुद को सताते हैं। और जो खुद को सताने में कुशल होता है वह दूसरे को सताने का अधिकार पा जाता है। विनोबा वगैरह को मत लाएँ। मेरे हिसाब से तो उन सब बेचारों की मानसिक चिकित्सा होनी चाहिए। मेरे हिसाब से ये कहीं जाते नहीं। ये बहुत अजीब तरह की विकृतियों में रह रहे हैं। लेकिन यह मैं कह रहा हूँ, ऐसे विनोबा हैं, ऐसा आपको मानने को नहीं कह रहा हूँ। ऐसा मुझे दिखाई पड़ रहा है। मेरा दिखायी पड़ना गलत हो सकता है। मेरे हिसाब से मनुष्य जाति को अब तक जिन लोगों ने ढालने की कोशिश की उन ढालने वाले लोगों में ९० प्रतिशत लोग मानसिक रूप से रुग्ण थे इस लिए यह मनुष्यता पैदा हुई जो मानसिक रूप से रुग्ण है और यह विकृति तो पैदा की गई है। इसमें महावीर का हाथ है, बुद्ध का हाथ है, कृष्ण का हाथ है, क्राइस्ट का हाथ है, मुहम्मद का हाथ है। इन सारे लोगों ने, इन सारे शिक्षकों ने मनुष्यता को ढालने की कोशिश की और जो मनुष्यता पैदा हुई है, वह बिलकुल पागल मालूम पड़ती है। इस पागल मनुष्यता में बुद्ध को बचाया नहीं जा सकता, महावीर को हटाया नहीं जा सकता। उनका हाथ जरूरी है। जबतक सीधे सत्यों को देखने की हिम्मत न

जुटायें, बड़ी मुश्किल होती है। असल में अच्छे आदमी अनेक लोगों को बुरा बनाने का कारण बनते हैं। अच्छे बाप के घर में अच्छा बेटा पैदा होना बहुत मुश्किल हो जाता है। जब बाप थोपता है अपने को बेटे पर, तो बेटा बगावत के लिए तैयार रहता है। और जब संत थोपता है अपने को समाज पर तो समाज को विकृत करता है। नहीं, मैं थोपने वाले लोगों के पक्ष में नहीं हूँ। कम से कम मैं किसी तरह के थोपने के सहयोग में खड़ा नहीं हो सकता। मैं इन क्रिमिनल्स के साथ खड़ा होने को राजी नहीं हूँ। मेरे लिए जो अपराधी है, वह है। आपसे नहीं कहता कि आप अपराधी मान लेना ऐसों को, क्योंकि फिर यह भी थोपना हो जायगा।

नया वर्ष : नया संदेश

नए वर्ष के नए दिन पर पहली बात तो यह कहना चाहूँगा कि दिन तो रोज ही नया होता है, लेकिन रोज नए दिन को न देख पाने के कारण हम वर्ष में कभी-कभी नए दिन को देखने की कोशिश करते हैं। अपने को धोखा देने की तरकीबों में से एक तरकीब यह भी है। दिन तो कभी भी पुराना नहीं लौटता है। रोज, हर पल और हर क्षण नया होता है, लेकिन हमने अपनी पूरी जिन्दगी को पुराना कर डाला है। उसमें नए की तलाश मन में बनी रहती है, तो वर्ष में एकाध दिन नया दिन मानकर अपनी इस तलाश को पूरा कर लेते हैं। लेकिन यह सोचने की बात है। जिसका पूरा वर्ष पुराना होता हो उसका एक दिन नया कैसे हो सकता है ? जिसकी एक वर्ष को पुराना देखने की आदत हो, वह एक दिन को नया कैसे देख पायगा ? जो मन हर

चीज को पुराना कर लेता है, वह आज को भी पुराना कर लेता है। तब फिर नए का धोखा पैदा करने को नए कपड़े हैं, उत्सव हैं, मिठाइयाँ हैं, गीत हैं—फिर नए का हम धोखा पैदा कर लेते हैं। लेकिन न नए कपड़े से कुछ नया हो सकता है, न नए गीत से कुछ हो सकता है। नया मन चाहिए और नया मन जिसके पास हो उसे कोई दिन कभी पुराना नहीं होता है, और जिसके पास ताजा मन हो, वह हर दिन हर चीज को ताजा और नया देखता है। लेकिन ताजा मन हमारे पास नहीं है, तो हम चीजों को नया करते हैं, मकान का नया रंग-रोगन करते हैं, पुरानी कार बदलकर नई कार ले लेते हैं, पुराने कपड़े की जगह नया कपड़ा बनवा लेते हैं। हम चीजों को नया करते रहते हैं, क्योंकि नया मन हमारे पास नहीं है। नई चीजें कितनी देर धोखा देंगी? नया कपड़ा कितनी देर नया रहेगा? पहनते ही पुराना हो जायगा। नई कार कितनी देर नई रहेगी?

कभी यह सोचा है कि नए और पुराने होने के बीच में कितना फासला है? जब तक जो नहीं मिला है नया होता है, मिलते ही पुराना हो जाता है। अगर नई कार कल खरीदी हो तो आज सोचेंगे कि और नई कार कैसे आवे और पुरानी से छुटकारा कैसे हो? चीजों को नया करने वाली इस वृत्ति ने सब तरफ जीवन को बड़ी कठिनाई में डाल दिया है, क्योंकि कार ही नई नहीं करनी पड़ेगी, पत्नी भी नई लानी पड़ेगी। मकान को नया पोत कर नया कर लेने पर, नई कार खरीद लेने पर, पत्नी भी खुश हो गई, पति भी खुश हो रहा है। लेकिन उन्हें खयाल नहीं कि यह जो आदमी चीजों का नया करने पर लगा है, यह एक पत्नी से जीवन भर राजी नहीं रह सकता, न एक पत्नी पति से जीवन भर राजी रह सकती है। क्योंकि नया होने का मतलब चीजें बदलनी हैं। पहले पश्चिम ने मकान बदले, कारें बदलीं, फिर अब आदमी बदलने लग गए हैं। वह यहाँ भी होगा। मन में नए की खोज जरूरी है और होनी भी चाहिए। लेकिन दो तरह की नए की खोज होती है या तो स्वयं को नया करने की एक खोज होती है और जो आदमी स्वयं को नया कर लेता है उसे कभी कोई चीज पुरानी होती ही नहीं। जो अपने मन को रोज नया कर लेता है उसके लिए हर चीज रोज नई हो जाती है, क्योंकि वह आदमी रोज नया हो जाता है। और जो अपने को नया नहीं कर पाता है उसके लिए सब चीजें पुरानी ही होती हैं। थोड़ी देर धोखा दे सकता है नए से, लेकिन थोड़ी देर

बाद सब चीजें पुरानी पड़ जाती हैं। दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं, एक वे जो अपने को नया करने का राज खोज लेते हैं, और एक वे जो अपने को पुराना बनाये रखते हैं और चीजों को पुराना बनाये रखने में लगे रहते हैं—जिसको भौतिकवादी कहना चाहिए, वह आदमी है जो चीजों को नए करने की तलाश में हो। लेकिन शायद भौतिकवादी की, यह परिभाषा हमारे खयाल में नहीं आती। भौतिकवादी और अध्यात्मवादी में एक ही फर्क है—अध्यात्मवादी रोज अपने को नया करने की चिन्ता में संलग्न है, क्योंकि उसका कहना यह है कि अगर मैं नया हो गया तो मेरे लिए इस जगत् में पुराना कुछ भी न रह जायगा, क्योंकि जब मैं ही नया हो गया तो पुराने का स्मरण करने वाला भी न बचा, पुराने को देखने वाला भी न बचा, हर चीज नई हो गई। भौतिकवादी कहता है कि चीजें नई करो क्योंकि स्वयं को तो नया होने का कोई उपाय नहीं है। नए मकान बनाओ, नई सड़कें लाओ, नए कारखाने, नए सारी व्यवस्था करो—सब नया करना है। लेकिन अगर सब नया है और आदमी पुराना है, चीजों को पुराना करने की तरकीब उसके भीतर है, तो चीजों को पुराना कर ही लेगा। फिर हम इस तरह धोखे पैदा करते हैं। उत्सव हमारे दुखी चित्त के लक्षण हैं। चित्त दुखी हो, फिर भी एकाध दिन हम उत्सव मनाकर खुश हो लेते हैं। वह खुशी बिलकुल थोपी गई होती है, क्योंकि कोई दिन कैसे किसी को खुश कर सकता है! अगर कल आप उदास थे और मैं उदास था, तो आज दीवाली हो जाय तो मैं खुश कैसे हो जाऊँगा? हाँ, खुशी का भ्रम पैदा कर लेते हैं। दीए और पटाखे, फुलझड़ियाँ और रोशनी धोखे पैदा करेंगी कि आदमी खुश हो गया है, लेकिन ध्यान रहे, जबतक दुनियाँ में दुखी आदमी हैं तभी तक दीवाली है। जिस दिन दुनियाँ में प्रसन्न लोग रहेंगे उस दिन दीवाली-जैसी चीज नहीं मनेगी, क्योंकि रोज ही दीवाली-जैसा जीवन होगा। जबतक दुनियाँ में दुखी लोग हैं तबतक मनोरंजन के साधन हैं। जिस दिन आदमी आनंदित होगा उस दिन मनोरंजन के साधन एकदम विलीन हो जायँगे। अपने को मनोरंजित करने वही आदमी जाता है जो दुखी है, इसलिए दुनियाँ जितनी दुखी होती जाती है उतने मनोरंजन के साधन हमें खोजने पड़ रहे हैं। चौबीस घंटे हमें मनोरंजन चाहिए—सुबह से लेकर रात तक, क्योंकि आदमी दुखी होता चला जा रहा है। आमतौर से हम समझते हैं कि जो आदमी मनोरंजन की तलाश करता है वह बड़ा प्रसन्न आदमी है। ऐसी भूल में मत पड़ जाना।

सिर्फ दुखी आदमी मनोरंजन की खोज करता है और सिर्फ दुखी आदमी ने उत्सव ईजाद किए हैं। और सिर्फ पुराने पड़ गए चित्त ने, जिसमें धूल ही जम गई है, नए दिन, नए साल आदि की ईजाद करके धोखा पैदा किया है। नया दिन बीतता है, कल फिर पुराना दिन शुरू हो जायगा। लेकिन एक दिन के लिए आप जैसे कोई झटका देकर झाड़ देना चाहते हैं सारी राख को, सारी धूल को—उससे कुछ होने वाला नहीं है। यह धोखे जुड़े हुए हैं। पुराना चित्त नए की तलाश से जुड़ा हुआ है। चाहिए ऐसा कि रोज नया चित्त हो सके।

कैसे हो सकता है ? यह थोड़ी-सी बात मैं आपसे करूँ। तब नए–नए साल न होंगे, नया दिन न होगा, नए आप होंगे। और तब कोई भी चीज पुरानी नहीं हो सकती। जो आदमी निरंतर नए में जीने लगे उसके जीवन की खुशी का हिसाब आप लगा सकते हैं। जिसकी पत्नी पुरानी न पड़ती हो, पति पुराना न पड़ता हो, जिसके लिए कुछ भी पुराना नहीं पड़ता हो, वही रास्ता कल जिससे गुजरा था आज गुजर कर फिर भी नए फूल देख लेता हो, नए पत्ते देख लेता हो उन्हीं वृक्षों पर, उसी सूरज में नया उदय देख लेता हो, उसी साँझ में नई बदलियाँ देख लेता हो, जो आदमी रोज नए को ईजाद कर सकता है भीतर से, उस आदमी की खुशी का हम कोई अन्दाजा ही नहीं लगा सकते। वैसा आदमी सिर्फ बोर नहीं होगा, बाकी सब लोग ऊब जायँगे। पुराना उबाता है, उस ऊब से छूटने के लिए थोड़ी-बहुत तरकीब करते हैं लेकिन उससे कुछ होता नहीं है, फिर पुराना हो जाता है। एक-दो दिन बाद फिर पुराना साल शुरू हो जायगा, फिर अगले वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। नया दिन आयगा, नए दिन पर हम थोड़े नए कपड़े पहनेंगे, थोड़े मुस्करायेंगे, थोड़े चारों तरफ खुशी की बातें करेंगे और ऐसा लगेगा, सब नया हो रहा है। यह सब झूठा है, क्योंकि यह बहुत बार नया हुआ है और बिलकुल नया कभी नहीं हुआ है। हर साल नया साल आता है और हर साल पुराना साल वापस लौट जाता है। इससे हमारी आकांक्षा का तो पता चलता है, लेकिन हमारी समझदारी का पता नहीं चलता। आकांक्षा तो हमारी है कि नया दिन होगा। वर्ष में एक ही हो, तो भी बहुत है, लेकिन ऐसी क्या मजबूरी है ? अगर एक दिन को नया करने की तरकीब का पता चल जाय तो हम हर दिन को नया क्यों नहीं कर सकते ?

एक फकीर के पास कोई आदमी गया और उससे उसने पूछा कि मैं कितनी

देर के लिए शांत होने का अभ्यास करूँ, तो उस फकीर ने कहा, एक क्षण के लिए शांत हो जाओ, बाकी की तुम फिक्र मत करो। उस आदमी ने कहा, एक क्षण में क्या होगा? उस फकीर ने कहा, जो एक क्षण में शांत होने की तरकीब जान लेता है वह पूरी जिन्दगी शांत रह सकता है, क्योंकि एक क्षण से ज्यादा किसी आदमी के हाथ में दो क्षण कभी होते ही नहीं। एक क्षण ही में आता है, जब आता है। और अगर एक क्षण को मैं नया कर सकूँ और शांत कर सकूँ और आनंद से भर सकूँ तो मेरी पूरी जिन्दगी आनंदित हो जायगी। क्योंकि एक ही क्षण मेरे हाथ में आने वाला है सदा और उसी तरकीब को मैं जानता हूँ कि एक क्षण को कैसे नया कर सकूँ। एक क्षण को जो नया करना जान ले उसकी पूरी जिन्दगी नई हो जाती है। लेकिन हम क्षण को पुराना करना जानते हैं, नया करना नहीं जानते। और जिन्दगी वैसी ही हो जाती है जैसी हम कर लेते हैं। पुराने करने की तरकीबों का हमें पता है। हम प्रत्येक चीज में पुराने को खोजने को इतने आतुर होते हैं जिसका हिसाब नहीं।

जैसा मैं अभी यहाँ बोल रहा हूँ तो आपमें से कोई सोच सकता है कि यह गीता में लिखा है कि नहीं। उसके दिमाग में यह पुराना करने की तरकीब है। वह सोच सकता है कि फलाँ संन्यासी रामकृष्ण ने ऐसा कहा है कि नहीं, रमण ने कहा है कि नहीं, किसने कहा है, कृष्णमूर्ति ऐसा कहते हैं कि नहीं कहते हैं? उसका मतलब यह है कि मैं जो कह रहा हूँ उसमें वह पुराने को खोजने की तरकीब में लगा हुआ है। हम प्रत्येक चीज में पुराने को खोजते हैं और नए के लिए तड़पते हैं, बल्कि हमारा आग्रह भी होता है कि पुराना ही रहे। अगर कल आपके पति ने या आपकी पत्नी ने शाम को आपसे प्रेम से बातें की थीं तो आज शाम भी आप प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह फिर प्रेम से बोले, क्योंकि आप पुराने की तलाश कर रहे हैं। और अगर आज शाम वह आपसे प्रेम से नहीं बोला है तो उपद्रव शुरू हो जायगा, क्योंकि कल की साँझ दोहरानी चाहिए थी। और आप चाहते हैं कि साँझ नई हो जाय और आकांक्षा आती है कि कल की साँझ फिर दोहरे, तो हो सकता है पति झंझट में न पड़े, पत्नी झंझट में न पड़े और कल की साँझ को दोहरा दे। कल उसने जो बातें प्रेम से कही थीं आज फिर कह दे। हो सकता है कल वह बात उसके भीतर से निकली हो, आज सिर्फ वह दोहरा रहा हो, तब पुराने का धोखा भी पैदा हो जायगा और नए का जन्म भी न होगा और पुराना हमारे ऊपर

सिर्फ दुखी आदमी मनोरंजन की खोज करता है और सिर्फ दुखी आदमी ने उत्सव ईजाद किए हैं। और सिर्फ पुराने पड़ गए चित्त ने, जिसमें धूल ही जम गई है, नए दिन, नए साल आदि की ईजाद करके धोखा पैदा किया है। नया दिन बीतता है, कल फिर पुराना दिन शुरू हो जायगा। लेकिन एक दिन के लिए आप जैसे कोई झटका देकर झाड़ देना चाहते हैं सारी राख को, सारी धूल को—उसमें कुछ होने वाला नहीं है। यह धोखे जुड़े हुए हैं। पुराना चित्त नए की तलाश से जुड़ा हुआ है। चाहिए ऐसा कि रोज नया चित्त हो सके।

कैसे हो सकता है ? यह थोड़ी-सी बात मैं आपसे कहूँ। तब नए-नए साल न होंगे, नया दिन न होगा, नए आप होंगे। और तब कोई भी चीज पुरानी नहीं हो सकती। जो आदमी निरंतर नए में जीने लगे उसके जीवन की खुशी का हिसाब आप लगा सकते हैं। जिसकी पत्नी पुरानी न पड़ती हो, पति पुराना न पड़ता हो, जिसके लिए कुछ भी पुराना नहीं पड़ता हो, वही रास्ता कल जिससे गुजरा था आज गुजर कर फिर भी नए फूल देख लेता हो, नए पत्ते देख लेता हो उन्हीं वृक्षों पर, उसी सूरज में नया उदय देख लेता हो, उसी साँझ में नई बदलियां देख लेता हो, जो आदमी रोज नए को ईजाद कर सकता है भीतर से, उस आदमी की खुशी का हम कोई अन्दाजा ही नहीं लगा सकते। वैसा आदमी सिर्फ बोर नहीं होगा, बाकी सब लोग ऊब जायँगे। पुराना उबाता है, उस ऊब से छूटने के लिए थोड़ी-बहुत तरकीब करते हैं लेकिन उससे कुछ होता नहीं है, फिर पुराना हो जाता है। एक-दो दिन बाद फिर पुराना साल शुरू हो जायगा, फिर अगले वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। नया दिन आयगा, नए दिन पर हम थोड़े नए कपड़े पहनेंगे, थोड़े मुस्करायेंगे, थोड़े चारों तरफ खुशी की बातें करेंगे और ऐसा लगेगा, सब नया हो रहा है। यह सब झूठा है, क्योंकि यह बहुत बार नया हुआ है और बिलकुल नया कभी नहीं हुआ है। हर साल नया साल आता है और हर साल पुराना साल वापस लौट जाता है। इससे हमारी आकांक्षा का तो पता चलता है, लेकिन हमारी समझदारी का पता नहीं चलता। आकांक्षा तो हमारी है कि नया दिन होगा। वर्ष में एक ही हो, तो भी बहुत है, लेकिन ऐसी क्या मजबूरी है ? अगर एक दिन को नया करने की तरकीब का पता चल जाय तो हम हर दिन को नया क्यों नहीं कर सकते ?

एक फकीर के पास कोई आदमी गया और उससे उसने पूछा कि मैं कितनी

देर के लिए शांत होने का अभ्यास करूँ, तो उस फकीर ने कहा, एक क्षण के लिए शांत हो जाओ, बाकी की तुम फिक्र मत करो। उस आदमी ने कहा, एक क्षण में क्या होगा? उस फकीर ने कहा, जो एक क्षण में शांत होने की तरकीब जान लेता है वह पूरी जिन्दगी शांत रह सकता है, क्योंकि एक क्षण से ज्यादा किसी आदमी के हाथ में दो क्षण कभी होते ही नहीं। एक क्षण ही में आता है, जब आता है। और अगर एक क्षण को मैं नया कर सकूँ और शांत कर सकूँ और आनंद से भर सकूँ तो मेरी पूरी जिन्दगी आनंदित हो जायगी। क्योंकि एक ही क्षण मेरे हाथ में आने वाला है सदा और उसी तरकीब को मैं जानता हूँ कि एक क्षण को कैसे नया कर सकूँ। एक क्षण को जो नया करना जान ले उसकी पूरी जिन्दगी नई हो जाती है। लेकिन हम क्षण को पुराना करना जानते हैं, नया करना नहीं जानते। और जिन्दगी वैसी ही हो जाती है जैसी हम कर लेते हैं। पुराने करने की तरकीबों का हमें पता है। हम प्रत्येक चीज में पुराने को खोजने को इतने आतुर होते हैं जिसका हिसाब नहीं।

जैसा मैं अभी यहाँ बोल रहा हूँ तो आपमें से कोई सोच सकता है कि यह गीता में लिखा है कि नहीं। उसके दिमाग में यह पुराना करने की तरकीब है। वह सोच सकता है कि फलाँ संन्यासी रामकृष्ण ने ऐसा कहा है कि नहीं, रमण ने कहा है कि नहीं, किसने कहा है, कृष्णमूर्ति ऐसा कहते हैं कि नहीं कहते हैं? उसका मतलब यह है कि मैं जो कह रहा हूँ उसमें वह पुराने को खोजने की तरकीब में लगा हुआ है। हम प्रत्येक चीज में पुराने को खोजते हैं और नए के लिए तड़पते हैं, बल्कि हमारा आग्रह भी होता है कि पुराना ही रहे। अगर कल आपके पति ने या आपकी पत्नी ने शाम को आपसे प्रेम से बातें की थीं तो आज शाम भी आप प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह फिर प्रेम से बोले, क्योंकि आप पुराने की तलाश कर रहे हैं। और अगर आज शाम वह आपसे प्रेम से नहीं बोला है तो उपद्रव शुरु हो जायगा, क्योंकि कल की साँझ दोहरानी चाहिए थी। और आप चाहते हैं कि साँझ नई हो जाय और आकांक्षा आती है कि कल की साँझ फिर दोहरे, तो हो सकता है पति झंझट में न पड़े, पत्नी झंझट में न पड़े और कल की साँझ को दोहरा दे। कल उसने जो बातें प्रेम से कही थीं आज फिर कह दे। हो सकता है कल वह बात उसके भीतर से निकली हो, आज सिर्फ वह दोहरा रहा हो, तब पुराने का धोखा भी पैदा हो जायगा और नए का जन्म भी न होगा और पुराना हमारे ऊपर

भारी होता चला जायगा। हम निरंतर पुराने की अपेक्षा किए हुए हैं और नए की आकांक्षा भी किए हुए हैं। अगर कल जब आप मेरे पास आए थे और मैं हँस कर बोला था तो जब आज आप मेरे पास आए हैं तो अपेक्षा लेकर आए हैं कि मुझे हँसकर बोलना चाहिए। जो आदमी कल था, वह गया। वह आदमी कहाँ है, पता नहीं। कल वह आदमी क्यों हँसा था, आज हँसेगा कि नहीं, इसका क्या पता ? लेकिन अगर वह नहीं हँसता है तो हमारे मन में पीड़ा है, क्योंकि हम कल को दोहराना चाहते है। हम उस आदमी को नया होने का मौका नहीं देना चाहते हैं और पुराने से ऊब भी जाते हैं। नए का मौका नहीं देना चाहते हैं तो इस कंट्राडिक्शन में जिन्दगी उलझाव और चिन्ता बन जाय तो आश्चर्य नहीं। मैं आपसे यह कह रहा हूँ कि हम हर चीज को पुराना करने की तरकीब खोजते हैं, नए करने की कोई तरकीब नहीं खोजते। मैं आपको नए करने की तरकीब बताना चाहता हूँ और आपको एक दफा यह राज समझ में आ जाय कि चीजों को नया कैसे करना है, तो आपकी जिन्दगी इतनी खुशियों से भर जायगी कि अलग से खुशियों के फूल खरीदने की जरूरत न रह जायगी और अलग से नए कपड़े पहनकर नए होने की जरूरत न रह जायगी, और अलग से त्योहार और दिन और वर्ष मनाने की जरूरत न रह जायगी। अलग से दीवाली और होली विदा हो जानी चाहिए। यह सब दुखी और परेशान आदमी के लक्षण हैं। क्या तरकीब हो सकती है नए की ?

पहली तो बात यह है कि प्रतिपल नए की खोज की हमारी दृष्टि होनी चाहिए कि क्या नया है ? हम पूछते हैं कि क्या पुराना है ? हमारे मन में प्रश्न होना चाहिए क्या नया है ? और अगर हमारे मन में यह प्रश्न हो तो ऐसा कोई भी क्षण नहीं जिसमें कुछ नया न आ रहा हो। सुबह सूरज को उठकर देखें, जो सूर्योदय आज हुआ है वह कभी नहीं हुआ था। सूर्योदय रोज हुआ है, लेकिन जो आज हुआ है वह कभी नहीं हुआ था। हो सकता है आप कह दें, सूर्योदय रोज होता है, नया क्या है ? लेकिन वह सूर्योदय जो आज हुआ है यह न कभी हुआ था, न कभी होगा; न ऐसे बादलों के रंग कभी पहले हुए थे, न आगे कभी होंगे, न सूरज आज की सुबह उगा है ऐसा कभी उगा था, न उग सकता है। नए को खोजें और आप चकित रह जायँगे कि आप इस भ्रम में जी रहे थे कि रोज वही सूरज उगता था। वही सूरज रोज नहीं उगता है।

न वह पत्नी रोज होती है, न वही पति रोज होता है। जो कल था, वह कल विदा हो गया है। तो थोड़ा तलाश करते रहें। जो राख जम जाती है पुराने की, उसको हटाकर नीचे के अंगारे की खोज करते रहें कि नया क्या है। नए का सम्मान करना सीखें तो नया प्रकट होगा। अगर सम्मान नहीं करेंगे तो राख ही प्रकट होगी, अंगारा प्रकट नहीं होगा, अंगारा भीतर छिप जायगा। नए का सम्मान करें और जिन्दगी की यंत्रवत् पुनरुक्ति की आकांक्षा छोड़ दें। अगर कल मुझसे प्रेम मिला था तो जरूरी नहीं है कि आज भी मिले। आज को खुला छोड़ें, जो मिलेगा उसे देखें। यह आकांक्षा न करें कि जो कल मिला था वह आज भी मिलना ही चाहिए। जहाँ ऐसी आकांक्षा आई कि हमने चीजों को पुराना करना शुरू कर दिया। जिन्दगी को एक पुलक में जीने दें, एक अनिश्चय में जीने दें। क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। आज प्रेम मिलेगा या नहीं मिलेगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इस असुरक्षा को स्वीकार कर लें। लेकिन हम सुरक्षित होने की इतनी व्यवस्था करते हैं, इस-लिए हमारा सारा जीवन बासी और पुराना हो गया है।

जिन्दगी एक अनिश्चय है और आदमी डर के कारण सब निश्चित कर लेता है। निश्चित कर लेता है तो सब बासी हो जाता है। केवल वे ही लोग नए हो सकते हैं जो अनिश्चित में जीने की हिम्मत रखते हैं। वे यह कहते हैं कि जो होगा वह देखेंगे, हम कोई पक्का करके नहीं चलते हैं, हम कुछ निश्चित करके नहीं चलते हैं, हम कल के लिए कोई नियम नहीं बनाते हैं कि कल ये नियम पूरे करने ही होंगे। अगर आज के नियम कल पूरे होंगे तो कल आज की शक्ल में ढल जायगा। लेकिन हम भविष्य को ढालने में चिन्तित हैं। हम न केवल भविष्य को, बल्कि मरने के बाद तक ढालने को चिन्तित हैं। हम इसका भी पता लगाना चाहते हैं कि मरने के बाद मैं बचूंगा कि नहीं? अपने नाम के सहित, अपनी उपाधि के साथ, अपने पद के साथ मैं रहूँगा या नहीं? पत्नी अपने पति से यह भी पूछ लेना चाहती है कि अगले जन्म में तुम मिलोगे कि नहीं? तुम्हीं मिलोगे न? वह अगले जन्म तक को ऊब में ढालने की चेष्टा में लगी है। इस जिन्दगी को भी उसने 'बोर्डम' बना लिया है, अगली जिन्दगी को भी 'बोर्डम' बना लेना चाहती है। जिन्दगी में नए का स्वागत नहीं है, पुराने का आग्रह है, तो सब पुराना हो जायगा। मैं आपसे कहता हूँ कि पुराने की अपेक्षा छोड़ दें, तो रोज वर्ष का नया दिन होगा। नए का

स्वागत करें, नए का सम्मान करें। और नए को खोजें कि नया क्या है ? खोज पर बहुत कुछ निर्भर करता है कि हम क्या खोजने जाते हैं। अगर एक आदमी गुलाब के पास कांटों को खोजने जायगा तो काँटे खोज लेगा, कांटे वहाँ हैं। और अगर एक आदमी फूल खोजने जायगा तो यह हो सकता है कि कांटों का उसे पता ही न चले, वह फूल खोज ले और वापस लौट आये। फूल भी वहाँ हैं, लेकिन हम क्या खोजने जाते हैं इस पर निर्भर करता है।

जिन्दगी में सब है, वहाँ राख भी है पुराने की, वहाँ अंगार भी है नए का। वहाँ चीजें मर भी रही हैं, पुरानी भी हो रही हैं। वहाँ नए का जन्म भी हो रहा है—वहाँ वृद्ध भी हैं, वहाँ बच्चे भी हैं। वहाँ जन्म भी है, वहाँ मृत्यु भी है। वहाँ कुछ विदा हो रहा है, कुछ आ रहा है। आप क्या खोजने गए हैं, इस पर निर्भर करता है। अगर आप मृत को खोजने गए, तो आप मरघट पर पहुँच जायेंगे और तब आपको सब मुर्दे ही वहाँ दिखायी पड़ेंगे और सब लाशें और सब कब्रें दिखायी पड़ेंगी और तब आप उन कब्रों और लाशों और मुर्दों के बीच कैसे जिन्दा रह पायेंगे ? आप मुर्दा हो जायेंगे ! जहाँ चारों तरफ मुर्दे घिर गए हों वहाँ आप मर जायेंगे। लेकिन एक तरफ जीवन जन्म भी ले रहा है रोज। वहाँ आप खोजने नहीं गए हैं जहाँ सूरज की रोज नई किरण फूटती है, कली फूटती है, रोज नया कुछ हो रहा है। क्योंकि जो पुराना हो वह नया कैसे हो सकता था, अगर नया पैदा न होता ! जो आज बूढ़ा हो गया है, वह बूढ़ा इसलिए हो गया है कि कल वह बच्चा था। और जो फूल कुम्हला कर गिर गया है और बासी हो गया है, वह बासी इसलिए हो गया है कि कल वह ताजा था। अब यह आपके ऊपर निर्भर है कि आप ताजी घटना को खोजते हैं या बासी घटना को खोजते हैं। कौन आपसे कह रहा है कि गिरते फूलों को देखिए ? गिरते फूलों को भी देखा जा सकता है। किंतु जिस व्यक्ति को नए से संबंध जोड़ना हो उसे उगते फूलों को देखना चाहिए, उसे काँटे गिनना छोड़ देना चाहिए। उसे नए का स्वागत और सम्मान नए की अपेक्षा में करना चाहिए, उसे अनजान की अपने भीतर प्रविष्टि के लिए खुला द्वार रखना चाहिए। तब प्रति दिन नया है, प्रति संबंध नया है, प्रत्येक मित्र नया है, पति नया है, बेटा नया है, बेटी नई है—सारी जिन्दगी नई है। तब नए के भीतर जो जीता है उसके भीतर अगर नए का फूल खिल जाता हो, तो आश्चर्य नहीं है, क्योंकि पुराने के बीच जो जीता है उसके भीतर सब सिकुड़ जाता है

और मर जाता है। हम अपने चारों तरफ क्या इकट्ठा कर रहे हैं इस पर निर्भर करेगा कि हमारे भीतर क्या घटित होगा। हमारे भीतर जो घटना घटेगी, वह हमारे हाथ से ही इकट्ठी की हुई है।

एक रास्ता यह है, जो चलता आया है, कि वर्ष में एक दिन नया होता है और ३६४ दिन पुराने होते हैं। मेरा मानना है कि यह एक दिन झूठा होता है, धोखा होता है। जब ३६४ दिन पुराने होते हैं तो एक दिन नया कैसे हो सकता है? इतने पुराने की भीड़ में नया हो नहीं सकता है, सिर्फ नए का धोखा हो सकता है। मैं आपसे कह रहा हूँ कि ३६५ दिन ही नए हो सकते हैं, प्रति पल नया हो सकता है—लेकिन नए ही की तैयारी और नए का सम्मान और नए के लिए मन का द्वार खुला होना चाहिए। और जो व्यक्ति एक बार नए के लिए अपने मन में द्वार खोल लेता है, आज नहीं कल पाता है कि नए के पीछे परमात्मा प्रवेश कर गया है, क्योंकि परमात्मा अगर कुछ है तो जो निरंतर नया है, उसी का नाम है। लेकिन हमारे ग्रन्थ और हमारे गुरु और हमारे संन्यासी तो कहते हैं कि परमात्मा उसका नाम है जो सबसे पुराना है, वह जो सबसे पहले हुआ, वह जो सनातन है, वह जो प्राचीन से प्राचीन है, जब कुछ भी नहीं था, तब वह था। हमारे मंदिरों में मरे हुए की पूजा चल रही है, हमारी मस्जिदों में मरे हुए का आदर हो रहा है। हमारे सब ग्रन्थ और गुरु पुराने के सम्मान में लगे हैं। किंतु जिन्दगी रोज नई है और जिन्दगी रोज वहाँ पहुँचती जाती है जहाँ कभी नहीं पहुँचती थी। वहाँ रोज नए फूल खिलते हैं, रोज नए तारे निकलते हैं, नया गीत पैदा होता है, वहाँ सब नया है, वहाँ पुराना कुछ होता ही नहीं। अगर परमात्मा भी है तो वहीं है। जो रोज नया होता है, परमात्मा वही है। जो सदा से है वह नहीं। परमात्मा वह है जो प्रतिपल होता है और प्रतिपल होता ही चला जाता है। जीवन वही है जो निरंतर होता चला जा रहा है। जीवन एक धारा है, एक बहाव है, रोज नया होता है। अगर हम पुराने पड़ गए तो पिछड़ जाते हैं। अगर हम भी नए हुए तो जीवन के साथ बह पाते हैं। ऐसा बहकर देखें तो शायद सभी दिन नए हो जायँ, सभी दिन खुशी के हो जायँ और जो भी मिले उससे ही आनंद झरने लगे, क्योंकि हमारे पास वह टेकनीक, वह तरकीब, वह शिल्प, वह कला आयगी जिससे हम हर जगह नए को खोज ही लेंगे।

मैंने सुना है, एक ऐसा विचारक, जो प्रति पल नए से नए की आशा से

भरा था, प्रति पल खुशी को खोजने के लिए आतुर था और जो हर दुःख में भी, हर अँधेरी से अँधेरी वदली में भी चमकती हुई विजली की किरणों को खोज लेता था, वह न्यूयार्क में एक सौवीं मंजिल के ऊपर रहता था। वह एक वार सौवीं मंजिल से नीचे गिर पड़ा। कहानी कहाँ तक सच है, मुझे पता नहीं, लेकिन अगर ऐसा कोई आदमी होगा, तो सच होनी ही चाहिए। वीच में लोगों ने खिड़कियों से झांक कर उससे पूछा कि क्या हाल है, यह जानने के लिए कि यह आदमी आज इस घड़ी में भी सुख पाता है कि नहीं? उस आदमी ने चिल्लाकर कहा कि अव तक सव ठीक है। वह जमीन की तरफ गिरा जा रहा है। उस आदमी ने हर खिड़की पर चिल्ला कर कहा अव तक सव ठीक है, अव तक कुछ भी गड़वड़ नहीं हुई है। ऐसा आदमी आने वाली मौत को नहीं देख रहा है, गिर जाने वाली घटना को नहीं देख रहा है, अभी इस क्षण में जो है, देख रहा है। वह कह रहा है---अभी सव ठीक है।

अगर ऐसा कोई चि हो, तो शायद उसके लिए मौत भी फूल वन जायगी, शायद उसके लिए मौत भी उपद्रव नहीं ला सकती जो हमें ले आती है। हम तो मरने के वहुत पहले मर जाते हैं क्योंकि वासी और पुराने हो जाते हैं। यह आदमी हो सकता है मर कर भी (अगर हम उससे पूछ सकें तो) कह सके—सव ठीक है, अभी सव ठीक है। एक वार जीवन में नए का वोध शुरू हो जाय तो सव ठीक हो जाता है, और पुराने का वोध गहरा हो जाय, तो सव गलत हो जाता है।

नए वर्ष के लिए मैं कुछ भी नहीं कहूँगा; क्योंकि आप तो नया वर्ष फिर जियेंगे क्योंकि आपने पिछला वर्ष पुराना कर दिया। आप नए वर्ष को भी पुराना करके ही रहेंगे। आपने न मालूम कितने वर्ष पुराने कर दिए, आप पुराना करने में इतने कुशल हैं कि नया वर्ष वच पायगा, इसकी उम्मोद वहुत कम है। आप इसको भी पुराना कर ही देंगे और एक वर्ष वाद फिर इकट्ठे होंगे और फिर सोचेंगे नया वर्ष। ऐसा आप कितनी वार सोच चुके हैं, लेकिन नया आया ही नहीं; क्योंकि आपका ढंग पुराना पैदा करने का है। नए वर्ष की फ़िक्र न करें। नए का कैसे जन्म हो सकता है, इस दिशा में थोड़ी-सी वातें सोचें और प्रयोग करें। पुराने को मत खोजें, खोजेंगे तो वह मिल जायगा, क्योंकि वह है। हर अंगारे में दोनों वातें हैं। वह भी है जो राख हो गया है, जो वुझ चुका हिस्सा राख हो गया है वह भी है, और

वह अंगारा भी अभी भीतर है जो जल रहा है, जिंदा है, अभी बुझ नहीं गया है। अगर राख खोजेंगे, राख मिल जायगी। जिन्दगी बहुत अद्‌भुत है। उसमें खोजने वाले को सब मिल जाता है। वह आदमी जो खोजने जाता है वह उसे मिल ही जाता है। वह जो आपको मिल जाता है और जो आपको मिल जाता हो, ध्यान से समझ लेना, कि आपने खोजा था इसीलिए मिल गया है और कोई कारण नहीं है उसके मिल जाने का।

तो पहली बात— पुराने को मत खोजना। सुबह से उठकर थोड़ा प्रयोग करके देखें कि पुराने को हम न खोजें। कल जरा अपनी पत्नी को देखें जिसे तीस वर्षों से आप देख रहे थे, आप पायँगे आपने तीस वर्ष देखे ही नहीं थे। हो सकता है, पहले दिन जब आप लाए थे तो देख लिया होगा, फिर बात समाप्त हो गई, फिर आपने देखा नहीं। और अभी मैं आपसे कहूँ कि आँख बन्द करके जरा पाँच मिनट अपनी पत्नी का चित्र बनाइए मन में, तो आप अचानक पायँगे कि चित्र डाँवाँडोल हो जाता है, बनता नहीं। क्योंकि कभी उसकी रेखा अंकित ही नहीं हो पाई, हालाँकि हम चिल्लाते रहते हैं कि इतना प्रेम करते हैं। वह सब चिल्लाना भी इसीलिए है कि प्रेम नहीं करते, शोर-गुल मचाकर आभास पैदा करते रहते हैं। यह आभास हम पैदा करते रहे हैं। तो कल सुबह उठकर नए की थोड़ी खोज कीजिए। नया सब तरफ है, रोज है, प्रति दिन है। हम अपेक्षा करते हैं पुराने की, हम चाहते हैं कि जो कल हुआ था वह आज भी हो, तो फिर कल पुराना हो जायगा। जो कभी नहीं हुआ है वह आज हो, इसकी ओर हमारा खुला मन होना चाहिए। हो सकता है वह दुःख में ले जाय, लेकिन मैं आपसे कहता हूँ, पुराने सुखों से नए दुःख भी बेहतर होते हैं क्योंकि नए होते हैं। उनमें भी एक जिन्दगी और एक रस होता है। पुराना सुख भी खोखला हो जाता है, उसमें भी कोई रस नहीं रह जाता है। इसलिए कई दफा ऐसा होता है कि पुराने सुखों से घिरा आदमी नए दुःख अपने आप ईजाद करता है। यह खोज सिर्फ इसलिए है कि जब नया सुख नहीं मिलता है तो नया दुःख ही मिल जाय। कुछ तो नया हो जाय—नए की इतनी तीव्र प्राणों की आकांक्षा है। लेकिन हम पुराने की अपेक्षा वाले लोग हैं इसलिए दूसरा सूत्र आपसे कहता हूँ—पुराने की अपेक्षा न करें। नया जब आवे तब उसे स्वीकार करें, पुराने की आकांक्षा न करें।

और तीसरी बात—कोई और आपके लिए नया नहीं कर सकेगा, आपको

ही करना पड़ेगा। और ऐसा नहीं है कि आप पूरे दिन को नया कर लेंगे या पूरे वर्ष को नया कर लेंगे, एक एक क्षण को नया करेंगे तो अंततः पूरा दिन, पूरा वर्ष भी नया हो जायगा। एक-एक क्षण हमारे भीतर से निकला जा रहा है, एक-एक क्षण हमारे हाथ से गुजर जाता है। इस क्षण को नया करने की फिक्र करें, अगले क्षण की फिक्र मत करें। अगला क्षण जब आयगा तब उसे नया कर लेंगे। नए के इस मंदिर में थोड़ा प्रवेश उस परमात्मा के निकट पहुँचा देना है जो जीवन का मूल स्रोत है, मूल धारा है। वहाँ जो एक बार नहा लेता है उस मूल स्रोत में, उसके लिए इस जगत् में फिर पुराना रह ही नहीं जाता। फिर कुछ भी पुराना नहीं है, फिर पुराना है ही नहीं। फिर उसके लिए बूढ़े-जैसा कोई मामला ही नहीं है। वह वृद्ध ही नहीं होता, उसे वृद्धावस्था भी एक नई अवस्था है जो जवानी के बाद आती है। तब उसके लिए मृत्यु भी एक नया जन्म है जो जन्म के बाद होता है। तब उसके लिए नए सब द्वार खुलते चले जाते हैं। नए के सब द्वार अंतहीन हैं लेकिन हमने सब पुराना कर डाला है। उसमें नए के झूठे स्तंभ खड़े कर रखे हैं, लीप-पोत कर खड़े कर रखे हैं। ये नए दिन, ये नए वर्ष, यह सब बिलकुल धोखा है जो हमने खड़ा किया है, लेकिन सुखद है क्योंकि वह इतने पुराने को झेलने में सहयोगी हो जाता है, तब ऐसा लगता है कि चलो, अब कुछ नया आया, अब कुछ नया होगा यद्यपि होगा कभी नहीं। कितने मित्र नए वर्ष पर एक दूसरे को शुभ-कामनाएँ देंगे। इन मित्रों को पिछले वर्ष भी उन्होंने शुभकामनाएँ दी थीं। फिर इन शुभकामनाओं को सरल मन से ग्रहण करेंगे और सरल मन से उनका प्रदान भी करेंगे—यह जानते हुए कि यह सब व्यर्थ है, इसका कोई मतलब नहीं है। मैं एक ही बात कह सकता हूँ कि आपको याद दिलाऊँ कि आपने इतने वर्ष पुराने कर डाले। अतः नए वर्ष पर खयाल रखना कि फिर वही न करना जो अब तक किया है।

अनजाना ही जीवन है

बहुत-सी बातें समझने में मुश्किल पड़ती है। पहली बात तो यह समझने में मुश्किल पड़ती है कि कहीं जाना नहीं है। हमारे चित्त की पूरी व्यवस्था ऐसी है कि वह कहता है कि कहीं चलो जहाँ कुछ भी नहीं है। पूरा चित्त ही इस तनाव से बना है कि कहीं चलो—वहाँ जहाँ कहीं दूर मंजिल है। चित्त का आधार यही है कि मंजिल दूर हो, नहीं तो चित्त गया। क्योंकि मंजिल दूर हो, तो पाने की कोशिश करनी पड़ती है, सोचना पड़ता है। और मंजिल दूर हो, तो आज तो मिल नहीं जाती—कल मिलेगी, इसलिए आज उस कल के प्रति तनाव जारी रखना पड़ता है। मन जीवित रहता है तनाव में। यह तनाव गहरे में कहीं पहुँचने का तनाव है— चाहे वह धन हो, चाहे यश, चाहे मोक्ष। मन उस वक्त मर जाता है जिस वक्त आपने कहा—कहीं नहीं जाना है। जाना

ही करना पड़ेगा। और ऐसा नहीं है कि आप पूरे दिन को नया कर लेंगे या पूरे वर्ष को नया कर लेंगे, एक एक क्षण को नया करेंगे तो अंततः पूरा दिन, पूरा वर्ष भी नया हो जायगा। एक-एक क्षण हमारे भीतर से निकला जा रहा है, एक-एक क्षण हमारे हाथ से गुजर जाता है। इस क्षण को नया करने की फिक्र करें, अगले क्षण की फिक्र मत करें। अगला क्षण जब आयगा तब उसे नया कर लेंगे। नए के इस मंदिर में थोड़ा प्रवेश उस परमात्मा के निकट पहुँचा देता है जो जीवन का मूल स्रोत है, मूल धारा है। वहाँ जो एक बार नहा लेता है उस मूल स्रोत में, उसके लिए इस जगत् में फिर पुराना रह ही नहीं जाता। फिर कुछ भी पुराना नहीं है, फिर पुराना है ही नहीं। फिर उसके लिए बूढ़े-जैसा कोई मामला ही नहीं है। वह वृद्ध ही नहीं होता, उसे वृद्धावस्था भी एक नई अवस्था है जो जवानी के बाद आती है। तब उसके लिए मृत्यु भी एक नया जन्म है जो जन्म के बाद होता है। तब उसके लिए नए सब द्वार खुलते चले जाते हैं। नए के सब द्वार अंतहीन हैं लेकिन हमने सब पुराना कर डाला है। उसमें नए के झूठे स्तंभ खड़े कर रखे हैं, लीप-पोत कर खड़े कर रखे हैं। ये नए दिन, ये नए वर्ष, यह सब बिलकुल धोखा है जो हमने खड़ा किया है, लेकिन सुखद है क्योंकि वह इतने पुराने को झेलने में सहयोगी हो जाता है, तब ऐसा लगता है कि चलो, अब कुछ नया आया, अब कुछ नया होगा यद्यपि होगा कभी नहीं। कितने मित्र नए वर्ष पर एक दूसरे को शुभ-कामनाएँ देंगे। इन मित्रों को पिछले वर्ष भी उन्होंने शुभकामनाएँ दी थीं। फिर इन शुभकामनाओं को सरल मन से ग्रहण करेंगे और सरल मन से उनका प्रदान भी करेंगे—यह जानते हुए कि यह सब व्यर्थ है, इसका कोई मतलब नहीं है। मैं एक ही बात कह सकता हूँ कि आपको याद दिलाऊँ कि आपने इतने वर्ष पुराने कर डाले। अतः नए वर्ष पर खयाल रखना कि फिर वही न करना जो अब तक किया है।

अनजाना ही जीवन है

बहुत-सी बातें समझने में मुश्किल पड़ती है। पहली बात तो यह समझने में मुश्किल पड़ती है कि कहीं जाना नहीं है। हमारे चित्त की पूरी व्यवस्था ऐसी है कि वह कहता है कि कहीं चलो जहाँ कुछ भी नहीं है। पूरा चित्त ही इस तनाव से बना है कि कहीं चलो—वहाँ जहाँ कहीं दूर मंजिल है। चित्त का आधार यही है कि मंजिल दूर हो, नहीं तो चित्त गया। क्योंकि मंजिल दूर हो, तो पाने की कोशिश करनी पड़ती है, सोचना पड़ता है। और मंजिल दूर हो, तो आज तो मिल नहीं जाती—कल मिलेगी, इसलिए आज उस कल के प्रति तनाव जारी रखना पड़ता है। मन जीवित रहता है तनाव में। यह तनाव गहरे में कहीं पहुँचने का तनाव है— चाहे वह धन हो, चाहे यश, चाहे मोक्ष। मन उस वक्त मर जाता है जिस वक्त आपने कहा—कहीं नहीं जाना है। जाना

ही नहीं है कहीं, तो मन के अस्तित्व की सारी आधारशिला हट जाती है। जब तक आप कहीं जाने में लगे हैं तब तक एक बात पक्की है कि अपने को जानने में ही लग सकते हैं; क्योंकि दूर ले जाने वाला मन पास नहीं आने देता। और यह दूर ले जाने वाला मन इतना कुशल है कि फिर अगर दूर भी आप चले जायँ तो यह कहता है कि पास आने के लिए भी कोई रास्ता चाहिए। जैसे एक आदमी यहाँ रात में सोया और उसने सपने में देखा कि वह कलकत्ते चला गया, तो उसे किसी रास्ते से लौट आना पड़ेगा कलकत्ते से यहाँ। वस्तुतः वह गया ही नहीं है! क्योंकि सच बात यह है कि जहाँ हम हैं वहाँ से वस्तुतः जा ही कैसे सकते हैं? जो हम हैं उससे अन्यथा हम हो कैसे सकते हैं? हम वहीं हैं, सिर्फ हमारा मन चला गया है, सिर्फ कामना चली गई है। मन भी क्या जायगा—कामना चली गई है, 'डिजायर' चली गई है दूर। हम वहीं खड़े हैं। सवाल कुल इतना है कि जहाँ हम खड़े हैं वहीं हम अपनी सारी 'डिजायर' को, सारे विचार को, सारी कामना को रोक लें तो जो हम हैं वह हमें पता चल जायगा। एक तो यह समझ में नहीं आता साधारणतया, क्योंकि जीवन का सारा अनुभव यह कहता है कि मंजिल दूर है। आत्मिक अनुभव की बात बिलकुल उलटी है कि मंजिल दूर बिलकुल नहीं है, बिलकुल ही पास है। तो जो मंजिल दूर है उसको जोड़ने के लिए रास्ता चाहिए, विधि चाहिए, मेथड चाहिए, टेकनीक चाहिए और समय चाहिए। फिर गुरु चाहिए, फिर बताने वाला चाहिए, क्योंकि मंजिल आगे है। भविष्य अंधकारपूर्ण है। हम वहाँ गए नहीं हैं, तो कोई गुरु चाहिए। भविष्य में मंजिल है तो गुरु अनिवार्य है, शास्त्र अनिवार्य हैं—गाइड होगा, व्यवस्था होगी, विधि होगी, टेकनीक होगी। लेकिन मजे की बात है कि मंजिल यहीं मौजूद है, अभी इसी वक्त। कहीं जाना नहीं है खोजने, सिर्फ ठहर जाना है। और ठहर वह जायगा जो खोज बन्द कर दे, क्योंकि खोजने वाला मन ठहर कैसे सकता है? वह खोज रहा है, निरंतर खोज रहा है। नहीं खोज रहे हैं आप, नान-सीकिंग की एक हालत है। कुछ भी नहीं खोज रहे हैं, बस हैं। तो इस क्षण में होगा क्या? इस क्षण में आप कहीं भी गए होंगे, तो चेतना वहीं होगी जहाँ है और जहाँ उद्घाटन होगा।

सभी विधियाँ इस बात को मानकर चलती हैं कि आप कहीं चले गए हैं या आपको कहीं जाना है।

तो विधि-मात्र की जो भूल है वह हमारे जानेवाले मन में लगी हुई है और जब विधि सीखेंगे तो फिर गुरु चाहिए। फिर सब आयगा पीछे से—सारी गुरुडम आयगी, आश्रम आयगा, संप्रदाय आयगा, अनुयायी आयँगे—वह सब आयँगे। दूसरी मजे की बात है जो खयाल में नहीं आती और वह यह है कि अगर किसी क्षण में कोई व्यक्ति कुछ भी नहीं खोज रहा हो तो भी तो कहीं होगा। न खोजता हो, न करता हो, न सोचता हो तो भी कहीं होगा। अपने को अन्यथा होने के सब दरवाजे बन्द हैं। न तो वह कुछ कर रहा है कि उलझ जाय, न वह कुछ सोच रहा है जिसमें फँस जाय, न वह कुछ खोज रहा है जिसमें वह चला जाय। न खोज रहा है, न सोच रहा है, न कर रहा है। नान-डूइंग, नान-सीकिंग, नान-थिंकिंग। होगा कहाँ, जायगा कहाँ ? मर तो नहीं जायगा। होगा कहीं वह, फिर वहीं होगा जहाँ है। कोई उपाय नहीं रहा उसका। बाहर जाने के दरवाजे गए। ये सब दरवाजे बाहर ले जाने वाले हैं, क्योंकि किसी भी स्थिति में जिस स्थिति में होगा वह उसका स्वभाव होगा, उसका स्वरूप होगा—उसका उद्‌घाटन करना है और स्वरूप के उद्‌घाटन के लिए सब मेथड बाधाएँ हैं और सब रास्ते बाधाएँ हैं, क्योंकि वे दूर ले जाते हैं, कहीं खोजने ले जाते हैं। यह एकदम से खयाल में आना अति कठिन मालूम होता है। एक बार खयाल में आ जाय तो इससे ज्यादा सरल कुछ भी नहीं है। लेकिन हमारा जो माइंड है उसकी पूरी की पूरी व्यवस्था इसी भाषा में सोचने की है कि कहीं जाना है, कैसे भी जाना है। और जब कोई रास्ता बताता है तब हमारी समझ में आता है कि बात ठीक कही जा रही है, रास्ता होगा।

एक सज्जन ने बहुत बढ़िया बात कही है। उन्होंने कहा कि चाहे विधि से और चाहे अविधि से, मेथड से चाहे नो मेथड से, पहुँचना हमको वहीं है, पाना हमको वही है। अब इसे अगर गौर से देखेंगे तो मजेदार है यह वाक्य। इसका मतलब क्या होता है ? अब अगर आप यह कहते हैं कि चाहे विधि से और चाहे अविधि से, मंजिल तो एक ही है, तो फिर आप विधि खोज ही लेंगे। विधि से आप नहीं बच सकते, क्योंकि विधि वहीं है मंजिल के साथ। फिर आप अविधि की बात ही नहीं सोच सकते। चूंकि मैं यह कह रहा हूँ इसलिए वे कह सकते हैं कि जो मैंने कहा वही उन्होंने कहा। मैं नहीं कह सकता कि जो मैंने कहा वही उन्होंने कहा। वह तो बिलकुल ही उलटा है,

जो उन्होंने कहा है। मैं नहीं कह सकता यह बात क्योंकि मैं बात ही और कह रहा हूँ। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि मेथड से कोई पहुँच जाता है और कोई नो मेथड से पहुँच जाता है। मैं यह कह रहा हूँ कि मेथड वाला पहुँच ही नहीं सकता, क्योंकि मेथड हमेशा भविष्य की तरफ इंगित करता है, मंजिल कीं तरफ। नो मेथड अपनी तरफ इंगित करता है क्योंकि नो मेथड में मंजिल का कोई उपाय नहीं है। जाइएगा कहाँ ? रास्ता नहीं है कोई। रास्ता तो कहीं ले जाता है, वह हमेशा कहीं ले जाता है। और यहाँ कठिनाई यह हो गई है, आत्मिक जीवन की कि यहाँ कहीं जाना नहीं है। जहाँ हम हैं वहीं एक क्षण को हो जाना है। किसी भी रास्ते से हम गए, तो हम भटके। तो इधर लोग कहते हैं कि रास्ता पहुँचता है और मैं कहता हूँ कि रास्ता मात्र भटकता है। और सब मामलों में बिलकुल ठीक है यह बात कि अगर आपको स्टेशन जाना है, तो रास्ते से जायँगे। एक मामले में यह बात गलत है। अगर अपने पर आना है तो रास्ते साथ नहीं आ पायँगे, क्योंकि रास्ते पर चलना ही दूर निकलने की शुरुआत हो गई है। तब सवाल है करें क्या ? तो मेरा कहना यह है कि हम इस स्थिति को ठीक से समझें ताकि यह पूरी सिचुएशन हमारी समझ में आ जाय कि ऐसा उलझाव है कि अगर रास्ता पकड़े तो भटक गए।

असल में मजा यह है कि रास्ता मात्र बाहर जाने का होता है, क्योंकि अन्दर तो हम हैं। ऐसा तो है नहीं कि हम बाहर गए हैं और अन्दर आना है। अगर इसको हम ठीक से समझें तो ऐसा तो हो नहीं गया है कि हम बाहर हैं और हमें अन्दर आना है। हम तो अन्दर हैं ही, इसमें कोई उपाय ही नहीं है बाहर होने का। इसमें अगर कोई उपाय भी होता तो फिर उलटा उपाय भी होता। यानी ऐसा न करके बाहर हो सकते हैं ! मुझे बताइए आप बाहर हो कैसे सकते हैं ? आप जहाँ भी रहेंगे भीतर ही होंगे। बाहर जाने का तो कोई उपाय नहीं है, लेकिन बाहर की कल्पना भर हो सकती है। आप जब यहाँ बैठे हैं तब कलकत्ता नहीं जा सकते, लेकिन कलकत्ता जाने का सपना देख सकते हैं, इसमें कोई कठिनाई नहीं। आँख बन्द करके आप कलकत्ता जा सकते हैं— इस अर्थ में कि विचार चला जाय, लेकिन आप फिर भी यहीं होंगे। आप होंगे यहीं, आप होंगे अपने भीतर ही। इसलिए भीतर जाने का सवाल नहीं है। हम बाहर किन-किन रास्तों से चले गए हैं उन रास्तों को छोड़ देने का सवाल है असल में। अगर मैं इसी कमरे में बैठा हुआ हूँ, तो मुझे इसी कमरे

में आना नहीं है। सवाल सिर्फ यह है कि मुझे यह कमरा मिट गया है। मुझे कलकत्ता दिखाई पड़ रहा है। तो मैं विचार की किसी यात्रा से कलकत्ता पहुँच गया हूँ। हूँ मैं इसी कमरे में, लेकिन एक अर्थ में कलकत्ते में हूँ। यह कमरा मुझे दिखाई ही नहीं पड़ रहा है। तो मेरे सामने सवाल है कि मैं अपने घर कैसे वापस लौट जाऊँ? अगर सच ही मैं कलकत्ता पहुँच गया होता, तो कोई ट्रेन दिखाई पड़ती, कोई कार पकड़नी पड़ती, वह रास्ता पकड़ना पड़ता। अगर सच ही कलकत्ता पहुँच गया होता तो फिर इस कमरे तक आने के लिए कोई रास्ता पकड़ना ही होता। लेकिन चूंकि मैं सच में पहुँचा ही नहीं, सिर्फ ड्रीम कर रहा हूँ, इसलिए आने के लिए कोई रास्ता नहीं है और अगर मैंने रास्ता पकड़ा तो वह और भटकाने वाला होगा। क्योंकि स्वप्न में पकड़े हुए रास्ते का क्या मतलब हो सकता है? सिर्फ सवाल इतना है कि मैं इस तथ्य के प्रति जाग जाऊँ कि मैं तो भीतर हूँ हीं, सिर्फ मेरा विचार बाहर चला गया है और में कभी अपने भीतर के बाहर नहीं गया, तो फिर अब सवाल क्या है? सवाल यह रह गया है कि विचार न जाय और विचार चला क्यों गया? मैंने भेजा है इसलिए चला गया है और मैंने भेजा इसलिए है कि कलकत्ता में कुछ मिलने को है जो यहाँ नहीं मिल रहा है, इसलिए चला गया है। कोई आकांक्षा है जो वहाँ तृप्त होती है, यहाँ तृप्त नहीं होती, इसलिए चला गया है। विचार चला गया है वासना के वाहन पर बैठकर और हम वहीं हैं, यानी यह आंधारभूत सत्य खयाल में आ जाना चाहिए कि हम वहीं हैं, वासना के वाहन पर बैठकर विचार चला गया है। समझ लीजिए एक आदमी यहाँ बैठा है और कलकत्ते में विचार है। वह कहता है कि मैं कैसे घर लौटूं? उसको हम कहेंगे कि तुम हवाई जहाज पकड़ो और लौट जाओ। वह वहाँ जायगा, कहाँ का हवाई जहाज पकड़ेगा? जितना कलकत्ता झूठ है उतना ही झूठ कलकत्ते में हवाई जहाज का होना है। कलकत्ता में वह है ही नहीं। तब जितना झूठा हवाई जहाज होगा उतनी ही झूठी टिकट होगी, उतना ही झूठा हवाई जहाज का पाइलट होगा, उतना ही हवाई जहाज को पहुँचाने-वाला गाइड होगा। चूंकि कलकत्ता में होना बुनियादी रूप से झूठ है इसलिए अब कलकत्ते में जो भी किया जायगा वह सच हो ही नहीं सकता, वह झूठ ही होगा और झूठ लौटाने वाला नहीं होता है। यह सवाल सिर्फ इतना है कि हमें यह जानना है कि हमें अपने भीतर आना नहीं है। आते तो जब हम

बाहर चले गए होते। हम भीतर हैं, गए हम हैं नहीं, सिर्फ विचार हमारा बाहर चला गया है। विचार न जाय तो हम फौरन पायेंगे कि हम भीतर हैं। सिर्फ आप दिवा-स्वप्न में खो गए थे। हमने थोड़ा हिला दिया, तो आप कलकत्ता में थोड़े ही जागेंगे। आप जागेंगे यहाँ, और कलकत्ता से लौटने के लिए कोई वाहन काम में नहीं आयगा, कोई जरूरत नहीं वाहन की।

यह जो बुनियादी सत्य है कि हम कभी अपने से बाहर गए ही नहीं हैं, हम जिसके बाहर जा सकते हैं वह हमारा स्वरूप नहीं हो सकता। जो हमारा बुनियादी स्वरूप है उससे हम बाहर जा कैसे सकते हैं, लेकिन हम गए हुए मालूम पड़ते हैं। एक तो भूल यह हो गई कि हम गए हुए मालूम पड़ते हैं। अब दूसरा झूठ यह पालना है कि हम लौटें कैसे। मेथड, रिलीजन, पूजा, यह सब हम इसलिए पकड़ते हैं कि लौटने के रास्ते हम पकड़ सकें। बड़े मजे की बात है कि जिस आदमी का जाना ही भूल से भरा है, उसके लौटने की क्या बात है! उस आदमी को सिर्फ इतनी बात के प्रति सजग करना जरूरी है कि तुम कहीं गए ही नहीं हो। अनंत काल से तुम वहीं हो लेकिन अनंतकाल से तुम्हारा चित्त भटक रहा है, कल्पना भटक रही है, भीड़ में तुम खो रहे हो। तो कृपा करो, थोड़ी देर के लिए भीड़ में मत रहो, थोड़ी देर के लिए सोचो मत, थोड़ी देर के लिए वहीं हो जाओ जहाँ हो; तो तुम पा लोगे जो पाया ही हुआ है। इसलिए सवाल मेथड का नहीं है, नो मेथड का है क्योंकि मेथड ले जाने वाला है, रास्ता ले जाने वाला है, इसलिए 'पाथ' का सवाल नहीं है 'नो पाथ' का सवाल है। गुरु कहीं पहुँचाने वाला है, हमें कहीं पहुँचना नहीं है हम यहीं हैं। कौन गुरु हमें पहुँचा सकता है? फिर गुरु की कोई जरूरत नहीं है। इसमें गुरु का कोई सवाल नहीं है। गुरु तो उसी ड्रीमलैंड का हिस्सा है जिसमें हम भटकने को सच मानते हैं, फिर हम ले जाने वाले को सच मानते हैं, फिर उसके चरणों को छूते हैं, फिर उसको गुरु मानते हैं। और वह जो हमको ले जा रहा है वह कहाँ ले जायगा? क्योंकि हम कलकत्ते में हैं नहीं। मेरी जो सारी बात है वह कुल इतनी है कि विचार-किरण हमारी वहीं हैं जहाँ हम नहीं हैं—चित्त में और हमारे बीच में फासला पड़ गया है। यह फासला बिलकुल काल्पनिक है। यह वास्तविक डिस्टेंस अगर होता तो बिलकुल ही रास्ते की जरूरतें पड़ जातीं। लेकिन फासला बिलकुल झूठा है। इस फासले को मिटाने के लिए कुछ और करने की जरूरत नहीं है। यह जो चित्त के जाने

की आदत है। इसको समझने की जरूरत है कि जाता क्यों है बाहर ? जाता है इसलिए कि वहाँ कुछ मिल जायगा। एक गुरु आता है और पूछता है कि मोक्ष पाना है ? वह एक नई डिजायर पैदा करवा रहा है। वह कह रहा है कि मोक्ष वहाँ है। संसार की चीज तो यहीं मिल जायगी जमीन पर, लेकिन मोक्ष तो यहाँ जमीन पर नहीं है। सिद्धशिला बहुत दूर है उसकी। वहाँ मोक्ष है, वह तो हमें पाना है, वहाँ शांति है, वहाँ आनन्द है, वहाँ परम अमृत बरस रहा है। आपका लोभ जगा। अपने भीतर लोभ जगा कि ऐसी शांति मुझे भी चाहिए, ऐसा आनन्द मुझे भी चाहिए। यह मोक्ष मुझे भी चाहिए। और मोक्ष बिलकुल अँधेरे की बात है इसलिए इसमें सब तरह के गुरु चल सकते हैं।

अब यह मोक्ष की आपकी आकांक्षा जग गई और शांति चाहिए, आनन्द चाहिए, सौन्दर्य चाहिए, यह लोभ जग गया। अब आप चले और लंबी यात्रा पर निकले। इस जमीन की यात्रा तो फिर भी वास्तविक है। यह एक ऐसी यात्रा पर आप जा रहे हैं जहाँ बिलकुल अंधा खेल है, जहाँ गुरु कहता है—ओबिडिएंस चाहिए, डाउट नहीं चाहिए। अगर ओबिडिएंस नहीं है तो डाउट है, तो आपको गुरु कहीं ले नहीं जा सकता एक इंच। यह पहले ही इन्तजाम करता है कि शक किया कि भटके, संदेह किया कि गए। गुरु जो कहे वह परम सत्य है। तुम जानते नहीं हो, हम जानते हैं। तो हम जो बताते हैं तुम उस पर शक कैसे कर सकते हो ? तुम जानते नहीं हो, तुम जान लोगे तब ठीक है। हमारे पीछे आओ। अब एक अँधेरा रास्ता शुरू हुआ, क्योंकि जहाँ हम गए नहीं थे वहाँ से यह आदमी हमें लौटाने का रास्ता बता रहा है। एक बात अगर ठीक से खयाल में आ जाय तो सवाल सिर्फ इतना है कि हम जो विचार की किरण बाहर भेजते हैं वह वापस लौट आए और वापस लौटने के लिए भी कुछ होना नहीं है, सच में लौटने की बात नहीं है। सिर्फ कल्पना में हम चले गए हैं जो लोभ पर सवार हो गई है। फिर मोक्ष, स्वर्ग, मुक्ति सब लोभ पर सवार हो गए हैं और इसी लोभ का शोषण कर रहा है गुरु। गुरु लोभ का शोषण कर रहा है। इसलिए जिनको धन की तृप्ति हो जायगी वह फिर धर्म के लोभ में पड़ जायेंगे, वह कहेंगे, धन तो मिल गया, ठीक है, अब मोक्ष भी चाहिए। इस लोभ का शोषण कर रहा है गुरु। वह कह रहा है कि हम तुम्हें जो चीज चाहिए दिलवा देंगे। इसीलिए मैं कहता हूँ कि सब गुरुडम

भ्रान्त है, खतरनाक है। ऐसा नहीं है कि कोई अच्छा गुरु होता है, कोई बुरा होता है। ऐसा नहीं है, गुरु मात्र गड़बड़ है। और दूसरी बात, बहुत-सी ऐसी बातें एकदम से खयाल में न आने से बड़ी मुश्किल हो जाती है। अब जैसे कि कोई भी एक टेक्नीक है। अगर राम वाला है तो 'राम राम जपे, अल्ला वाला है तो अल्ला, जीसस वाला है तो जीसस, जो भी नाम है उसे जपो, उसे जोर से जपते रहो, जपते रहो, तो इस पूरे जपने की प्रक्रिया में किसी भी एक शब्द पर अगर आदमी का मन ठहरा दिया जाय तो वह मूर्च्छित हो जाता है। हिप्नोसिस की इतनी ही तरकीब है कुल। तो इससे आप अपने पर नहीं आते, कलकत्ता तो चले जाते हैं, पर आप अपने पर नहीं लौटते, आप मूर्च्छा में चले जाते हैं यानी स्वप्न से निद्रा में चले जाते हैं। आप स्वप्न से जागरण में नहीं आते क्योंकि कोई भी पुनरुक्ति 'डल' करती है। और इसलिए हम सबका दिमाग धीरे-धीरे बिलकुल 'डल' होता चला जाता है, क्योंकि हमें चौबीस घण्टे पुनरुक्ति करनी पड़ती है—रोज वही, रोज वही। इससे 'डलनेस' आती है और जो ता जगी है मस्तिष्क की वह खत्म होने लगती है। क्योंकि सब 'रुटीन' हो जाता है, इसलिए नए का हमें इतना आनंद होता है। आप अगर अहमदाबाद से ऊब गए हैं, तो पहलगाम अच्छा लगता है। अहमदाबाद ने रिपीटीशन पैदा कर दी है, रोज-रोज वही। जो पहलगाम का रहने वाला है उसे पहलगाम में आनन्द नही आ रहा है। वह सोच रहा है कि कब अहमदाबाद देख लें, बम्बई देख लें, पूना देख लें और जिस दिन देख लेगा उतना ही आनंदित होगा जितना आप हुए हैं क्योंकि उसकी यह रुटीन हो गई है। यह 'डल' हो गया था, अब इससे कुछ देखने की बात नहीं थी। सब वही था। रोज वही सूरज था, रोज वही चांद था, रोज वही पार्क, रोज वही दरख्त। आपने पहले दिन जैसे दरख्त देखे होंगे आज भी देखे होंगे। रोज की बात हो गई, वह रिपिटीशन हो गया।

रिपिटीशन से ऐसा हो जाता है कि जैसे पहाड़ पर रहने वाला आदमी अब पहाड़ को देखता ही न हो। इसमें कोई कठिन बात नहीं। आप भी यहां रह जायेंगे यदि चार-छः महीने तो पहाड़ नहीं दिखाई पड़ेंगे और न पौधे दिखाई पड़ेंगे। रिपीट हो गयी बात। नए के प्रति माइंड जागता है, पुराने के प्रति डल हो जाता है। फिर हम जो भी करते हैं वह सभी रिपिटीशन हो जाता है। हम जो करेंगे वह जो रिपीट करेंगे, रिपीटीशन में डलनेस आ

जायगी। और मजे की बात यह है कि अगर हम कुछ न करें, सिर्फ हों, तो रिपीट करने का प्रश्न ही नहीं उठता। वह अनरिपीटेवल एक्सपीरिएंस है, क्योंकि हम कुछ करते नहीं हैं जिसको हम रिपीट कर सकें। कुछ करते तो रिपीट हो सकता था। हम कुछ करते नहीं हैं, हम सिर्फ होते हैं—तो एक रिजर्वायर हो जाता है माइंड पर—कहीं नहीं जा रहा है बाहर, कहीं नहीं जा रहा है, ठहर गया है। चारों तरफ बाँध है, झरना एक झील बन गया है, कहीं जा नहीं रहा है, कहीं जाने की कोई बात ही नहीं, सब अनंत झील है, एक लहर भी नहीं है, तो सारी शक्ति, सारी ताजगी, सारा युवापन उस स्थिति में पैदा हो जायगा। वह युवापन, वह शक्ति, वह डायनमिक फोर्स, वह रिपीट करेगी बहुत कुछ, लेकिन तब आप आकुपाइड नहीं होंगे। वह क्रिएट करेगी अटोमेटिक—जैसे वृक्ष से फूल आ रहा है वैसे आपसे भी चीजें आयँगी। लेकिन आप फिर उनको कर नहीं रहे हैं, वह हो रही हैं और जब हो रही हैं तब आपके मन पर का बोझ गया। आपके मन पर कोई बोझ नहीं है, कोई भार नहीं है। ऐसी स्थिति में जो अनुभव होगा, वह अनुभव तो मुक्ति का है, निर्भार होने का है। लोग चाहें तो इस तरह की शांति के झूठे अनुभव पैदा कर सकते हैं और मन की सबसे बड़ी ताकत यह है कि वह झूठे अनुभव प्रोजेक्ट कर सकता है।

एक साधु हिमालय में कोई तीस वर्ष थे। तीस वर्ष में उनको पक्का अनुभव हो गया है कि भगवान के दर्शन हो गए हैं। भगवान रोज दिखाई पड़ने लगे। बातचीत होने लगी, दर्शन हो गया, अब शक का कोई उपाय नहीं था। जब सामने ही भगवान दीखता हो, तो और क्या संदेह करना है? फिर वह वहाँ से लौटे और नीचे आए और उन्होंने सोचा कि, जो भगवान हम देखते थे, वह पाँव से तो नहीं दीखते थे, तो उन्होंने शक पकड़ा कि कहीं मेरा इलूजन तो नहीं है। यह जो मैं कर रहा हूँ तीस साल से निरंतर भूखे–प्यासे, इसी की धारणा करने से कहीं दिखाई तो नहीं पड़ने लगा। फिर उन्होंने कहा कि वह जो अभ्यास करता रहा हूँ, उसे छोड़ूँ कुछ दिन के लिए और फिर भी यह दिखाई पड़ता रहे, तो समझूँगा कि अभ्यासजन्य नहीं है, सच में है। अभ्यास गया कि भगवान गए, तो वह अभ्यासजन्य है।

एक सूफी फकीर को मेरे पास लाया गया। सबमें भगवान दिखाई पड़ता है उसे—पौधे में, पत्थर में, सबमें भगवान दिखाई पड़ता है। चलता है रास्ते

पर, तो सब तरफ भगवान को देखता है और बड़ा आनंदित है। मेरे पास कुछ मुसलमान उसे लेकर आए और उन्होंने कहा, बहुत अद्भुत फकीर है। चारों तरफ भगवान ही दिखाई पड़ता है उसको। मैंने उनको कहा कि भगवान आपको अचानक दिखाई पड़े कि आपने कोई इन्तजाम या योजना की थी। उन्होंने कहा, अचानक तो कुछ भी नहीं हो सकता और अचानक का भरोसा भी नहीं किया जा सकता। व्यवस्था की है, साधना की है, एक-एक चीज में भगवान को देखना शुरू किया। फूल देखे तो मैं कहूँ, भगवान है। लेकिन वह तीस वर्ष पहले की बात है। फिर निरंतर अभ्यास करते-करते दिखाई पड़ने लगा। अब तो भगवान ही मुझे सब जगह दिखाई पड़ने लगा। तो मैंने उनसे कहा कि आप तीन दिन मेरे पास रुक जायँ और अभ्यास बन्द कर दें। उन्होंने कहा, अभ्यास मैं कैसे बन्द कर सकता हूँ? मैंने कहा, अब भी आप अभ्यास बन्द नहीं कर सकते जबकि भगवान दिखाई पड़ने लगा सब तरफ! तो अब भी आपके अभ्यास पर ही निर्भर है उसका दिखाई पड़ना। वे मेरे पास रुक गए। शायद दूसरे दिन दो बजे रात उन्होंने रोना शुरू किया। मैं उठकर गया। मैंने कहा, क्या हुआ? वह बहुत चिल्लाने लगे। उन्होंने कहा, सब बर्बाद कर दिया, सब मेरा नष्ट हो गया! मैं कैसे आदमी के यहाँ आ गया, किन कर्मो के फल से मैं आपके पास आ गया! मेरा तो सब खो गया, मुझे कुछ नहीं दिखाई पड़ता! फूल फूल दिखाई पड़ता है, पत्ते पत्ते दिखाई पड़ते हैं, मेरा अनुभव नष्ट हो गया! मैंने उनको कहा, जो अनुभव तीस साल साधने से दिखा और डेढ़ दिन न साधने से खो जाय उस अनुभव का मतलब समझते हैं? वह आपका प्रोजेक्शन है जिसको निरंतर प्रोजेक्ट करते रहो, तभी खड़ा रह सकता है, नहीं तो खड़ा नहीं रह सकता है। जैसे कि हम फिल्म प्रोजेक्ट कर रहे हैं तो वहाँ परदे पर तो कुछ है नहीं। उसे हम प्रोजेक्ट कर रहे है तो हैं और एक सेकेण्ड अगर हमने प्रोजेक्शन बन्द किया, तो वहाँ परदा खाली हो गया। जैसे परदे पर हम कुछ चीज देख सकते हैं वैसे ही मन के परदे पर प्रोजेक्शन करना है और जब तक वह क्रम जारी रहेगा तब तक वह चीज दिखाई पड़ती रहेगी। अब मेरा कहना यह है कि वह चीज दिखाई पड़नी चाहिए जो हमारे अभ्यास पर निर्भर न हो।

तो महेश जी ने जो कहा उन्होंने ठीक कहा। यह ज्यादा सेफर है, सुरक्षित है, व्यवस्थित है, गणित का हिसाब है, इसमें ऐसा करेगा तो ऐसा होगा और

वह बिलकुल ठीक कह रहे हैं। लेकिन वह जो होगा इसके करने पर निर्भर है। वह ऐसा कर रहे हैं इसीलिए हो रहा है। यह ऐसा है जैसे मैंने शराब पी और मुझे बहुत बड़े-बड़े फूल दिखाई पड़ने लगे और मैंने आपसे कहा कि आप शराब पियेंगे तो आपको भी बड़े-बड़े फूल दिखाई पड़ेंगे, अगर न दिखाई पड़ें तो मुझसे आप कहना। आपने भी शराब पी और आपको भी बड़े फूल दिखाई पड़े और आपने कहा, यह बिलकुल ठीक कहते हैं। फूल बड़े दिखाई पड़ते हैं, फूल बड़े नहीं हैं। शराब में अगर फूल बड़े दिखाई देते हैं, तो फूल बड़े नहीं हैं। शराब सिर्फ आपके स्टेट 'आफ माइण्ड को हिप्नोटाइज कर देती है, कुछ और नहीं होता है। सवाल यह नहीं है कि हम क्या देख रहे हैं, सवाल यह है कि क्या है? यह सवाल नहीं है कि हम क्या रियलाइज कर लें, सवाल यह है कि क्या असल में है? हमें कुछ नहीं रियलाइज करना है। हमें कोई प्रोजेक्ट नहीं करना है। हम तो पक्का करके नहीं जाते हैं कि हमको यह देखना है। यह अनुभव करना है, यह प्रतीति करनी है। पक्का करके जायँगे तो सरल हो जायगा। लेकिन माइण्ड का जाल इतना अद्भुत है, खोल इतनी अद्भुत है कि माइण्ड सब चीजें दिखला देता है जो आप देखना चाहें, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। तो वह जो महिलाएँ कहती हैं कि हमको तो अनुभव हो रहा है, वह ठीक कह रही हैं। वह समझ नहीं सकतीं, वह समझ इसलिए नहीं सकतीं कि डर है समझ लेने में। भय यह है कि अगर समझा कि इलूजन तो गया, और अभी चला जायगा उनमें से आधे का, तो आज ही रात उनका सोना मुश्किल हो जायगा। इतना खयाल आपको दिला दूं कि कहीं इलूजन तो नहीं है और इतना खयाल आपको पकड़ जाय तो इलूजन कल सुबह ही नहीं आयगा। क्योंकि वह संदेह उस इलूजन को काट देगा, वह कल सुबह ही दिक्कत में पड़ जायगा। गया वह काम से, क्योंकि एक दफा भी डाउट आ जाय कि इस वक्त जो मैं देख रहा हूँ वह है भी? बस वह तो अनडाउट माइण्ड ही इलूजन क्रियेट कर सकता है। जो शक करता ही नहीं कभी, संदेह करता ही नहीं वह इलूजन क्रियेट कर सकता है। फिर यह जो इलूजन, इनके एक्सपीरिएंस सब फाल्स हो सकते हैं अगर मेंटली प्रोजेक्ट हैं। जैसे कि अमरीका में और फ्रांस में कुवे का एक मत चलता है। वह फ्रेंच विचारक था। वह कहता है, जो सोचो वह हो जाओ। वह कहता है कि तुम बीमार हो, तो सोचो कि मैं स्वस्थ हूँ, तुम स्वस्थ हो जाओगे। और बड़े मजे की बात यह है कि बीमारी नहीं मिटती और आदमी

पर, तो सब तरफ भगवान को देखता है और बड़ा आनंदित है। मेरे पास कुछ मुसलमान उसे लेकर आए और उन्होंने कहा, बहुत अद्‌भुत फकीर है। चारों तरफ भगवान ही दिखाई पड़ता है उसको। मैंने उनको कहा कि भगवान आपको अचानक दिखाई पड़े कि आपने कोई इन्तजाम या योजना की थी। उन्होंने कहा, अचानक तो कुछ भी नहीं हो सकता और अचानक का भरोसा भी नहीं किया जा सकता। व्यवस्था की है, साधना की है, एक-एक चीज में भगवान को देखना शुरू किया। फूल देखे तो मैं कहूँ, भगवान है। लेकिन वह तीस वर्ष पहले की बात है। फिर निरंतर अभ्यास करते-करते दिखाई पड़ने लगा। अब तो भगवान ही मुझे सब जगह दिखाई पड़ने लगा। तो मैंने उनसे कहा कि आप तीन दिन मेरे पास रुक जायँ और अभ्यास बन्द कर दें। उन्होंने कहा, अभ्यास मैं कैसे बन्द कर सकता हूँ? मैंने कहा, अब भी आप अभ्यास बन्द नहीं कर सकते जबकि भगवान दिखाई पड़ने लगा सब तरफ! तो अब भी आपके अभ्यास पर ही निर्भर है उसका दिखाई पड़ना। वे मेरे पास रुक गए। शायद दूसरे दिन दो बजे रात उन्होंने रोना शुरू किया। मैं उठकर गया। मैंने कहा, क्या हुआ? वह बहुत चिल्लाने लगे। उन्होंने कहा, सब बर्बाद कर दिया, सब मेरा नष्ट हो गया! मैं कैसे आदमी के यहाँ आ गया, किन कर्मों के फल से मैं आपके पास आ गया! मेरा तो सब खो गया, मुझे कुछ नहीं दिखाई पड़ता! फूल फूल दिखाई पड़ता है, पत्ते पत्ते दिखाई पड़ते हैं, मेरा अनुभव नष्ट हो गया! मैंने उनको कहा, जो अनुभव तीस साल साधने से दिखा और डेढ़ दिन न साधने से खो जाय उस अनुभव का मतलब समझते हैं? वह आपका प्रोजेक्शन है जिसको निरंतर प्रोजेक्ट करते रहो, तभी खड़ा रह सकता है, नहीं तो खड़ा नहीं रह सकता है। जैसे कि हम फिल्म प्रोजेक्ट कर रहे हैं तो वहाँ परदे पर तो कुछ है नहीं। उसे हम प्रोजेक्ट कर रहे है तो हैं और एक सेकेण्ड अगर हमने प्रोजेक्शन बन्द किया, तो वहाँ परदा खाली हो गया। जैसे परदे पर हम कुछ चीज देख सकते हैं वैसे ही मन के परदे पर प्रोजेक्शन करना है और जब तक वह क्रम जारी रहेगा तब तक वह चीज दिखाई पड़ती रहेगी। अब मेरा कहना यह है कि वह चीज दिखाई पड़नी चाहिए जो हमारे अभ्यास पर निर्भर न हो।

तो महेश जी ने जो कहा उन्होंने ठीक कहा। यह ज्यादा सेफर है, सुरक्षित है, व्यवस्थित है, गणित का हिसाब है, इसमें ऐसा करेगा तो ऐसा होगा और

वह बिलकुल ठीक कह रहे हैं। लेकिन वह जो होगा इसके करने पर निर्भर है। वह ऐसा कर रहे हैं इसीलिए हो रहा है। यह ऐसा है जैसे मैंने शराब पी और मुझे बहुत बड़े-बड़े फूल दिखाई पड़ने लगे और मैंने आपसे कहा कि आप शराब पियेंगे तो आपको भी बड़े-बड़े फूल दिखाई पड़ेंगे, अगर न दिखाई पड़ें तो मुझसे आप कहना। आपने भी शराब पी और आपको भी बड़े फूल दिखाई पड़े और आपने कहा, यह बिलकुल ठीक कहते हैं। फूल बड़े दिखाई पड़ते हैं, फूल बड़े नहीं हैं। शराब में अगर फूल बड़े दिखाई देते हैं, तो फूल बड़े नहीं हैं। शराब सिर्फ आपके स्टेट आफ माइण्ड को हिप्नोटाइज कर देती है, कुछ और नहीं होता है। सवाल यह नहीं है कि हम क्या देख रहे हैं, सवाल यह है कि क्या है? यह सवाल नहीं है कि हम क्या रियलाइज कर लें, सवाल यह है कि क्या असल में है? हमें कुछ नहीं रियलाइज करना है। हमें कोई प्रोजेक्ट नहीं करना है। हम तो पक्का करके नहीं जाते हैं कि हमको यह देखना है। यह अनुभव करना है, यह प्रतीति करनी है। पक्का करके जायँगे तो सरल हो जायगा। लेकिन माइण्ड का जाल इतना अद्भुत है, खोल इतनी अद्भुत है कि माइण्ड सब चीजें दिखला देता है जो आप देखना चाहें, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। तो वह जो महिलाएँ कहती हैं कि हमको तो अनुभव हो रहा है, वह ठीक कह रही हैं। वह समझ नहीं सकतीं, वह समझ इसलिए नहीं सकतीं कि डर है समझ लेने में। भय यह है कि अगर समझा कि इलूजन तो गया, और अभी चला जायगा उनमें से आधे का, तो आज ही रात उनका सोना मुश्किल हो जायगा। इतना खयाल आपको दिला दूं कि कहीं इलूजन तो नहीं है और इतना खयाल आपको पकड़ जाय तो इलूजन कल सुबह ही नहीं आयगा। क्योंकि वह संदेह उस इलूजन को काट देगा, वह कल सुबह ही दिक्कत में पड़ जायगा। गया वह काम से, क्योंकि एक दफा भी डाउट आ जाय कि इस वक्त जो मैं देख रहा हूँ वह है भी? बस वह तो अनडाउट माइण्ड ही इलूजन क्रियेट कर सकता है। जो शक करता ही नहीं कभी, संदेह करता ही नहीं वह इलूजन क्रियेट कर सकता है। फिर यह जो इलूजन, इनके एक्सपीरिएंस सब फाल्स हो सकते हैं अगर मेंटली प्रोजेक्ट हैं। जैसे कि अमरीका में और फ्रांस में कुवे का एक मत चलता है। वह फ्रेंच विचारक था। वह कहता है, जो सोचो वह हो जाओ। वह कहता है कि तुम बीमार हो, तो सोचो कि मैं स्वस्थ हूँ, तुम स्वस्थ हो जाओगे। और बड़े मजे की बात यह है कि बीमारी नहीं मिटती और आदमी

स्वस्थ अनुभव करने लगता है। जो आदमी कल चल नहीं सकता था सड़क पर, वह चलने लगेगा। जो आदमी कल बिस्तर नहीं छोड़ सकता था वह बिस्तर छोड़ देगा, ताकत आती हुई मालूम पड़ेगी। वह बीमारी अपनी जगह खड़ी है, बीमारी कहीं गई नहीं है और यह आदमी अगर खाट पर ही पड़ा रहता तो शायद बीमारी मिट सकती थी किसी वास्तविक इलाज से। अब यह बीमारी का इलाज भी नहीं करेगा क्योंकि एक इलूजन खड़ा हो गया है कि मैं स्वस्थ हूँ, कौन कहता है कि मैं बीमार हूँ? कुवे कहता है कि कोई तुमसे कहे कि बीमार हो, तो मानो ही मत, इन्कार कर दो उसकी बात को। तुमने माना, बस तुम बीमार हो जाओगे। जरूर ऐसी बीमारियाँ हैं जो मानने से हो सकती हैं लेकिन वह झूठी हैं। और ऐसा स्वास्थ्य भी नहीं है, जो मानने से हो सकता है—वह झूठा है। और असली और नकली स्वास्थ्य में फर्क करना बड़ा मुश्किल है। जो आप माने ही बैठे हैं कि आप सच में स्वस्थ हैं तो मेरा कहना है कि फर्क यह है कि नकली स्वास्थ्य को आपको मान-मानकर पैदा करना पड़ता है, असली स्वास्थ्य को आपको मान-मानकर पैदा नहीं करना पड़ता है। आप न मानें तो भी वह है। असली स्वास्थ्य जो है वह है, आपको मानना नहीं पड़ता। नकली स्वास्थ्य को मान–मानकर पैदा करना पड़ता है। तो शांति भी पैदा की जा सकती है जो नकली है, स्वास्थ्य भी पैदा किया जा सकता है जो नकली है, मोक्ष भी पैदा किया जा सकता है, भगवान भी पैदा किया जा सकता है जो नकली है। और नकली का पैदा करना एकदम सरल है, क्योंकि माइंड उसके लिए एकदम राजी हो जाता है। वह माइंड के लिए बड़ा सवाल है। असली को जानना कठिन है क्योंकि उसको जानने के लिए माइंड को विदा करने की जरूरत है और माइंड हमेशा सुरक्षा मानता है। वह अगर इस कमरे में भी रात सोयेगा तो वह पता लगा लेगा कि सब दरवाजे बन्द हैं क्या? कोई खतरा तो नहीं है? वह अगर कोई किताब भी पढ़ेगा तो पता लगा लेगा कि किताब अच्छी है, कोई खराब बात तो उसमें नहीं लिखी गई है? वह अगर किसी गुरु को भी पकड़ेगा, तो पहले पचास दफे पता लगा लेगा कि यह गुरु ठीक है? किसी को पहुँचाया है इसने? तो फिर मैं भी इसके पीछे जाऊँ। माइंड जो है वह सुरक्षा मानता है क्योंकि वह डरता है कि कहीं मर न जाय और मजा यह है कि अगर आप उसको सुरक्षा देते चले जाते हैं, तो सब तरह वह मजबूत होता चला जाता है।

संन्यासी कहता है हम कोई सुरक्षा नहीं मानते, हम असुरक्षा में जीते हैं, हम नहीं कहते कि कल कुछ मिलेगा, कल सुबह देखेंगे।। वह आदमी बुरा है या भला हम क्यों सोचें ? यदि वह बिस्तर उठाकर ले जायगा, तो ले जायगा। यह मैं क्यों निर्णय लूं कि यह आदमी कैसा है ? हम कुछ सोचते नहीं हैं, हम जीते हैं चुपचाप एक-एक क्षण में। इतनी असुरक्षा में जो जीता है उसके ही माइंड में एक्सप्लोजन हो सकता है; क्योंकि माइंड फिर जी नहीं सकता, माइंड को मरना पड़ेगा। माइंड को चाहिए व्यवस्था। वह व्यवस्था खत्म हो गई, वह कहता था पैसे बचा कर रखूं, वह कहता था बैंक में इन्तजाम रखूं, वह कहता था कि भगवान के पास भी पुण्य की व्यवस्था रखूं, सब हिसाब करके रखूं, ताकि कुछ गड़बड़ न हो जाय। और जितना ज्यादा हिसाब, उतनी ही मृत चीज उपलब्ध होती है। जितनी सुरक्षा उतना मरा आदमी है और जितनी असुरक्षा जितनी जोखिम, जितनी रिस्क उतना ही जिन्दा आदमी है। और मजा यह है कि भगवान के मामले में भी जोखिम लेने की तैयारी न हो, वहाँ भी हम पक्का करके ही चलें सब, तो फिर बहुत मुश्किल है। भगवान का मतलब यह है कि अनजान वह जो सागर है उसमें तो हमें कूदना पड़ेगा, किनारे को छोड़ कर। किनारा सुरक्षित है बिलकुल, वहाँ कोई खतरा नहीं है। डूबने का कोई डर नहीं है किनारे पर। किनारा बहुत सुरक्षित है और किनारे पर जो खड़ा है वह जिन्दगी भर खड़ा रह सकता है। सागर का अनुभव तो उसी को मिलता है, जो कूद जाय किनारे से। खतरा है, इसलिए जिन्दगी है वहाँ। और हमारा मन है जो निरंतर यह माँग करता है कि सब व्यवस्थित होना चाहिए। बड़े मजे की बात यह है कि जिन्दगी बिलकुल व्यवस्थित नहीं है, जिन्दगी बहुत अव्यवस्थित है और अव्यवस्थित है इसलिए जीवित है। आप फर्क कर लें। एक पत्थर बहुत व्यवस्थित है, एक फूल उतना व्यवस्थित नहीं है। फूल में जिन्दगी है। पत्थर कल भी वहीं था, आज भी वहीं है, परसों भी वहीं होगा। फूल सुबह वहाँ था, साँझ पड़े नहीं है। उसका कोई भरोसा नहीं है। अभी है, जोर की हवा चलेगी, गिर जायगा। अभी सूरज निकलेगा, कुम्हला जायगा। अभी है, बरसात आयगी मिट जायगा। पत्थर वहीं होगा। पत्थर बहुत सिस्टमेटिक है कांस्टेंट है। जैसा है वैसे ही है, सदा वहीं बैठा हुआ है। लेकिन पत्थर मरा है और फूल में एक लिविंग क्वालिटी है।

मेरा कहना यह है कि जिस व्यक्ति को जितने गहरे सत्य की तरफ जाना हो उतने सुरक्षा के इन्तजाम छोड़कर जाना चाहिए, और जान लेना चाहिए कि वह खतरे में है। तो जिन्दगी सुरक्षित यहीं है, वहाँ तो खतरा है। लेकिन जो परम खतरे में उतरने की तैयारी करता है वह खतरे में उतरने की तैयारी ही उसके भीतर ट्रांसफर्मेशन बन जाती है क्योंकि इस खतरे में जाना, बदल जाना है। सब व्यवस्था छोड़कर, सब सुरक्षा छोड़कर जो उतर जाता है अनजान में, यह उतरने की तैयारी ही, यह साहस ही उसके भीतर संकेत-चिह्न बनता है, और उसके भीतर परिवर्तन हो जाता है। जितनी बड़ी असुरक्षा में हम जाने को तैयार हैं उतने ही हम वस्तुतः सुरक्षित हो जाते हैं—क्योंकि कोई भय न रहा, फिर कोई डर न रहा। नाप-जोख वालों ने तो स्वर्ग-नर्क के नक्शे बना दिए, एक-एक इंच की दूरी बता दी कि इतनी दूर पर फलाँ जगह है; ताकि पक्का रहे, कोई चीज अनजानी न रह जाय। लेकिन कुछ है जो निरंतर अनजाना है और वही परमात्मा है। वही जीवन है जो अनजाना है। जो मृत है कल उसके बाबत हम सुरक्षित हो सकते हैं, जो जीवित है वह कल कहाँ होगा, कुछ भी कहना मुश्किल है। जीवंत के साथ बड़ी कठिनाई है और हम सब व्यवस्था बनाकर उसको मार देते हैं। मजे की बात यह है कि जो भी सिस्टम बनायी जाय वह झूठी हो जाती है। झूठी इसलिए हो जाती है कि उसमें विरोध बरदाश्त नहीं किये जा सकते, उसमें विरोध अलग कर देने पड़ते हैं। वह ऐसा है जैसे कोई पेंटर चित्र बनाये। वह काला रंग भी लाता है, सफेद रंग भी लाता है और सफेद और काले को लाकर चित्र बना देता है लेकिन विरोध है। फिर एक पेंटर आयेगा, वह कहेगा, इसमें बहुत 'कंट्राडिक्शंस' हैं—यह कहीं सफेद, कहीं काला; यह कोई भरोसे की बात नहीं मालूम पड़ती। या तो काला ही काला हो तो साफ मालूम होता है कि क्या है, या सब सीधा सफेद हो तो मालूम पड़ता है कि क्या है। तो वह एक सफेद पेंटिंग बना दे, एक काली पेंटिंग बना दे तो वह दो चीजें हो गईं—लेकिन उन दोनों में कोई पेंटिंग नहीं है। वह दोनों बिलकुल साफ सुथरी हो गईं, विरोधी चीजें उनमें कोई नहीं। जिन्दगी पूरे विरोध से मिलकर बनी है। सब चीजें विरोधी हैं। इसलिए जो पूरी जिन्दगी को समझने जायगा वह सब तरह के विरोधों को स्वीकार करेगा। वह दोनों है और दोनों एक के ही रूप हैं। ऐसा अगर कोई कहेगा तो विरोध मालूम पड़ेगा। यह तो बड़ी उलटी बात हो

गई। जैसे समझ लें कि मैं कहता हूँ कि उसे पाने के लिए कुछ भी नहीं करना है, लेकिन जो कुछ भी नहीं कर रहा है वह उसे पा लेगा, यह मैं नहीं कहता। यह विरोध मालूम होता है।

मैं कहता हूँ 'नौट डूइंग ऐनीथिंग' तो मतलब यह नहीं है कि डूइंग नथिंग। सड़क पर चलने वाला भी कुछ कर रहा है। उसको हम कहते हैं कुछ भी नहीं कर रहा है। वह भी कुछ कर रहा है। मंदिर में बैठा आदमी भी कुछ कर रहा है, संन्यासी भी कुछ कर रहा है। सच में ऐसी दशा में कोई भी नहीं है जो कुछ भी नहीं कर रहा है। मैंने कहा कि बहुत कठिन है, इसलिए नहीं कठिन है कि कोई टेकनीक से सरल हो जायगा। यह कठिन इसलिए है कि हमारी करने की आदत मजबूत है और टेकनीक इसे सरल नहीं बनायगी, इसे होने नहीं देगी क्योंकि टेकनीक फिर करने की आदत को मजबूत कर देगी। तो सारा मामला यह है कि मैं जो कह रहा हूँ यह 'न करना' है। जैसा मैंने कहा, न करने को हम टेकनीक के द्वारा करेंगे तो सरल हो जायगा, क्योंकि कठिन है। कठिन मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि वह सरल हो सकता है, कठिन मैं इसलिए कह रहा हूँ कि हमारे मन की आदत करने की है, न करने की उसकी आदत नहीं है और टेकनीक भी करना है। मन इसलिए राजी हो जायगा कि चलो करते हैं लेकिन करे कोई कितना ही, 'करने से' उस 'न करने' पर कैसे पहुँच सकता है ? डुइंग नान-डुइंग कैसे बन सकता है ? वह तो किसी न किसी क्षण उसे जानना पड़ेगा कि डुइंग से नहीं होता और डुइंग जायगी, तो नान-डूइंग शेष रह जायगी। जो बहुत सारी कठिनाई है न करने में वह ठहरने की है, तो कोई भी 'करना' आपको पकड़ा दिया जायगा कि राम राम जपिये तो आप ठहर सकते हैं, फिर कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन वह बात ही खत्म हो गई। वह न करने में ठहरना था। फिर कई दफे, जैसे उन्होंने (महेश योगी ने) कहा—कोई सपना गहरा, कोई उथला। यह सवाल ही नहीं है। जैसे कोई आदमी कहे कि एक आदमी ने दो पैसे की चोरीकी और एक आदमी ने दो लाख की चोरी की, तो एक की चोरी छोटी है और एक की बड़ी है। अगर कोई ठीक से समझेगा तो चोरी छोटी-बड़ी हो सकती है क्या ? चोरी करना मनोदशा की बात है क्योंकि 'दो पैसे चुराता है कि दो लाख, सवाल ही नहीं है। दो पैसे चुराने में जितना चोर होना पड़ता है उतना ही दो लाख चुराने में भी होना पड़ता है। जो अन्तर है वह दो पैसे और दो लाख

का है—चोरी का नहीं है। चोरी करनेवाले का जो चित्त है वह बिलकुल समान है—चाहे वह दो पैसे चुराये चाहे एक कंकड़ चुराये, चाहे दो करोड़ चुराये, चाहे दस करोड़ चुराये। कोई यह नहीं कह सकता है कि दो पैसे चुराने वाला छोटा चोर है, दो करोड़ चुराने वाला बड़ा चोर। बड़े और छोटे कहीं चोर होते हैं ? छोटे और बड़े अवसर होते हैं। चोर छोटा-बड़ा नहीं होता है। एक को दो पैसे चुराने का अवसर मिला है, एक को दो करोड़ चुराने का अवसर मिला है। चोर का चित्त है एक। चोरी छोटी-बड़ी नहीं होती।

एक आदमी सपना देख रहा है साधारण-सा हल्का फुल्का। एक आदमी बहुत गहरा सपना देख रहा है। ये जो फर्क हैं वे एक ही तरह के हैं—जैसे एक पैसे की चोरी की या लाख रुपये की चोरी की। सपना सपना है। नींद नींद है, उसका टूटना टूटना है। इन दोनों के बीच में सच में कोई भी सीढ़ी नहीं है। सोया हुआ आदमी सोया हुआ आदमी है, जागा हुआ आदमी जागा हुआ आदमी है। उन दोनों के बीच कोई गैप नहीं है। वह जिसने सिढ़ियाँ पार कर ली हैं वह आदमी थोड़ा जग गया है। यह आदमी थोड़ा और जग गया है। 'जाग' जो है उसकी मात्रा नहीं है कि थोड़ी-बड़ी हो सके। आप बिस्तर पर पड़े हैं। बाहर का आदमी कह सकता है कि यह आदमी थोड़ा-सा जग गया है, करवट बदलता है यह देखकर, लेकिन आप पूरे जग गए हैं, पड़े रहें, यह दूसरी बात है। जाग ऐसी नहीं है कि थोड़े-से जग गये हैं आप। लेकिन आदमी को यह बात एकदम कठिन मालूम पड़ती है। वह कहता है कि सीढ़ियाँ बता दीजिए तो पहली सीढ़ी, दूसरी सीढ़ी, तीसरी सीढ़ी, ऐसी सीढ़ियाँ बताइए। हम पूरी सीढ़ी पर नहीं जाते, एक पर जायँगे। तो आदमी की यह माँग जो है वह सीढ़ियाँ पैदा करवा देती है। और सीढ़ियाँ पैदा करनेवाले हैं, जो जरा समझकर उपयोग कर सकते हैं। वह पचास सीढ़ियां बना देते हैं और तब उस वक्त संतोष देते हैं कि आप पहली सीढ़ी पर हैं, वह दूसरी सीढ़ी पर है, वह तीसरी सीढ़ी पर है। सबको तृप्ति मिल रही है। लेकिन जहाँ सीढ़ियाँ होती ही नहीं हैं वहाँ कैसी पहली सीढ़ी, कैसी दूसरी सीढ़ी, कैसी तीसरी सीढ़ी ?

मेरी दृष्टि में अनुभूति सीढ़ी चढ़ने-जैसी नहीं है, अनुभूति छत से कूदने-जैसी है। उसमें कोई सीढ़ियाँ नहीं होतीं। लेकिन हमारा मन चढ़ना चाहता है,

यह भी ध्यान रखना चाहिए। अहंकार चढ़ने में रस लेता है, उतरने में रस नहीं लेता और अहंकार कहता है चढ़ो कहीं ऊपर—और एक सीढ़ी, और एक सीढ़ी, और एक सीढ़ी। बस, सीढ़ियाँ किसी भी चीज की हों। इसलिए अहंकार मार्ग पकड़ता है, पथ पकड़ता है, टेकनीक पकड़ता है, गुरु पकड़ता है, शास्त्र पकड़ता है, सब पकड़ता है। और धर्म कहता है—कूद जाओ, चढ़ने का यहाँ कहीं उपाय नहीं हैं, बिलकुल उतर जाओ जहाँ तक उतर सकते हो और उतरना भी हो सकता था अगर सीढ़ियाँ होतीं। सीढ़ियाँ हैं ही नहीं, कूद ही सकते हैं। छलांग लगा सकते हैं। यह जो छलांग लगाने की हमारी हिम्मत नहीं जुटती है, तो हम कहते हैं कि यह ज्यादा हो सकता है, थोड़ा सिम्पल करो, सरल करो टेकनिक से, व्यवस्था से ताकि उसको हम टुकड़े–टुकड़े में पा लें। एक खंड पहले पा लें, फिर एक खंड पा लें, किस्त में पा लें, यह हमारा खयाल रहता है। किंतु वह किस्त में मिलता नही है। तभी तो हर आदमी खोज रहा है, शांति खोज रहा है, सुख खोज रहा है, आनंद खोज रहा है। किसी आदमी को कहो—खोजो मत, तो वह आदमी कहता है—मर गए! क्योंकि जहाँ वह खड़ा है वहाँ तो दुःख ही दुःख मालूम पड़ रहा है उसे। जैसे लगता है अगर न खोजें तो फिर गया, क्योंकि जो मैं हूँ वहाँ तो दुःख, चिन्ता के सिवा कुछ भी नहीं है, और आप कहते हैं मत खोजो तो फिर मैं गया, तो फिर क्या होगा? लेकिन उसे पता ही नहीं है कि न खोजने की चित्त की दशा क्या है? न खोजने की चित्त की दशा उसने कभी जानी ही नहीं। वह सदा ही खोजता रहा है—कभी खिलौने खोजता था, कभी पदवियाँ खोजता था, कभी मोक्ष खोजता था। छोटा-सा बच्चा खोजना शुरू कर देता है, मरता बुड्ढा तक खोजता रहता है। एक क्षण को पता नहीं चलता है कि खोजना क्या है? मेरे पास कोई आता है तो कहता है, आपके पास मैं खोज के लिए आया हूँ। खोज हम पहले से नहीं कर रहे थे। जब मिलना होता तो पहले ही मिल जाता। मैंने कहा कि तुम खोज तो नहीं रहे थे, कुछ और खोज रहे थे, यह नहीं खोज रहे थे।

अंत में मैं बतला देना चाहता हूँ कि यह ठीक है, मेरा कोई गुरु नहीं है लेकिन इस वजह से मैं गुरु को, इन्कार नहीं कर रहा हूँ और न इस वजह से इन्कार कररहा हूँ कि चूंकि मैं नहीं बता सकता कि व्यवस्था क्या है। व्यवस्था बनाने से आसान कोई चीज नहीं है। आदमी थोड़ा सोच-विचारकरना जानता

हो तो व्यवस्था बनाने में क्या तकलीफ है ? बहुत सरल-सी बात है व्यवस्था बना लेने की । बड़ी बात तो अव्यवस्था में उतरना है । व्यवस्था बनानी तो बड़ी सरल बात है । अव्यवस्था में उतरना, अनार्की में उतरना ही बड़ी बात है । इसलिए मेरी बात थोड़ी कठिन तो है—कठिन इसलिए कि हमारा चित्त जो चाहता है वह मैं नहीं दे रहा हूँ और मैं वह दे नहीं सकता क्योंकि उसे देना चित्त को पुष्ट करना है, उसे मजबूत करना है और वह टूटना चाहिए, मजबूत होना नहीं चाहिए । क्योंकि जितना ही आप भीतर निष्क्रिय में उतर गए उतना ही आपके चारों तरफ सक्रिय का बोध बहुत तीव्र भाव से होगा । वैसा आदमी चौबीस घंटे सक्रिय होगा, लेकिन भीतर बिलकुल निष्क्रिय होगा । बाहर की सक्रियता से कोई वास्ता ही नहीं हैं । और मजा यह है कि कई लोग बाहर की सक्रियता छोड़कर भाग जाते है, भीतर की सक्रियता जारी रखते हैं । बाहर तो कोई भी मकान छोड़कर संन्यासी हो जाता है लेकिन भीतर का काम जारी रखता है पूरे वक्त !

सरलता, सजगता और शून्यता

सुबह-सुबह एक झील के किनारे से नौका छूटी। कुछ लोग उस पर सवार थे। नौका ने झील में थोड़ा ही प्रवेश किया होगा कि जोर का तूफान आ गया और बादल घिर आए। नौका डगमगाने लगी। आज की नौका नहीं थी, दो हजार वर्ष पहले की थी। उसके डूबने का डर पैदा हो गया। जितने लोग उस नौका पर थे, सारे लोग घबरा गए। प्राणों का संकट खड़ा हो गया। लेकिन उस समय भी उस नौका पर एक आदमी शान्त सोया हुआ था। उन सारे लोगों ने जाकर उस आदमी को जगाया और कहा कि क्या सो रहे हो और कैसे शान्त बने हो! प्राण संकट में हैं, मृत्यु निकट में है और नौका के बचने की कोई उम्मीद नहीं है। तूफान बड़ा है और दोनों किनारे दूर हैं। उस शान्त सोए हुए व्यक्ति ने

आँखें खोलीं और कहा—कितने कम विश्वास के तुम लोग हो, कितनी कम श्रद्धा है तुममें। कहो झील से कि शान्त हो जाय। वे लोग हैरान हुए कि झील किसी के कहने से शान्त होती है! यह कैसी पागलपन की बात है! लेकिन वह शान्त सोया हुआ आदमी उठा और झील के पास गया और उसने जाकर झील से कहा, झील! शान्त हो जाओ! और आश्चर्यों का आश्चर्य कि झील शान्त हो गई।

यह आदमी जीसस क्राइस्ट था और झील गैलीली झील थी और उनके साथ उनके दस-बारह मित्र थे। यह कहानी एकदम सच है। आज हर आदमी झील पर सवार है, हर आदमी नौका पर सवार है और कोई आदमी जब तक जीवन में है कभी जमीन पर नहीं है, हमेशा झील में है। एक भी दिन ऐसा नहीं है जब आँधी नहीं आती है, तूफान नहीं आता है। हम रोज ही तूफान में घिरे हैं। लेकिन अगर हममें श्रद्धा हो, आत्म-श्रद्धा, और हम झील से कह सकें कि शान्त हो जाओ, तो झील निश्चित शान्त हो जाती है। कैसे हम उस झील को कहें जो अशान्त बन गई? तूफान और आँधियों से पूर्ण उस चित्त की झील में कैसे शान्ति ला सकते हैं?

आपमें भी वह क्षमता आ सकती है कि आप आँख उठाकर झील की तरफ देख लें तो झील शांत हो जायगी। यह कहने की भी जरूरत न पड़ेगी कि झील, शान्त हो जाओ। क्योंकि तूफान हमारा ही पैदा किया हुआ है और आँधी हमारी पैदा की हुई है। जिस अशान्ति में हम खड़े हुए हैं उसको जानने वाला कोई और नहीं, हम हैं। जिस अशान्ति को मैंने बनाया है, मैं चाहूँ तो उसे इसी क्षण मिटा सकता हूँ। और जिस अंधकार को मैंने निर्मित किया है उसको मिटाने की पूरी सामर्थ्य और शक्ति मुझमें है। मनुष्य कितना ही पाप करे और कितना ही अशान्त हो और कितना ही दुःख में हो और कितना ही पीड़ा में हो, एक सत्य स्मरण रख लेने-जैसा है कि सब उसका अपना बनाया हुआ है। और इसीलिए इसी सत्य में से एक आशा की किरण भी निकल आती है कि जो खुद का बनाया हुआ हो उसे हम खुद मिटाने के हमेशा हकदार होते हैं।

शान्ति की आँख सत्य के दर्शन देने में समर्थ बनाती है। जब भीतर शान्ति होती है और भीतर के चित्त की झील पर कोई लहर नहीं होती है, कोई आँधी नहीं होती, तो हम दर्पण बन जाते हैं और परमात्मा का प्रतिबिम्ब

हममें प्रतिफलित होने लगता है। तब हमारी अन्तरात्मा अपनी गहराइयों में उस सत्य को प्रतिबिम्बित करने लगती है, जो चारों तरफ व्याप्त है और हमें दिखलाई नहीं पड़ता है। हम अशान्त हैं इसलिए सुन नहीं पाते उस आवाज को जो चारों तरफ मौजूद है और हम इतने व्यस्त और उलझे हुए हैं कि देख नहीं पाते उस सत्य को जो चारों तरफ खड़ा हुआ है। काश, हम व्यस्त हो जायँ, हमारा चित्त शान्त हो जाय तो जो जानने-जैसा है वह जान लिया जायगा और वह जो पाने जैसा है वह पा लिया जायगा। तीन सूत्र हैं सरलता, सजगता और शून्यता। बहुत बार सुना होगा आपने कि जीवन सरल होना चाहिए। बहुत बार सुना होगा कि जितनी सरलता हो, उतना जीवन ऊँचा हो जाता है। लेकिन शायद ही आपको पता हो कि सरलता कैसे पैदा होती है? यदि आप सोचते हों, सादे वस्त्र पहन लेने से सरलता पैदा होती है, तो धोखे में होंगे। सादे वस्त्र पहनने से सरलता पैदा नहीं होती। बहुत जटिल लोग भी सादे वस्त्र पहने देखे जाते हैं। अक्सर जो भीतर बहुत जटिल होते हैं वह बाहर सरलता का वेश बना लेते हैं, इसलिए नहीं कि दुनियाँ को धोखा दे सकें, इसलिए कि अपने को भी धोखा दे सकें। क्योंकि जो जितना जटिल होता है वह उतना सरल दिखाना चाहता है, दूसरों की आँखों में भी और अपनी आँखों में भी। इसी भाँति वह अपनी जटिलता को छिपाने और जटिलता से बचने का उपाय करता है। इसलिए दुनियाँ में जो जटिल लोग बहुत सरल होते देखे जाते हैं, वह सरलता का अभ्यास कर लेते हैं और बाहर से सरलता ओढ़ लेते हैं। ओढ़ी हुई सरलता का कोई मूल्य नहीं है। सीधे-सादे भोजन से भी कोई सरल नहीं हो जाता है। कोई अत्यन्त विनम्रता प्रदर्शित करे उससे भी सरल नहीं हो जाता है। क्योंकि विनम्रता के पीछे अक्सर अहंकार खड़ा रहता है और विनम्र आदमी हाथ जोड़कर सिर झुकाता है तो सिर तो झुकता है, लेकिन अहंकार नहीं झुकता है। और विनम्र आदमी को भी यह भाव बना रहता है कि मुझसे ज्यादा और कोई भी विनम्र नहीं है और उसको भी आकांक्षा होती है कि मेरी विनम्रता और मेरी सरलता स्वीकृत की जाय और सम्मानित हो। सरलता को इस भाँति ऊपर से तो साधना आसान है, लेकिन उसका कोई मूल्य नहीं है।

मैं एक गाँव में गया था। एक साधु वहाँ रहता था। उनसे भी मिलने वहाँ गया। जब मैं उनके झोंपड़े पर पहुँचा तो खिड़की में से देखा कि वह नंगे

अपने कमरे में टहल रहे हैं। मैंने दरवाजा खटखटाया। उन्होंने जल्दी से चादर को लपेटा और दरवाजा खोला। मैंने उनसे पूछा, आप यहाँ क्या करते थे? तो वह बोले, आपसे क्या छिपाऊँ, मैं मुनि की दीक्षा लेना चाहता हूँ तो नग्न रहने का अभ्यास कर रहा हूँ। मैंने कहा : बेहतर हो, किसी सर्कस में भर्ती हो जाएँ, क्योंकि नग्न रहने का अगर अभ्यास करके कोई आदमी नग्न हो गया तो वह नग्न होना बिलकुल झूठा है। अभ्यास से जो नग्नता आयगी उसका कोई मूल्य है? हाँ, सर्कस में उसका मूल्य हो सकता है, जीवन में क्या मूल्य हो सकता है! एक आदमी अभ्यास करके नग्न भी खड़ा हो जाय तो अत्यन्त सरल नहीं हो जाता, क्योंकि नग्नता भी उसकी साधी हुई है। वह भी जटिल है, वह भी कठिन है, वह भी चेष्टा से आरोपित है। एक महावीर की नग्नता रही होगी, जो आनन्द से फलित हुई थी। लोग सोचते हैं, महावीर वस्त्र छोड़कर नग्न हो गए थे। वे गलती में हैं। महावीर आनन्द को उपलब्ध करके नग्न हो गए थे। एक चित्त की दशा है कि चित्त इतना आनन्द से भर जाय, इतना आनन्द से भर जाय कि वस्त्र भी भार मालूम होने लगें। और एक अवस्था है कि चित्त इतना निर्दोष हो जाय कि शरीर पर छिपाने के लिए कुछ भी न रह जाय—इसलिए आदमी निर्वस्त्र हो जाय, यह दूसरी बात है। जो आनन्द और निर्दोषता से पैदा होती है, वह नग्नता बिलकुल दूसरी बात है और यह जो अभिनय करके, अभ्यास करके पैदा कर ली जाती है वह बिलकुल दूसरी बात है। एक आदमी सरल होगा, दूसरा आदमी बिलकुल जटिल होगा। तो सरलता के सम्बन्ध में कुछ बातें स्मरणीय हैं—पहली बात यह कि सरलता थोपी हुई नहीं हो सकती है, उसे ऊपर से थोपा नहीं जा सकता। उसे भीतर से विकसित करना होता है, उसे भीतर से फैलाना होता है। अगर चारों तरफ देखें— पशु सरल हैं, पौधे सरल हैं, लेकिन मनुष्य अकेला जटिल प्राणी है।

क्राइस्ट ने एक गाँव से निकलते वक्त अपने मित्रों को कहा, लिली के फूलों की तरफ देखो। वह किस शान्ति से और शान से खड़े हैं; बादशाह सोलोमन भी अपनी पूरी गरिमा और गौरव में इतना सुन्दर नहीं था। लेकिन फूल कितने सरल हैं, फल सरल हैं, पौधे सरल हैं, पशु-पक्षी सरल हैं। आदमी भर जटिल है। आदमी क्यों जटिल है? इस पूरी पृथ्वी पर आदमी क्यों जटिल है, यह पूछने और विचारने-जैसी बात है। आदमी इसलिए जटिल है कि वह

अपने सामने होने के आदर्श, आइडियल खड़ा कर लेता है और उनके होने के पीछे लग जाता है। उससे जटिलता पैदा होती है। जैसे आपने महावीर को देखा है, बुद्ध को देखा है, कृष्ण को देखा है, क्राइस्ट को देखा है, उनके जीवन को देखा है, उनके सत्य को देखा है, उनकी शान्ति को देखा है। आप सबके मन में लोभ पैदा होता है—वैसी शान्ति हो, वैसा सत्य हो, वैसा आलोक हो, वैसा जीवन हो। आप भी उन जैसे होने में लग जाते हैं। आप भी चाहते हैं, मैं भी उन जैसा हो जाऊँ। एक आदर्श खड़ा कर लेते हैं और फिर उस आदर्श की तरफ अपने को ढालने लगते हैं। जो आदमी किसी आदर्श को लेकर अपने को ढालना शुरू कर देता है वह बहुत जटिल हो जाता है। वह इसलिए जटिल हो जायगा कि इस संसार में दो कंकड़ भी एक–जैसे नहीं होते हैं। दो पत्ते भी एक–जैसे नहीं होते हैं। दो मनुष्य भी एक–जैसे नहीं होते हैं। जब भी कोई आदमी किसी दूसरे आदमी को आदर्श बना लेता है और उसके–जैसा होने की चेष्टा में लग जाता है तभी जटिलता शुरू हो जाती है, तभी कठिनाइयाँ शुरू हो जाती हैं। पूरा इतिहास इस बात का गवाह है कि दूसरा महावीर पैदा नहीं हो सकता, दूसरा बुद्ध पैदा नहीं हो सकता, दूसरा कृष्ण पैदा नहीं हो सकता, दूसरा क्राइस्ट पैदा नहीं होता। लेकिन फिर भी, नहीं मालूम कैसा पागलपन है कि हजारों लोग सोचते हैं कि हम भी उन-जैसे हो जायँ! और जब आप उन-जैसे होने में लग जाते हैं तो आप अपनी असलियत को दबाते हैं और दूसरे की सुनी हुई असलियत को ओढ़ने लगते हैं। जब भीतर दो आदमी पैदा हो जाते हैं तो जो आप हैं वस्तुतः वह और जो आप होना चाहते हैं कल्पना में, इन दोनों के भीतर कठिनाई, इन दोनों के भीतर तनाव, इन दोनों के भीतर अन्तर्द्वन्द्व शुरू हो जाता है। तब आप चौबीस घंटे लड़ाई में लग जाते हैं और लड़ाई मनुष्य को जटिल कर देती है। जो नहीं लड़ता वह सरल हो जाता है। जो लड़ता है वह जटिल हो जाता है। चौबीस घंटे आप लड़ रहे हैं। हर आदमी के दिमाग में शिक्षा ने, सम्प्रदायों ने और धर्मों ने, तथा–कथित उपदेशों ने यह भाव पैदा किया है कि आदर्श बनाओ। यह सबसे बड़ी झूठी बात है और सबसे खतरनाक है कि कोई आदमी किसी दूसरे आदमी को आदर्श बना ले। इसलिए भी झूठी है कि हर आदमी केवल वही हो सकता है, जो वह है। कोई दूसरा आदमी नकल नहीं किया जा सकता और न दूसरे आदमी को ओढ़ा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर जो

उसकी निजी क्षमता है, वही विकसित हो, यह तो समझ में आता है। लेकिन एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति-जैसा होने की चेष्टा में लग जाय, यह बिलकुल समझ में आने जैसी बात नहीं है।

महावीर को हुए पच्चीस सौ वर्ष हो गए। इन पच्चीस सौ वर्षों में हजारों लोगों ने महावीर-जैसा नग्न होने का प्रयास किया है। लेकिन उनमें से एक भी महावीर नहीं बन पाया। बुद्ध को हुए पच्चीस सौ वर्ष हो गए। इस बीच लाखों लोगों ने बुद्ध-जैसा बनने की चेष्टा की, लेकिन एक भी आदमी बुद्ध नहीं बन पाया। क्या आँखें खोलने को यह बात काफी नहीं है कि कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य-जैसा नहीं सकता है! और यह सौभाग्य की बात है कि कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य-जैसा नहीं हो सकता है, नहीं तो दुनियाँ अत्यन्त घबराने वाली चीज हो जाय। हर आदमी विविध है, हर आदमी अद्वितीय है, हर आदमी को अपनी गौरव-गरिमा है, हर आदमी के भीतर परमात्मा का अपना वैभव है। अपनी-अपनी निज की वृत्ति के भीतर बैठी हुई आत्मा है, उसकी अपनी क्षमता है, अद्वितीय क्षमता है। कोई मनुष्य न किसी दूसरे से ऊपर है, न नीचे है। न कोई साधारण है, न कोई असाधारण है। सबके भीतर एक ही परमात्मा अनेक रूपों में प्रकट हो रहा है। इसलिए बजाय इसके कि कोई आदमी किसी दूसरे को आदर्श बनाय, यही उचित है कि उसके भीतर जो बैठा है उसे जानने में लगा रहे—बजाय इसके कि उसके बाहर जो दिखाई पड़ रहे हैं उनका अनुकरण करे। अनुकरण जटिलता पैदा करता है। किसी दूसरे का अनुकरण हमेशा जटिलता पैदा करता है। वह ऐसे ही है कि एक ढांचा हम बना लेते हैं और फिर उस ढाँचे के अनुसार अपने को ढालना शुरू कर देते हैं।

आदमी कोई जड़ वस्तु नहीं है। आदमी कोई पदार्थ नहीं है कि मशीनों में ले जायँ और ढाल दें। कल मैं एक कारखाना देखने गया और वहाँ हर चीज ढाली जा रही थी, हर चीज बनाई जा रही थी। कारखाने में एक-जैसी चीजें बनायी जा सकती हैं। क्यों? क्योंकि जो हम बना रहे हैं वह पदार्थ है। लेकिन मनुष्य एक-जैसा नहीं बनाया जा सकता। और जब भी मनुष्य को एक-जैसा बनाने की चेष्टा की जाती है तभी दुनियाँ में खतरा और सबसे बड़ी बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं। हम इसी कोशिश में लगे हुए हैं कि हम किसी की भाँति ढल जायें एक ढाँचे में, एक पैटर्न में, एक साँचे में,। हम ढलकर निकल

आयें। इससे बड़े दुर्भाग्य की बात और कोई नहीं होगी कि आप साँचे में ढलकर निकलें और कुछ बन जायँ। क्योंकि तब आप मिट्टी होंगे, मनुष्य नहीं होंगे, और तब आप पदार्थ होंगे, परमात्मा नहीं होंगे। चेतना स्वतंत्र है। उसकी अभिव्यक्तियाँ हमेशा नवीन से नवीन रास्ते खोज लेती हैं और चेतना इतनी स्वतंत्र है कि हमेशा अपना मार्ग बना लेती है। उसकी खूबी किसी साँचे में ढलने में नहीं, बल्कि अत्यन्त सहज, स्फूर्त, स्वाभाविकता को उपलब्ध हो जाने में है। स्वतंत्रता को उपलब्ध करना है, किसी पराए रूप के पीछे जाकर अपने को नहीं ढाल लेना है। यह वैसा ही पागलपन है जैसे कोई कपड़े तो पहले बना ले और फिर आदमी को कहे कि अब इन कपड़ों को पहनने के लिए तुमको काट-छाँट करेंगे। क्योंकि कपड़े तो तुम्हें पहनने हैं और इसलिए हम तुमको काटेंगे, छाटेंगे और तुम्हें इनके योग्य बनायेंगे। ढाँचे हम पहले बना लेते हैं और फिर आदमी को काटते-छाँटते हैं। हर आदमी यह कर रहा है। हम सब ढाँचे तोड़ दें और अपने भीतर बैठे हुए परमात्मा का अपमान न करें। किसी के पीछे किसी को जाने की कोई जरूरत नहीं। अपने भीतर जाने की जरूरत है। किसी के पीछे जाने से क्या प्रयोजन ? और कौन किसके पीछे जा सकता है ? कितनी आश्चर्य की बात है कि धार्मिक लोग यह कहते हैं, साधु और संन्यासी यह कहते सुने जाते हैं कि इस संसार में सब अकेले हैं, कोई किसी का नहीं है। वह यह कहते सुने जाते हैं कि माँ-बाप नहीं हैं, भाई-बहन नहीं हैं, पति-पत्नी नहीं हैं। कोई किसी का नहीं हैं, सब अकेले हैं। लेकिन वही लोग यह भी समझाते हैं कि राम के पीछे चलो, बुद्ध के पीछे चलो, कृष्ण के पीछे चलो, क्राइस्ट के पीछे चलो, मुहम्मद के पीछे चलो

जब सभी लोग अकेले हैं तो कोई किसी के पीछे कैसे चल सकता है ? हर आदमी जब अकेला है तो अकेला चलेगा। किसी के पीछे कैसे चलेगा ? असल में कोई किसी के साथ हो ही नहीं सकता और यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मैं चाहता हूँ कि आपके मस्तिष्क से सारे ढाँचे टूट जायँ और आप अपनी निज की सरलता को पकड़ने की कोशिश करें, बजाय इसके कि किसी की छाया के पीछे भागें। और छायायें भी जिन्दा नहीं हैं। वे कोई पच्चीस सौ वर्ष पहले विलीन हो गई हैं, कोई दो हजार वर्ष पहले, कोई तीन हजार वर्ष पहले। हम करीब-करीब मुर्दा छायाओं के पीछे भाग रहे हैं और उनके-जैसा बनने की कोशिश

उसकी निजी क्षमता है, वही विकसित हो, यह तो समझ में आता है। लेकिन एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति–जैसा होने की चेष्टा में लग जाय, यह बिलकुल समझ में आने जैसी बात नहीं है।

महावीर को हुए पच्चीस सौ वर्ष हो गए। इन पच्चीस सौ वर्षों में हजारों लोगों ने महावीर–जैसा नग्न होने का प्रयास किया है। लेकिन उनमें से एक भी महावीर नहीं बन पाया। बुद्ध को हुए पच्चीस सौ वर्ष हो गए। इस बीच लाखों लोगों ने बुद्ध–जैसा बनने की चेष्टा की, लेकिन एक भी आदमी बुद्ध नहीं बन पाया। क्या आँखें खोलने को यह बात काफी नहीं है कि कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य–जैसा नहीं सकता है! और यह सौभाग्य की बात है कि कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य–जैसा नहीं हो सकता है, नहीं तो दुनियाँ अत्यन्त घबराने वाली चीज हो जाय। हर आदमी विविध है, हर आदमी अद्वितीय है, हर आदमी की अपनी गौरव-गरिमा है, हर आदमी के भीतर परमात्मा का अपना वैभव है। अपनी-अपनी निज की वृत्ति के भीतर बैठी हुई आत्मा है, उसकी अपनी क्षमता है, अद्वितीय क्षमता है। कोई मनुष्य न किसी दूसरे से ऊपर है, न नीचे है। न कोई साधारण है, न कोई असाधारण है। सबके भीतर एक ही परमात्मा अनेक रूपों में प्रकट हो रहा है। इसलिए बजाय इसके कि कोई आदमी किसी दूसरे को आदर्श बनाय, यही उचित है कि उसके भीतर जो बैठा है उसे जानने में लगा रहे—बजाय इसके कि उसके बाहर जो दिखाई पड़ रहे हैं उनका अनुकरण करे। अनुकरण जटिलता पैदा करता है। किसी दूसरे का अनुकरण हमेशा जटिलता पैदा करता है। वह ऐसे ही है कि एक ढाँचा हम बना लेते हैं और फिर उस ढाँचे के अनुसार अपने को ढालना शुरू कर देते हैं।

आदमी कोई जड़ वस्तु नहीं है। आदमी कोई पदार्थ नहीं है कि मशीनों में ले जायँ और ढाल दें। कल मैं एक कारखाना देखने गया और वहाँ हर चीज ढाली जा रही थी, हर चीज बनाई जा रही थी। कारखाने में एक–जैसी चीजें बनायी जा सकती हैं। क्यों? क्योंकि जो हम बना रहे हैं वह पदार्थ है। लेकिन मनुष्य एक–जैसा नहीं बनाया जा सकता। और जब भी मनुष्य को एक–जैसा बनाने की चेष्टा की जाती है तभी दुनियाँ में खतरा और सबसे बड़ी बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं। हम इसी कोशिश में लगे हुए हैं कि हम किसी की भाँति ढल जायँ एक ढाँचे में, एक पैटर्न में, एक साँचे में,। हम ढलकर निकल

आयें। इससे बड़े दुर्भाग्य की बात और कोई नहीं होगी कि आप साँचे में ढलकर निकलें और कुछ बन जायें। क्योंकि तब आप मिट्टी होंगे, मनुष्य नहीं होंगे, और तब आप पदार्थ होंगे, परमात्मा नहीं होंगे। चेतना स्वतंत्र है। उसकी अभिव्यक्तियाँ हमेशा नवीन से नवीन रास्ते खोज लेती हैं और चेतना इतनी स्वतंत्र है कि हमेशा अपना मार्ग बना लेती है। उसकी खूबी किसी साँचे में ढलने में नहीं, बल्कि अत्यन्त सहज, स्फूर्त, स्वाभाविकता को उपलब्ध हो जाने में है। स्वतंत्रता को उपलब्ध करना है, किसी पराए रूप के पीछे जाकर अपने को नहीं ढाल लेना है। यह वैसा ही पागलपन है जैसे कोई कपड़े तो पहले बना ले और फिर आदमी को कहे कि अब इन कपड़ों को पहनने के लिए तुमको काट-छाँट करेंगे। क्योंकि कपड़े तो तुम्हें पहनने हैं और इसलिए हम तुमको काटेंगे, छाटेंगे और तुम्हें इनके योग्य बनायेंगे। ढांचे हम पहले बना लेते हैं और फिर आदमी को काटते-छाँटते हैं। हर आदमी यह कर रहा है। हम सब ढाँचे तोड़ दें और अपने भीतर बैठे हुए परमात्मा का अपमान न करें। किसी के पीछे किसी को जाने की कोई जरूरत नहीं। अपने भीतर जाने की जरूरत है। किसी के पीछे जाने से क्या प्रयोजन ? और कौन किसके पीछे जा सकता है ? कितनी आश्चर्य की बात है कि धार्मिक लोग यह कहते हैं, साधु और संन्यासी यह कहते सुने जाते हैं कि इस संसार में सब अकेले हैं, कोई किसी का नहीं है। वह यह कहते सुने जाते हैं कि माँ-बाप नहीं हैं, भाई-बहन नहीं हैं, पति-पत्नी नहीं हैं। कोई किसी का नहीं हैं, सब अकेले हैं। लेकिन वही लोग यह भी समझाते हैं कि राम के पीछे चलो, बुद्ध के पीछे चलो, कृष्ण के पीछे चलो, क्राइस्ट के पीछे चलो, मुहम्मद के पीछे चलो

जब सभी लोग अकेले हैं तो कोई किसी के पीछे कैसे चल सकता है ? हर आदमी जब अकेला है तो अकेला चलेगा। किसी के पीछे कैसे चलेगा ? असल में कोई किसी के साथ हो ही नहीं सकता और यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मैं चाहता हूँ कि आपके मस्तिष्क से सारे ढाँचे टूट जायँ और आप अपनी निज की सरलता को पकड़ने की कोशिश करें, बजाय इसके कि किसी की छाया के पीछे भागें। और छायायें भी जिन्दा नहीं हैं। वे कोई पच्चीस सौ वर्ष पहले विलीन हो गई हैं, कोई दो हजार वर्ष पहले, कोई तीन हजार वर्ष पहले। हम करीब-करीब मुर्दा छायाओं के पीछे भाग रहे हैं और उनके-जैसा बनने की कोशिश

कर रहे हैं। यह बिलकुल पागलपन है। इससे बहुत जटिलता और कम्प्लेक्सिटी पैदा हो जाती है और मनुष्य बड़ी तकलीफ में, बेचैनी में और अन्तर्द्वन्द्व में पड़ जाता है। फिर बहुत पीड़ा और बहुत परेशानी होती है। क्योंकि जो हम बनना चाहते हैं वह हम बन नहीं पाते और जो हम हैं उसकी हम फिक्र छोड़ देते हैं। फिर इस कशमकश में, इस संघर्ष में असफलता और विषाद हाथ लगते हैं और अन्त में मालूम होता है कि हम हार गए। जीवन व्यर्थ हो गया। हम तो कुछ भी नहीं बन पाए। निश्चित है अगर गुलाब के फूल चमेली के फूल बनने में लग जायँ और चमेली के फूल गुलाब के फूल बनने में लग जायँ, तो मुश्किल खड़ी हो जायगी। उनके भीतर अन्तर्द्वन्द्व पैदा हो जायगा। कृपा करें, गुलाब को गुलाब रहने दें, चमेली को चमेली रहने दें। जो आप हैं, उसको ही जानें और वही हो जायँ। और स्मरण रखें कि जो आप हैं, अपनी वास्तविक सत्ता में, उससे अन्यथा आप कभी नहीं हो सकते हैं। अगर कितनी भी चेष्टा करें तो केवल एक ऐक्टिंग, एक अभिनय भर पायेंगे, इससे ज्यादा कुछ नहीं। एक अभिनय मात्र ज्यादा से ज्यादा आप कर पायेंगे। और अभिनय का क्या मूल्य है ? अभिनय का कोई भी मूल्य नहीं है।

सरलता का पहला सूत्र है, कृपा करके किसी का अनुगमन न करें और कोई ढाँचा न बनायें। फिर क्या करें ? सारे ढाँचे अलग कर दें। जो महावीर के भीतर था, जो बुद्ध के भीतर था, जो राम-कृष्ण के भीतर था, वह आपके भीतर है। सब ढाँचे अलग कर दें। उसे पहचानें, उसे समझें, उससे सम्बन्धित हों, उसे जगायें, उसे खड़ा करें, वह जो भीतर मूर्च्छित सोया हुआ मनुष्य पड़ा है उसे होश में भरें और तब आप पायेंगे कि सारी जटिलता क्षीण होने लगती है और अत्यन्त सरलता का, अत्यन्त सहजता का जन्म शुरू हो जाता है।

यह स्मरण रखें कि जीवन में जितना कम द्वन्द्व, जितना कम संघर्ष जितने कम व्यर्थ के तनाव, व्यर्थ के खंड कम हों, उतनी सरलता उत्पन्न होगी। मनुष्य जितना अखंड हो उतनी सरलता उपलब्ध होती है। हम खंड-खंड हैं और हम अपनी अखंडता को अपने हाथों से तोड़े हुए हैं। हम अपनी अखंडता को कैसे तोड़ देते हैं ? हम अपनी अखंडता को तादात्म्य से, आइडिन्टटी से तोड़ देते हैं।

होता क्या है ? मैं एक घर में पैदा हुआ। उस घर के लोगों ने मुझे एक नाम दे दिया और मैंने समझ लिया कि वह नाम मैं हूँ। मैंने एक आइडिन्टटी

कर ली। मैंने समझ लिया कि यह नाम मैं हूँ। फिर मैं कहीं शिक्षित हुआ। फिर मुझे कोई उपाधि मिल गई। फिर मैंने उन उपाधियों को समझ लिया कि ये उपाधियाँ मैं हूँ। फिर किसी ने मुझे प्रेम किया, तो मैंने समझ लिया कि लोग मुझे प्रेम करते हैं और वह प्रेम की एक तस्वीर मैंने बना ली और समझा कि यह मैं हूँ। फिर किसी ने ग्रहण किया, अपमानित किया, सम्मानित किया तो मैंने वह तस्वीर बना ली। ऐसी बहुत सी तस्वीरें आपके चित्त के अलबम पर आपकी ही लगती चली जाती हैं और हर तस्वीर को आप समझ लेते हैं कि मैं हूँ। इन तस्वीरों में बड़ा विरोध होता है। ये तस्वीरें बहुत प्रकार की हैं। अनेक रूपों की हैं। इन तस्वीरों को, यह समझकर कि मैं हूँ, आप अनेक रूपों में विभक्त हो जाते हैं।

एक और बात मुझे स्मरण आती है। एक गाँव से क्राइस्ट निकले और एक आदमी ने आकर उनका पैर छुआ। उस आदमी ने पूछा—क्या मैं भी ईश्वर को पा सकता हूँ? क्राइस्ट ने कहा कि इसके पहले कि तुम ईश्वर को पा सको, मैं तुमसे पूछूँ कि तुम्हारा नाम क्या है? उस आदमी ने आँखें नीचे झुका लीं और कहा मेरा नाम? क्या बताऊँ अपना नाम? मेरे तो हजार नाम हैं। कौन-सा नाम बताऊँ? मैं तो हजार-हजार आदमी एक ही साथ हूँ। जब घृणा करता हू तो दूसरा आदमी हो जाता हूँ। जब प्रेम करता हूँ तो बिलकुल दूसरा आदमी हो जाता हूँ। जब रोष और क्रोध से भरता हूँ तो बिलकुल दूसरा आदमी हो जाता हूँ। और जब क्षमा से भरता हूँ तो बिलकुल दूसरा आदमी हो जाता हूँ। अपने बच्चों में मैं दूसरा आदमी हूँ। अपने शत्रुओं में मैं दूसरा आदमी हूँ। मित्रों में दूसरा हूँ। अपरिचितों में दूसरा हूँ। मेरे तो हजार नाम हैं। मैं कौना-सा नाम बताऊँ?

यह हर आदमी की तस्वीर है। आपके नाम भी ऐसे ही हैं। आपके नाम भी हजार हैं। आप हजार टुकड़ों में बँटे हुए हैं। आप एक आदमी नहीं हैं। और जो एक आदमी नहीं है वह सरल कैसे होगा? उसके भीतर तो भीड़ है। हर आदमी एक क्राउड है। यह भीड़ बाहर नहीं है आपके भीतर है। तो आप में कई आदमी बैठे हुए हैं एक ही साथ। एक ही साथ कई आदमी आपके भीतर बैठे हुए हैं। खयाल करें, अपने चेहरे को पहचानें। सुबह से उठते हैं तो साँझ तक क्या आपका चेहरा एक ही रहता है? जब आप घर से बाहर निकलते हैं और रास्ते पर एक भिखमंगा भीख माँगता है तब और जब आप बाजार में

पहुँचते हैं और कोई आदमी आपको नमस्कार करता है तब, और जब आप दुकान पर बैठते हैं तब, जब आप अपनी पत्नी के पास होते हैं तब, जब आप अपने बच्चों के पास होते हैं तब, क्या आपका चेहरा एक ही है ? अगर आपके चेहरे अनेक हैं तो आप सरल नहीं हो सकते, आप जटिलता खड़ी कर लेंगे, बहुत जटिल हो जायँगे । कैसे सरल हो सकते हैं, अगर एक ही आदमी के अन्दर दस-पन्द्रह रहते हों ?

हत्यारों ने जिन्होंने बड़ी हत्यायें की हैं, अनेकों ने यह कहा है कि हमें पता नहीं कि हमने हत्या भी की है। पहले तो लोग समझते थे कि ये लोग झूठ बोल रहे हैं, लेकिन अब मनोविज्ञान इस नतीजे पर पहुँचा है कि वे ठीक कह रहे हैं। उनके व्यक्तित्व इतने खंडित हैं कि जिस आदमी ने हत्या की है वह वह आदमी नहीं है, जो अदालत में बयान दे रहा है। वह दूसरा आदमी है। यह बिलकुल दूसरा चेहरा है, उसे याद भी नहीं कि मैंने हत्या की है। इतने खंड हो गए हैं भीतर कि दूसरे खंड ने यह काम किया है, इस खंड को पता भी नहीं। और आपके भीतर भी ऐसे बहुत से खंड हैं। नहीं लगता, क्रोध करने के बाद क्या आप नहीं कहते कि मैंने अपने बावजूद क्रोध किया। अजीब बात है, आपके बावजूद ! मतलब—आपके भीतर कोई दूसरा आदमी भी है। आप नहीं चाहते थे कि क्रोध हो और उसने क्रोध करवा दिया। कई बार आप अनुभव करते हैं कि मैं नहीं करना चाहता था, फिर मैंने किया। फिर कौन करवा देता है ? जरूर आपके भीतर कोई दूसरे लोग हैं। आप नहीं चाहते हैं फिर भी आपसे हो जाता है। हजार बार निर्णय करते हैं कि अब ऐसा नहीं करेंगे, फिर भी कर लेते हैं और पछताते हैं।

असल में आपके भीतर बहुत-से लोग हैं। जिसने निर्णय किया था कि नहीं करेंगे और जिसने किया, उन दोनों को पता नहीं कि बीच में कोई और बात-चीत है। उन दोनों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। साँझ को आप तय करके सोते हैं कि सुबह पाँच बजे उठेंगे और सुबह पाँच बजे आपके भीतर कोई कहता है कि रहने भी दो। आप सो जाते हैं। सुबह आप पछताते हैं कि मैंने तय किया था कि उठना है फिर मैं उठा क्यों नहीं ? अगर आपने ही तय किया था कि उठना है और आप एक व्यक्ति होते, तो सुबह पाँच बजे कौन कह सकता था कि मत उठो ? लेकिन आपके भीतर और व्यक्ति बैठे हुए हैं और वे कहते हैं—रहने दो, चलने दो।

महावीर ने कहा है कि मनुष्य वहुचित्तवान है। एक चित्त नहीं, आपके भीतर वहुचित्त हैं। और जिसके भीतर वहुचित्त हैं वह कभी सरल होगा ? सरल हो ही नहीं सकता। उसके भीतर कई आवाजें हैं। एक आवाज कुछ कहती है, दूसरी आवाज कुछ कहती है। कभी सोचें आप, अपने भीतर आवाजों को सुनें। आपको वहुत आवाजें सुनायी पड़ेंगी। आपको लगेगा, आप वहुत आदमियों से घिरे हुए हैं। सरलता के लिए जरूरी है, एक चित्तता आ जाय, वहुचित्तता न हो। एक चित्तता कैसे आयगी ? आप जिन तादात्म्य को वना लेते हैं उनको तोड़ने से एक चित्तता आयगी।

एक भारतीय साधु सारी दुनियाँ की यात्रा करके वापस लौटा था। वह भारत आया और हिमालय की एक छोटी-सी रियासत में मेहमान हुआ। उस रियासत के राजा ने साधु के पास जाकर कहा, "मैं ईश्वर से मिलना चाहता हूँ। मैंने वहुत-से लोगों के प्रवचन सुने हैं, वहुत-सी वातें सुनी हैं, सव मुझे वकवास मालूम होती हैं। मुझे नहीं मालूम होता है कि ईश्वर है और जव भी साधु-संन्यासी मेरे गाँव में आते हैं, तव उनके पास जाता हूँ और उनसे पूछता हूँ। अव मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि ईश्वर के सम्वन्ध में मुझे कोई व्याख्यान नहीं सुनने हैं, मैंने काफी सुन लिये हैं। तो आपसे यह पूछने आया हूँ कि अगर ईश्वर है, तो मुझे मिला सकते हैं ?" वह संन्यासी वैठा चुपचाप सुन रहा था। वह वोला—"अभी मिलना है या थोड़ी देर ठहर सकते हो ?" राजा एकदम अवाक् हो गया। उसको आशा नहीं थी कि कोई आदमी कहेगा कि अभी मिलना चाहते हैं कि थोड़ी देर ठहर सकते हैं। राजा ने समझा कि समझने में भूल हो गई होगी। संन्यासी कुछ गलत समझ गया है। राजा ने दोवारा कहा—"शायद आप ने ठीक से नहीं समझा। मैं ईश्वर की वात कर रहा हूँ, परमेश्वर की।" संन्यासी ने कहा—"मैं तो उसके सिवा किसी की वात ही नहीं करता। अभी मिलना है कि थोड़ी देर रुक सकते हैं ?" उस राजा ने कभी नहीं सोचा था कि वह ऐसा पूछेगा, तो क्या उत्तर दूंगा ? उसने कहा—"आप कहते हैं तो मैं अभी ही मिलना चाहता हूँ।" संन्यासी ने कहा, "तो एक काम करें; यह कागज है, इस पर थोड़ा-सा लिख दें कि आप कौन हैं, ताकि परमात्मा तक खवर भेज दूं। क्योंकि यह तो आप मानेंगे ही कि जो आपसे भी कोई मिलने आता है, तो आप पूछ लेते हैं कौन है, क्या है ?" राजा ने कहा, "यह तो ठीक है। यह तो नियमवद्ध है। उसने अपने

राज्य और भवन का पता उस संन्यासी को दिया। वह संन्यासी हँसने लगा और उसने कहा—"दो-तीन बातें पूछनी जरूरी हो गईं। इस कागज में जो भी आपने लिखा है, सब असत्य है।" तब राजा बोला—"असत्य! आप क्या पागलपन की बात कर रहे हैं! मैं राजा हूँ और जो नाम मैंने लिखा है वही मेरा नाम है।" संन्यासी ने कहा, "मुझे तो बिलकुल ही असत्य मालूम होता है। आप न राजा हैं और न आपने जो नाम लिखा है वह आपका है।" वह राजा बोला—"आप अजीब आदमी मालूम होते हैं। पहले तो आपने कहा कि ईश्वर से अभी मिला दूँगा। वह भी मुझे पागलपन की बात मालूम पड़ी। और दूसरे यह कि अब मैं कह रहा हूँ कि मैं इस क्षेत्र का राजा हूँ, मेरा यह नाम है तो उससे इनकार करते हैं।" संन्यासी ने कहा—"थोड़ा सोचें। अगर आपका नाम दूसरा हो तो क्या फर्क पड़ जायगा? आपके माँ-बाप ने 'आ' नाम दे दिया और यदि मैं 'बा' नाम दे देता, तो क्या फर्क पड़ जाता? आप जो थे, वही रहते कि बदल जाते? आपको अगर हम दूसरा नाम दे दें तो आप बदल जायँगे?" उस राजा ने कहा—"नाम बदलने से मैं कैसे बदलूँगा?" संन्यासी ने कहा—"जिस नाम के बदलने से आप नहीं बदलते, निश्चित ही नाम कुछ और है, आप कुछ और हैं। आज आप उस नाम से अलग हैं और फिर आप राजा है, कल अगर इसी गाँव में भिखारी हो जायँ तो बदल जायँगे? फिर आप आप नहीं रहेंगे?" राजा बोला—"मैं तो फिर भी रहूँगा। राज्य नहीं रहेगा, धन नहीं रहेगा, राजा नहीं रहेंगे, भिखारी हो जाऊँगा, मेरे पास कुछ नहीं रहेगा, लेकिन मैं तो जो हूँ वही रहूँगा।" संन्यासी बोला—"फिर राजा होने का कोई मतलब नहीं रहा। फिर आपकी सत्ता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। वह तो ऊपरी खोल है, बदल जाय तो भी नहीं बदलेंगे। यह कपड़े मैं पहने हूँ तो मैं यह थोड़े कहूँगा कि यह कपड़ा मैं हूँ। क्यों नहीं कहूँगा? क्योंकि कपड़े दूसरे पहन लूँ तब भी मैं ही बना रहूँगा।" संन्यासी ने कहा—"फिर राजा होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। यह आपका परिचय नहीं हुआ, क्योंकि जो परिचय आपने दिया है उसके बदल जाने पर भी आप नहीं बदलते हैं। अतः आपका परिचय कुछ और होना चाहिए, जिसके बदलने पर आप न बदल जायँ, वही आप हो सकते हैं। और जब तक आप वह परिचय न देंगे तो मैं कैसे परमात्मा को कहूँ कि कौन मिलने आया है, किसको मिलाऊँ? परमात्मा तो मौजूद है, लेकिन मिलाऊँ किसको? मिलनेवाला मौजूद नहीं है। क्योंकि

मिलनेवाला बँटा है बहुत-से टुकड़ों में, खंडों में। वह इकट्ठा नहीं है, वह राजी नहीं है, वह खड़ा नहीं है। कौन है जो मिलना चाहता है? आप ईश्वर को खोजते हैं लेकिन कौन हैं आप? अपने खंडों को इकट्ठा करना होगा। कैसे वे खंड इकट्ठे होंगे, क्योंकि अगर सच में खंड हो गए हैं तो कैसे इकट्ठे होंगे? कितने ही उनको पास लायेंगे तब भी वे खंड बने रहेंगे। अगर सच में खंड हो जाय तो फिर अखंड नहीं हो सकते। क्योंकि खंडों को कितने ही करीब लाओ उनके बीच फिर भी फासला बना रहेगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि दो अंगों को कितने ही करीब लाओ, फिर भी फासला दोनों के बीच बना ही रहेगा। यह ठीक ही कहते हैं, क्योंकि कितने ही करीब लाओ, बीच में फासला होगा ही। यदि नहीं तो दोनों एक ही हो जायेंगे अगर फासला नहीं रहेगा। तो खंडों को कितने ही करीब लाओ अखंड नहीं बन सकते हैं, खंडों का जोड़ ही होगा।"

इसका अर्थ है कि आप अखंड हैं। खंड होना आपका भ्रम है। भ्रम टूट सकता है और आप इसी क्षण अखंडता को पा सकते हैं। आप खंडित हो नहीं गए हैं, खंडित मालूम हो रहे हैं। मैं एक पहाड़ पर गया था और वहाँ एक महल में लोग मुझे ले गए थे। एक बड़ा गुंबज था और उस गुंबज में काँच के छोटे-छोटे लाखों टुकड़े लगे थे। मैं वहाँ खड़ा हुआ। मुझे लाखों अपनी तस्वीरें दिखाई पड़ने लगीं, टुकड़े-टुकड़े। और फिर हमने वहाँ दीया जलाया तो लाख दीए जलने लगे--काँच के टुकड़े-टुकड़े में। अब अगर उस दीए को न देखूं जिसको हाथ में लिये हूँ और उन काँच पर प्रतिबिम्बित हजारों दीयों को देखूंगा तो मैं समझूंगा कि इस भवन में लाखों दीए जल रहे हैं और अगर मैं हाथ के दीए को देखूं तो मैं पाऊँगा कि एक ही दीया जल रहा है।

अगर मैं अपने को भूल जाऊँगा तो मैं देखूंगा कि हजार-हजार लोग इस कमरे में मौजूद हैं और मैं अपने को देखूं तो पाऊँगा कि एक ही मौजूद है। फरक आप समझ रहे हैं? जो व्यक्ति अपने अनुभव के दर्पण में, अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी के दर्पण में, क्षण-क्षण प्रवाही जीवन के दर्पण में, अपनी तस्वीर को देखता है उसे हजार-हजार टुकड़े खुद के मालूम होते हैं, । और अगर वह उनको न देखे, उसको देखे जो पीछे बैठा है, सबके अनुभवों में नहीं अनुभोक्ता में, दृश्यों में नहीं द्रष्टा में, जो चारों तरफ घटित हो रहा है उसमें नहीं जिसके

ऊपर घटित हो रहा है उसमें, तो पायेंगे एक है और वहाँ अखंड है। चित्त अनेक हैं, चेतना एक है। चित्त प्रतिफलित है, चेतना एक है। जिसका प्रतिफलन है उसे पकड़ना होगा। अगर उसे पकड़ने में हम समर्थ हो जायँ तो जीवन एकदम सरल हो जायगा। अखंड जीवन ही सरल जीवन है। समग्र—'इन्टीग्रेटेड'—जीवन ही सरल जीवन है। इसे पहचानने का रास्ता होगा—दूसरा सूत्र, जिसे मैं सजगता कह रहा हूँ। सजगता का अर्थ है—'अवेयरनेस, होश, भान, आत्मभान। जिस व्यक्ति का आत्मभान जितना जागृत होगा वह उतना ही सरल और अखंड हो जायगा है। आत्मभान का क्या अर्थ है? होश का क्या अर्थ है? आत्मभान, या अमूर्च्छा या, अप्रमाद का अर्थ है—जीवन के जितने भी अनुभव हैं उनके साथ एक न हो जायँ उनसे दूर बने रहें, उनके द्रष्टा बने रहें। जैसे मैं इस भवन में बैठा हूँ। प्रकाश जला दिया जाय तो भवन में प्रकाश भर जायगा। प्रकाश मुझे घेर लेगा। दो भूलें मैं कर सकता हूँ। यह भूल कर सकता हूँ कि मैं समझ लूँ कि मैं प्रकाश हूँ, क्योंकि प्रकाश कमरे में भरा हुआ है। फिर प्रकाश बुझा दिया जाय तो अंधकार आ जायगा। फिर मैं यह भूल कर सकता हूँ कि मैं अंधकार हूँ। यह भूल है, क्यों? क्योंकि प्रकाश आया तब भी मैं यहाँ था। प्रकाश चला गया तब भी मैं यहाँ था। अंधकार आया तब भी मैं यहाँ हूँ। अंधकार चला जाय तब भी मैं यहाँ रहूँगा। तो मेरा जो मैं है, वह न तो प्रकाश है, न अंधकार है। सुख आते हैं, चले जाते हैं। दुःख आते हैं, चले जाते हैं। सम्मान मिलता है, चला जाता है। अपमान मिलता है, चला जाता है। जो आता है और चला जाता है, वह मैं नहीं हो सकता।

तो जीवन के प्रत्येक अनुभव में, घृणा में, अशान्ति में, शांति में, सुख में, दुःख में, मान में, सम्मान में—यह स्मरण, यह स्मृति कि जो भी घटित हो रहा है वह मैं नहीं हूँ, मैं केवल उसका देखनेवाला हूँ—मैं देख रहा हूँ कि अपमान किया जा रहा है और मैं देख रहा हूँ कि सम्मान किया जा रहा है, और मैं देख रहा हूँ कि दुःख आया और मैं देख रहा हूँ कि सुख आया और मैं देखता हूँ कि रात हुई और मैं देखता हूँ कि दिन हुआ। सूरज उगा और सूरज डूबा। मैं केवल देखनेवाला हूँ। मैं केवल साक्षी हूँ। जो हो रहा है उससे मेरा इससे ज्यादा कोई सम्बन्ध नहीं कि मैं देख रहा हूँ। अगर क्रमशः यह स्मृति और

यह भान विकसित होने लगे कि मैं केवल देखनेवाला हूँ तो धीरे-धीरे आप पायेंगे कि आपकी अखंडता आ रही है और खंडता जा रही है। खंड होना बन्द हो जायगा। खंड-खंड वे होते हैं, जो किसी दृश्य को देखते ही उस के साथ एक हो जाते हैं। इसलिए द्रष्टा यदि दृश्य के साथ एक हो जाय तो जीवन खंड हो जाता है। द्रष्टा दृश्य से अलग हो जाय तो जीवन अखंड हो जाता है। सारा योग, सारे धर्म, सारे मार्ग, सारी पद्धतियाँ जो मनुष्य को परमात्मा तक पहुँचाती हैं, बुनियादी रूप से इस बात पर खड़ी हैं कि मनुष्य अपनी चेतना को साक्षी समझ ले। मनुष्य केवल दर्शक मात्र रह जाय। लेकिन हम तो अजीब पागल लोग है। हम तो नाटक देखें या फिलम देखें वहाँ भी दृश्य ही रह जाते हैं। वहाँ भी हम भोक्ता हो जाते हैं। अगर नाटक में कोई दुःख का दृश्य आता है तो हमारी आँखों से आँसू बहने लगता है। हम द्रष्टा नहीं रह गए, हम भोक्ता रह गए। हम सम्मिलित हो गए नाटक में। हम नाटक के पात्र हो गए। नाटकगृह में बैठकर ऐसे बहुत कम लोग हैं जो नाटक के पात्र न हो जायँ। कोई रोने लगता है, कोई हँसने लगता है, कोई दुखी और प्रसन्न हो जाता है। वह जो मंच पर हो रहा है या परदे पर हो रहा है, जहाँ कि विद्युत् घरों के सिवा और रोशनी के खेल के सिवा कुछ भी नहीं है, वहाँ भी रोना, दुखी होना और पीड़ित होना आपके भीतर शुरू हो जाता है। आपको आदत पड़ी है कि दृश्य के साथ एक हो जायँ। धर्म कहता है कि जीवन का जो दृश्य है वहाँ भी एक न रह जायँ और हम ऐसे पागल हैं कि नाटक के जो दृश्य होते हैं वहाँ भी एक हो जाते हैं। जीवन का जो बृहत्तर नाटक चल रहा है वह नाटक से ज्यादा नहीं है। क्यों हम उसे कह रहे हैं कि नाटक से ज्यादा नहीं है? इसलिए नही कि उसके मूल्य को कम करना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि उसका जो ठीक-ठीक मूल्य है वही आँकना चाहते हैं।

सुबह में जागता हूँ तो जो देखता हूँ वह सच मालूम होने लगता है। और रात में सोता हूँ तो जो सपना होता है वह सच मालूम होने लगता है। सपने में जाते हैं तो संसार झूठा हो जाता है। सब भूल जाता हूँ, कुछ याद नहीं रहता। और सपने के बाहर आते हैं, तो संसार सच हो जाता है और सपना झूठा हो जाता है। इसलिए जो जानते हैं, वह इस यात्रा में एक सपने से दूसरे सपने में आते हैं और फिर मृत्यु में सब सपना हो जाता है। अभी पीछे उलटकर देखें अपने जीवन को, तो जो जाना था और देखा था, क्या ठीक-ठीक

याद पड़ते हैं कि वह सपने में देख रहा था या सच में देख रहा था? सिवा स्मृति के और क्या निशान रह गए हैं? पीछे लौटकर अगर कोई मृत्यु के कगार पर देखे तो क्या उसे याद पड़ेगा कि जो मैंने जीवन में जाना वह सच था या, सपना था क्योंकि निशान कहाँ हैं? केवल स्मृति में रह गए हैं। सपना भी स्मृति में निशान छोड़ जाता है और संसार भी, और अगर स्मृति पहचान भी जाय तो दोनों मिट जायँगे।

एक आदमी ट्रेन से गिर पड़ा था। ट्रेन से गिरते ही उसकी स्मृति विलीन हो गई। फिर उसने पहचानना बन्द कर दिया था—कौन उसकी पत्नी है, कौन उसका पिता है। मैं उससे मिलने गया तो वह मुझे नहीं पहचान सका। क्या हो गया? स्मृति विलीन हो गई। उसे सपने भी भूल गए, जो उसने पहले देखे थे। और वह जिन्दगी भी भूल गई जो देखी थी; जिसकी रेखाएँ केवल स्मृति पर रह जाती हैं। और स्मृति के समीप पहुँचने से जिसका सब मिट जाय उसे सपने से ज्यादा क्या कहेंगे? जो केवल स्मृति में है उसे सपने से ज्यादा और कहने का प्रयोजन क्या है? और मौत सब स्मृति को पोंछ देती है और सब जो जाना था, जो जिया था वह सपना हो जाता है। यह जो जगत का बड़ा सपना है, इस सपने के प्रति बोध और सजगता चाहिए। यह जानना कि जो मैं देख रहा हूँ, वह दृश्य है और मैं अलग हूँ, मैं पृथक और भिन्न हूँ। सुबह से शाम तक उठते-बैठते, सदा जागते, बोलते, चुप रहते, खाते-पीते, चलते-फिरते हर वक्त धीमे-धीमे इस स्मरण को गहरा करना होगा कि मैं अलग हूँ। जो हो रहा है वह अलग है। धीरे-धीरे वह घड़ी आयगी, जब आप अपने भीतर एक अलग चेतना की ज्योति का अनुभव करेंगे जो सारे अनुभवों से पृथक है, और तब जीवन एकदम सरल हो जायगा। तब आप पायेंगे, आप एकदम सरल हो गए हैं, एकदम 'इनोसेंट'—जैसे छोटे बच्चे। और छोटा बच्चा हुए बिना कोई उपलब्धि नहीं है। बूढ़े जब बच्चे हो जाते हैं तभी वे परमात्मा को पा लेते हैं। इतनी सरलता सजगता से उत्पन्न हो सकती है।

दूसरा सूत्र है सजगता और तीसरा सूत्र है शून्यता। जितना शून्य होंगे उतनी सजगता गहरी होगी। मैंने कहा कि सरलता उत्पन्न होती है सजगता से और सजगता उत्पन्न होती है शून्यता से। शून्यता चरम बिन्दु है। शून्यता

साधना का केन्द्र-बिन्दु है। शून्य हो जायँ। शून्य होने का मतलब है जो हो रहा है चारों तरफ, उसके प्रति मरना सीखें।

एक छोटी-सी कहानी कहूँ तो शायद समझ में आ जाय। जापान में एक संन्यासी हुआ। एक ऐसा दरिद्र भिखारी, जो टोकियो राजधानी में एक नीम के झाड़ के नीचे पड़ा रहता था। वर्ष आए और गए, वहीं पड़ा रहा। लाखों हजारों लोग उसे मानते थे और श्रद्धा देते थे। स्वयं बादशाह भी उसे श्रद्धा और आदर करता था। एक दिन बादशाह आया और उसके चरण छुए और कहा कि कृपा करें, मेरे महल में चलें। यहाँ पड़े रहने से क्या? बरसात भी है, शरीर आपका वृद्ध हो गया है, धूप आती है, तकलीफ होती है, सर्दी आती है। मुझपर कृपा करें और तुरंत मेरे महल में चलें। साधु ने अपनी चटाई लपेटी और खड़ा हो गया। राजा बहुत हैरान हुआ। साधु इतना जल्दी तैयार हो गया! कैसा साधु है, कैसा संन्यासी है? एक दफा भी ऐसा नहीं कहा कि यह संसार सब माया है, महल से क्या लेना-देना है। हमने तो लात मार दी। हम तो झोंपड़े में रहनेवाले फकीर हैं, हम तो मग्न रहते हैं, हमको क्या मतलब? ऐसा कहता तो मालूम पड़ता कि संन्यासी है। और जिन-जिन को संन्यासी मालूम पड़ना हो, उन को ऐसा कहना पड़ता है। वह संन्यासी तो खड़ा हो गया। उसने कहा, महाराज, चलें। वह तो आगे हो गया और बादशाह बहुत चिन्तित हुआ। बड़े उत्साह से लेने गया था, लेकिन चित्त एकदम फीका हो गया कि किस आदमी को ले जा रहा हूँ। यह भी गलती हो गई। यह तो धोखा हो गया। लेकिन जब खुद ही आमन्त्रण दिया था, खुद ही बुलाया था इसलिए इन्कार भी बीच रास्ते में कैसे करे। महल में ले गया, बड़ी अच्छी व्यवस्था उसकी की थी। जो राजा की व्यवस्था थी, वैसी व्यवस्था उसकी थी। लेकिन प्रतिक्षण संदेह बढ़ने लगा। जो जो दिया, उसने स्वीकार कर लिया और जो शाही बिस्तरे दिए उन पर सो गया। नौकर-चाकर दिए, उनकी सेवाएँ उसने अंगीकार कर लीं। राजा तो हैरान हुआ कि यह आदमी कैसा है? यह तो बिलकुल ही गलत आदमी मालूम होता है। क्या यह उसकी प्रतीक्षा में ही बैठा हुआ था? क्या सब ढोंग था, धोखा था? यह सारी फकीरी क्या बरसों से प्रतीक्षा कर रही थी कि राजा कब आमन्त्रण दे और मैं चलूं। रात मुश्किल से बीती। संन्यासी तो मजे से सोया पर राजा नहीं

सो सका। सुबह होते ही राजा ने कहा कि संतजी, बड़ी शंका मन में उठी है। जबतक निवारण न हो, मैं बड़ी दिक्कत में पड़ गया हूँ। एक शंका उठी है, उसे प्रकट करने की आज्ञा दें। संन्यासी हँसने लगा। उसने कहा—तुम्हें शंका अब प्रकट हुई? मुझे वहीं हो गई थी। जैसे ही मैं खड़ा हुआ, मैं समझा तुमने निमंत्रण वापस ले लिया। फिर तो मजबूरी से यहाँ तक ले आए हो। पूछ लो, शंका का निवारण कर लो। राजा ने कहा कि रात मैं यही सोचता रहा कि आप कैसे संन्यासी हैं? संन्यासी ने कहा कि थोड़ा एकान्त होगा तो सरलता होगी बतलाने में। राजा ने कहा भेद तो जानना ही है। मुझमें और आपमें क्या भेद रहा, इस रात? कल तक तो भेद था। आप नीम के नीचे थे, भिखारी थे, भिखमंगे थे। खाने के वर्तन को सिर के नीचे रखकर सो जाते थे। मैं महल में था तो राजा था, आप भिखमंगे थे कल तक—तो बहुत भेद था। आप संन्यासी थे, मैं भोगी था। लेकिन आज रात कोई भेद मुझे दिखायी नहीं पड़ता। संन्यासी खूब हँसने लगा। और कोई भी संन्यासी हँसेगा, क्योंकि अगर भेद इतना ही है कि एक के पास बहुत बिस्तर हैं और एक के पास बहुत बिस्तर नहीं हैं; एक दरख्त के नीचे सोता है और एक महलों में। अगर भेद इतना ही हो, तो संन्यास और संसार में तो भेद किस मूल्य का हुआ? कोई भेद है ही नहीं।

संन्यासी बहुत हँसा। उसने कहा कि गाँव के बाहर चलें। वे दोनों गाँव के बाहर गए। बार-बार थोड़ी-थोड़ी दूर पर राजा पूछने लगा, उत्तर दें। अब तो गाँव के बाहर आ गए। संन्यासी ने कहा, थोड़ा और आगे, थोड़ा और आगे। दोपहर हो गई। सूरज ऊपर आ गया तो राजा ने कहा – क्या कर रहे हैं! आपको उत्तर देना है कि नहीं? यह और आगे से क्या मतलब होगा? संन्यासी ने कहा, और आगे ही उसका उत्तर है। अब मैं आगे ही जाऊँगा, पीछे नहीं लौटूंगा। आप भी मेरे साथ चलते हैं। राजा ने कहा–मैं कैसे चल सकता हूँ? पीछे मेरा महल, मेरा राज्य है। संन्यासी ने कहा–पीछे न मेरा महल है न मेरा राज्य है और इतना ही भेद है। जब रात तुम्हारे भवन में मैं सोया तो मैं बिलकुल उतना ही शून्य था जितना जब मैं नीम के नीचे सोता था। इतना ही भेद है। उसे स्मरण रखें, इसे हृदय के किसी कोने में बैठ जाने दें। इतना ही भेद है कि जब तुम्हारे महल में सोया तो उतना ही शून्य था जितना तब जब मैं रोज नीम के नीचे सोता था। मेरी

शून्यता वही थी, वही भेद था, तुम्हारे भीतर शून्यता नहीं है। जो तुम्हारे पास आता है उसी से तुम भर जाते हो। महल से भरे हुए हो। तुम कहते हो पीछे मेरा महल है, तुम कहते हो पीछे मेरा राज्य है। तुम जब मरोगे तब भी कहोगे कि पीछे मेरा सब कुछ गया। तुम रोते हो कि कहाँ मुझे लिये जा रहे हैं। और मैं जब मरूँगा तो ऐसा ही चला जाऊँगा आगे, क्योंकि मेरे पीछे कुछ भी नहीं है। पीछे वही है जो भीतर हो और जो भीतर न हो वह पीछे भी नहीं है। बाहर भी वही है जो भीतर हो। जो भीतर न हो बाहर भी कुछ नहीं है। जो शून्य हो जाते हैं, उनके लिए संसार मोक्ष हो जाता है। जो शून्य हो जाते हैं उनके लिए संसार परमात्मा हो जाता है। जो शून्य हो जाते हैं उनके लिए यहीं सब कुछ उतर आता है, जिसकी आपको तलाश है और खोज है। लेकिन शून्य हो जाना जरूरी है। क्यों? क्योंकि जब वर्षा का पानी गिरता है और आकाश में मेघ इकट्ठे होते हैं और बूंदे बरसती हैं तो वह पानी की बूंदे टीलों पर या पहाड़ों पर इकट्ठी नहीं होती हैं, गड्ढों में इकट्ठी हो जाती हैं। जो टीले के की भाँति हैं, जिनका अहंकार उठा हुआ है, उन पर पानी तो गिरेगा लेकिन बहकर नीचे निकल जायगा, इकट्ठा नहीं होगा। और जो गड्ढों की भाँति खाली और शून्य हैं उनमें भर जायगा। जो शून्य है, वह ग्रहण करता है परमात्मा को और जो भरा है संसार से वह इनकार कर देता है, अस्वीकार कर देता है।

द्वार खोलना है तो शून्य हो जायँ, भीतर से बिलकुल खाली हो जायँ। जैसे वहाँ कुछ न हो। सामान वहाँ इकट्ठा न करें, फर्नीचर अपने घर में लायें और अपने भीतर न लायें, चीजें अपने बाहर लायें लेकिन भीतर न लायें। बाहर सब होने दें लेकिन भीतर खाली रहने दें। रोज सांझ को जो इकट्ठा किया उसे बाहर कर दें। झाड़ लें अपने को, बिलकुल साफ कर लें अपने को।

एक संन्यासी ने अपने शिष्य को एक दिन कहा कि तू बहुत दिन मेरे पास रहा है। अब मैं तुझे कहीं और भेजता हूँ ताकि मैंने तुझसे जो कहा है वह और ठीक से समझ ले। तो उसको एक दूसरे संन्यासी के पास भेजा कि तू जा और उसके पास रह और उसकी जीवनचर्या को देख। वह वहाँ गया। सुबह से शाम तक उसने दिनचर्या को देखा। उसमें कुछ भी नहीं था। वह संन्यासी एक छोटी-सी सराय का रखवाला था। वह संन्यासी भी नहीं था। साधारण कपड़े पहनता था लेकिन उसके गुरु ने उसे वहाँ भेजा, तो गया। वह

सो सका। सुबह होते ही राजा ने कहा कि संतजी, बड़ी शंका मन में उठी है। जबतक निवारण न हो, मैं बड़ी दिक्कत में पड़ गया हूँ। एक शंका उठी है, उसे प्रकट करने की आज्ञा दें। संन्यासी हँसने लगा। उसने कहा—तुम्हें शंका अब प्रकट हुई? मुझे वहीं हो गई थी। जैसे ही मैं खड़ा हुआ, मैं समझा तुमने निमंत्रण वापस ले लिया। फिर तो मजबूरी से यहाँ तक ले आए हो। पूछ लो, शंका का निवारण कर लो। राजा ने कहा कि रात मैं यही सोचता रहा कि आप कैसे संन्यासी हैं? संन्यासी ने कहा कि थोड़ा एकान्त होगा तो सरलता होगी बतलाने में। राजा ने कहा भेद तो जानना ही है। मुझमें और आपमें क्या भेद रहा, इस रात? कल तक तो भेद था। आप नीम के नीचे थे, भिखारी थे, भिखमंगे थे। खाने के वर्तन को सिर के नीचे रखकर सो जाते थे। मैं महल में था तो राजा था, आप भिखमंगे थे कल तक—तो बहुत भेद था। आप संन्यासी थे, मैं भोगी था। लेकिन आज रात कोई भेद मुझे दिखायी नहीं पड़ता। संन्यासी खूब हँसने लगा। और कोई भी संन्यासी हँसेगा, क्योंकि अगर भेद इतना ही है कि एक के पास बहुत विस्तर हैं और एक के पास बहुत विस्तर नहीं हैं; एक दरख्त के नीचे सोता है और एक महलों में। अगर भेद इतना ही हो, तो संन्यास और संसार में तो भेद किस मूल्य का हुआ? कोई भेद है ही नहीं।

संन्यासी बहुत हँसा। उसने कहा कि गाँव के बाहर चलें। वे दोनों गाँव के बाहर गए। बार-बार थोड़ी-थोड़ी दूर पर राजा पूछने लगा, उत्तर दे दें। अब तो गाँव के बाहर आ गए। संन्यासी ने कहा, थोड़ा और आगे, थोड़ा और आगे। दोपहर हो गई। सूरज ऊपर आ गया तो राजा ने कहा – क्या कर रहे हैं! आपको उत्तर देना है कि नहीं? यह और आगे से क्या मतलब होगा? संन्यासी ने कहा, और आगे ही उसका उत्तर है। अब मैं आगे ही जाऊँगा, पीछे नहीं लौटूँगा। आप भी मेरे साथ चलते हैं। राजा ने कहा–मैं कैसे चल सकता हूँ? पीछे मेरा महल, मेरा राज्य है। संन्यासी ने कहा–पीछे न मेरा महल है न मेरा राज्य है और इतना ही भेद है। जब रात तुम्हारे भवन में मैं सोया तो मैं बिलकुल उतना ही शून्य था जितना जब मैं नीम के नीचे सोता था। इतना ही भेद है। उसे स्मरण रखें, इसे हृदय के किसी कोने में बैठ जाने दें। इतना ही भेद है कि जब तुम्हारे महल में सोया तो उतना ही शून्य था जितना तब जब मैं रोज नीम के नीचे सोता था। मेरी

शून्यता वही थी, वही भेद था, तुम्हारे भीतर शून्यता नहीं है। जो तुम्हारे पास आता है उसी से तुम भर जाते हो। महल से भरे हुए हो। तुम कहते हो पीछे मेरा महल है, तुम कहते हो पीछे मेरा राज्य है। तुम जब मरोगे तब भी कहोगे कि पीछे मेरा सब कुछ गया। तुम रोते हो कि कहाँ मुझे लिये जा रहे हैं। और मैं जब मरूँगा तो ऐसा ही चला जाऊँगा आगे, क्योंकि मेरे पीछे कुछ भी नहीं है। पीछे वही है जो भीतर हो और जो भीतर न हो वह पीछे भी नहीं है। बाहर भी वही है जो भीतर हो। जो भीतर न हो बाहर भी कुछ नहीं है। जो शून्य हो जाते हैं, उनके लिए संसार मोक्ष हो जाता है। जो शून्य हो जाते हैं उनके लिए संसार परमात्मा हो जाता है। जो शून्य हो जाते हैं उनके लिए यहीं सब कुछ उतर आता है, जिसकी आपको तलाश है और खोज है। लेकिन शून्य हो जाना जरूरी है। क्यों? क्योंकि जब वर्षा का पानी गिरता है और आकाश में मेघ इकट्ठे होते हैं और बूंदे बरसती हैं तो वह पानी की बूंदे टीलों पर या पहाड़ों पर इकट्ठी नहीं होती हैं, गड्ढों में इकट्ठी हो जाती है। जो टीले के की भाँति हैं, जिनका अहंकार उठा हुआ है, उन पर पानी तो गिरेगा लेकिन बहकर नीचे निकल जायगा, इकट्ठा नहीं होगा। और जो गड्ढों की भाँति खाली और शून्य हैं उनमें भर जायगा। जो शून्य है, वह ग्रहण करता है परमात्मा को और जो भरा है संसार से वह इनकार कर देता है, अस्वीकार कर देता है।

द्वार खोलना है तो शून्य हो जायँ, भीतर से बिलकुल खाली हो जायँ। जैसे वहाँ कुछ न हो। सामान वहाँ इकट्ठा न करें, फर्नीचर अपने घर में लायें और अपने भीतर न लायें, चीजें अपने बाहर लायें लेकिन भीतर न लायें। बाहर सब होने दें लेकिन भीतर खाली रहने दें। रोज सांझ को जो इकट्ठा किया उसे बाहर कर दें। झाड़ लें अपने को, बिलकुल साफ कर लें अपने को।

एक संन्यासी ने अपने शिष्य को एक दिन कहा कि तू बहुत दिन मेरे पास रहा है। अब मैं तुझे कहीं और भेजता हूँ ताकि मैंने तुझसे जो कहा है वह और ठीक से समझ ले। तो उसको एक दूसरे संन्यासी के पास भेजा कि तू जा और उसके पास रह और उसकी जीवनचर्या को देख। वह वहाँ गया। सुबह से शाम तक उसने दिनचर्या को देखा। उसमें कुछ भी नहीं था। वह संन्यासी एक छोटी-सी सराय का रखवाला था। वह संन्यासी भी नहीं था। साधारण कपड़े पहनता था लेकिन उसके गुरु ने उसे वहाँ भेजा, तो गया। वह

सो सका। सुबह होते ही राजा ने कहा कि संतजी, बड़ी शंका मन में उठी है। जबतक निवारण न हो, मैं बड़ी दिक्कत में पड़ गया हूँ। एक शंका उठी है, उसे प्रकट करने की आज्ञा दें। संन्यासी हँसने लगा। उसने कहा—तुम्हें शंका अब प्रकट हुई? मुझे वहीं हो गई थी। जैसे ही मैं खड़ा हुआ, मैं समझा तुमने निमंत्रण वापस ले लिया। फिर तो मजबूरी से यहाँ तक ले आए हो। पूछ लो, शंका का निवारण कर लो। राजा ने कहा कि रात मैं यही सोचता रहा कि आप कैसे संन्यासी हैं? संन्यासी ने कहा कि थोड़ा एकान्त होगा तो सरलता होगी बतलाने में। राजा ने कहा भेद तो जानना ही है। मुझमें और आपमें क्या भेद रहा, इस रात? कल तक तो भेद था। आप नीम के नीचे थे, भिखारी थे, भिखमंगे थे। खाने के बर्तन को सिर के नीचे रखकर सो जाते थे। मैं महल में था तो राजा था, आप भिखमंगे थे कल तक—तो बहुत भेद था। आप संन्यासी थे, मैं भोगी था। लेकिन आज रात कोई भेद मुझे दिखायी नहीं पड़ता। संन्यासी खूब हँसने लगा। और कोई भी संन्यासी हँसेगा, क्योंकि अगर भेद इतना ही है कि एक के पास बहुत बिस्तर हैं और एक के पास बहुत बिस्तर नहीं हैं; एक दरख्त के नीचे सोता है और एक महलों में। अगर भेद इतना ही हो, तो संन्यास और संसार में तो भेद किस मूल्य का हुआ? कोई भेद है ही नहीं।

संन्यासी बहुत हँसा। उसने कहा कि गाँव के बाहर चलें। वे दोनों गाँव के बाहर गए। बार-बार थोड़ी-थोड़ी दूर पर राजा पूछने लगा, उत्तर दे दें। अब तो गाँव के बाहर आ गए। संन्यासी ने कहा, थोड़ा और आगे, थोड़ा और आगे। दोपहर हो गई। सूरज ऊपर आ गया तो राजा ने कहा – क्या कर रहे हैं! आपको उत्तर देना है कि नहीं? यह और आगे से क्या मतलब होगा? संन्यासी ने कहा, और आगे ही उसका उत्तर है। अब मैं आगे ही जाऊँगा, पीछे नहीं लौटूंगा। आप भी मेरे साथ चलते हैं। राजा ने कहा–मैं कैसे चल सकता हूँ? पीछे मेरा महल, मेरा राज्य है। संन्यासी ने कहा–पीछे न मेरा महल है न मेरा राज्य है और इतना ही भेद है। जब रात तुम्हारे भवन में मैं सोया तो मैं बिलकुल उतना ही शून्य था जितना जब मैं नीम के नीचे सोता था। इतना ही भेद है। उसे स्मरण रखें, इसे हृदय के किसी कोने में बैठ जाने दें। इतना ही भेद है कि जब तुम्हारे महल में सोया तो उतना ही शून्य था जितना तब जब मैं रोज नीम के नीचे सोता था। मेरी

शून्यता वही थी, वही भेद था, तुम्हारे भीतर शून्यता नहीं है। जो तुम्हारे पास आता है उसी से तुम भर जाते हो। महल से भरे हुए हो। तुम कहते हो पीछे मेरा महल है, तुम कहते हो पीछे मेरा राज्य है। तुम जब मरोगे तब भी कहोगे कि पीछे मेरा सब कुछ गया। तुम रोते हो कि कहाँ मुझे लिये जा रहे हैं। और मैं जब मरूँगा तो ऐसा ही चला जाऊँगा आगे, क्योंकि मेरे पीछे कुछ भी नहीं है। पीछे वही है जो भीतर हो और जो भीतर न हो वह पीछे भी नहीं है। बाहर भी वही है जो भीतर हो। जो भीतर न हो बाहर भी कुछ नहीं है। जो शून्य हो जाते हैं, उनके लिए संसार मोक्ष हो जाता है। जो शून्य हो जाते हैं उनके लिए संसार परमात्मा हो जाता है। जो शून्य हो जाते हैं उनके लिए यहीं सब कुछ उतर आता है, जिसकी आपको तलाश है और खोज है। लेकिन शून्य हो जाना जरूरी है। क्यों? क्योंकि जब वर्षा का पानी गिरता है और आकाश में मेघ इकट्ठे होते हैं और बूंदे बरसती हैं तो वह पानी की बूंदे टीलों पर या पहाड़ों पर इकट्ठी नहीं होती हैं, गड्ढों में इकट्ठी हो जाती हैं। जो टीले के की भाँति हैं, जिनका अहंकार उठा हुआ है, उन पर पानी तो गिरेगा लेकिन बहकर नीचे निकल जायगा, इकट्ठा नहीं होगा। और जो गड्ढों की भाँति खाली और शून्य हैं उनमें भर जायगा। जो शून्य है, वह ग्रहण करता है परमात्मा को और जो भरा है संसार से वह इनकार कर देता है, अस्वीकार कर देता है।

द्वार खोलना है तो शून्य हो जायँ, भीतर से बिलकुल खाली हो जायँ। जैसे वहाँ कुछ न हो। सामान वहाँ इकट्ठा न करें, फर्नीचर अपने घर में लायें और अपने भीतर न लायें, चीजें अपने बाहर लायें लेकिन भीतर न लायें। बाहर सब होने दें लेकिन भीतर खाली रहने दें। रोज सांझ को जो इकट्ठा किया उसे बाहर कर दें। झाड़ लें अपने को, बिलकुल साफ कर लें अपने को।

एक संन्यासी ने अपने शिष्य को एक दिन कहा कि तू बहुत दिन मेरे पास रहा है। अब मैं तुझे कहीं और भेजता हूँ ताकि मैंने तुझसे जो कहा है वह और ठीक से समझ ले। तो उसको एक दूसरे संन्यासी के पास भेजा कि तू जा और उसके पास रह और उसकी जीवनचर्या को देख। वह वहाँ गया। सुबह से शाम तक उसने दिनचर्या को देखा। उसमें कुछ भी नहीं था। वह संन्यासी एक छोटी-सी सराय का रखवाला था। वह संन्यासी भी नहीं था। साधारण कपड़े पहनता था लेकिन उसके गुरु ने उसे वहाँ भेजा, तो गया। वह

सुबह से शाम तक देखता रहा, वहाँ तो कुछ भी नहीं था। वह आदमी है, रखवाला है, रखवाली करता है। सराय को साफ करता है। मेहमान ठहरते हैं, उनके कमरे साफ करता है। मेहमान जाते हैं, उनके कमरे साफ करता है। उसने दो-चार दिन देखा तो ऊब गया। वहाँ तो कोई बात ही नहीं थी, चर्या की कोई बात ही नहीं थी। चलते वक्त उसने कहा, सब देख लिया जिसके लिए मेरे गुरु ने भेजा था। सिर्फ दो बातें मैं नहीं देख पाया हूँ : रात को सोते समय आप क्या करते हैं, वह मुझे पता नहीं है और सुबह उठते वक्त आप क्या करते हैं, वह मुझे पता नहीं। यह मुझे बता दें। मैं वापस लौट जाऊँ। संन्यासी ने कहा, कुछ नहीं करता। दिन भर मैं सराय के जो बरतन गन्दे हो जाते हैं रात में उनको साफ करके रख देता हूँ और सुबह जब उठता हूँ तो रात भर में उनपर थोड़ी बहुत धूल जम जाती है तो उन्हें मैं फिर पोंछ देता हूँ। बस इससे ज्यादा कुछ नहीं करता।

शिष्य ने वापस लौटकर गुरु से कहा, कहाँ तुमने मुझे भेज दिया, एक साधारण सराय के रखवाले के पास! उस नासमझ से मैंने पूछा, तो न तो वह प्रार्थना करता है न ध्यान, न कुछ। वह मुझसे बोला, रात बरतन साफ कर देता हूँ, जो दिन भर में गन्दे हो जाते हैं। और सुबह थोड़ी धूल जम जाती है तो फिर उसे पोंछ देता हूँ। उसके गुरु ने कहा—कह दिया उसने। जो कहने-जैसा था, उसने कह दिया। सारा ध्यान, सारी समाधी, सब कह दिया। तू समझा नहीं। दिन भर बरतन गन्दे हो जाते हैं, साँझ को उन्हें पोंछकर साफ कर दो। रात भर में सपनों की थोड़ी धूल फिर जम जायगी, सुबह में फिर पोंछ डालो और खाली हो जाओ। मरते जायँ, रोज, रोज धूल को इकट्ठी न करें। रोज मर जायँ, साँझ को मर जायँ। जो हो गया उसके प्रति मर जायँ। वह जो बीत गया उसके लिए बीत जाने दें और मर जायँ। उसे छोड़ दें। वह स्मृति से ज्यादा कुछ भी नहीं। उस कचरे को अलग करें। शान्त हो जायँ, चुप हो जायँ, शून्य हो जायँ। सुबह उठें जैसे कोई शून्य उठा हो, जिसका कोई आगा-पीछा नहीं है। दिन भर ऐसे जियें जैसे सब शून्य है। बाहर सब हो रहा है, भीतर शून्य है। अगर सतत इस शून्य का भीतर स्मरण हो तो धीरे-धीरे वह गड्ढा तैयार हो जाता है, जिसमें परमात्मा का अवतरण होता है और अमृत की वर्षा होती है। खाली हो जायँ—परमात्मा आपको भर देगा। इसके सिवा और कोई महत्त्व-

पूर्ण बात नहीं है। खाली हो जायँ—परमात्मा आपको भर देगा। भर जायँ—परमात्मा आपको खाली कर देगा।

मैंने तीन छोटे से सूत्र कहे—सरलता, सजगता और शून्यता। जो इन तीन को साथ ले, वह उस परमानन्द को उपलब्ध हो जाता है जिसकी हमने बातें सुनी हैं लेकिन जिसका हमें कोई अनुभव नहीं है। वही हम करें, जो अभी सुना है, जो अभी औरों से सुना है। जिसकी खबरें बुद्ध, महावीर, कृष्ण और राम से सुनी हैं, क्राइस्ट और मुहम्मद, मीरा और कबीर ने जिसके गीत गाए हैं। उन्होंने इसको जैसा जाना है, वैसा कहा है, वैसा ही जानना आपका भी हो सके। धर्म आपका मानना न रहे, धर्म आपका जानना हो जाय। मानने का कोई मूल्य नहीं है, मानना बिलकुल ही व्यर्थ है। जानने का मूल्य है। धर्म आपका अपना जानना, अपनी अनुभूति, अपना प्रत्यक्ष, अपना साक्षात् हो जाय, यही प्रभु से कामना करता हूँ। और यदि आप तैयार हों तो कल तक रुकने की भी कोई जरूरत नहीं है। जो मिटने को तैयार है वह अभी पा लेता है। बूंद जब सागर में अपने को खोने में राजी हो जाती है, तो सागर हो जाती है। ईश्वर करे, आपकी बूँद सागर में खो जाय और आप भी उसे जान सकें जिसे जान लेना सब कुछ है, जिसे पा लेना सब कुछ है और जिसके बिना सब कुछ अभाव है, जिसे पा लेने से सब कुछ मिल जाता है—आनन्द, शान्ति, शून्य, प्रेम! ०००

जीवन और मृत्यु

सारे मनुष्य का अनुभव शरीर का अनुभव है, सारे योगी का अनुभव सूक्ष्म शरीर का अनुभव है, परम योगी का अनुभव परमात्मा का अनुभव है। परमात्मा एक है, सूक्ष्म शरीर अनंत है, थूल शरीर अनंत है। वह जो सूक्ष्म है वह नए स्थूल शरीर ग्रहण करता है। हम यहाँ देख रहे हैं कि बहुत से बल्व जले हुए हैं। विद्युत् तो एक है, विद्युत् बहुत नहीं है। वह ऊर्जा, वह शक्ति वह इनर्जी एक है लेकिन दो अलग बल्बों से वह प्रकट हो रही है। बल्व का शरीर अलग अलग है, उसकी आत्मा एक है। हमारे भीतर से जो चेतना झाँक रही है वह चेतना एक है लेकिन एक उपकरण है सूक्ष्म देह, दूसरा उपकरण है स्थूल देह। हमारा अनुभव स्थूल देह तक ही रुक जाता है। यह

जो स्थूल देह तक रुक गया अनुभव है यही मनुष्य के जीवन का सारा अंधकार और दुख है। लेकिन कुछ लोग सूक्ष्म शरीर पर भी रुक सकते हैं। जो लोग सूक्ष्म शरीर पर रुक जाते हैं वे ऐसा कहेंगे कि आत्माएँ अनंत हैं। लेकिन जो सूक्ष्म शरीर के भी आगे चले जाते हैं वे कहेंगे परमात्मा एक है, आत्मा एक है, ब्रह्म एक है।

मेरी इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। मैंने जो आत्मा के प्रवेश के लिए कहा उसका अर्थ है वह आत्मा जिसका अभी सूक्ष्म शरीर गिर नहीं गया है। इसलिए हम कहते हैं कि जो आत्मा परम मुक्ति को उपलब्ध हो जाती है उसका जन्म-मरण बन्द हो जाता है। आत्मा का तो कोई जन्म-मरण है ही नहीं, वह न तो कभी जन्मी है और न कभी मरेगी। वह जो सूक्ष्म शरीर है वह भी समाप्त हो जाने पर कोई जन्म-मरण नहीं रह जाता है क्योंकि सूक्ष्म शरीर ही कारण बनता है नए जन्मों का। सूक्ष्म शरीर का अर्थ है हमारे विचार, हमारी कामनाएँ, हमारी वासनाएँ, हमारी इच्छाएँ, हमारे अनुभव, हमारे ज्ञान इन सब का जो संग्रहीभूत बीज है वह हमारा सूक्ष्म शरीर है, वही हमें आगे की यात्रा पर ले जाता है। लेकिन जिस मनुष्य के सारे विचार कष्ट हो गए, जिस मनुष्य की सारी वासनाएँ क्षीण हो गईं, जिस मनुष्य की सारी इच्छाएँ विलीन हो गईं, जिसके भीतर अब कोई भी इच्छा शेष न रही उस मनुष्य को जाने के लिए कोई जगह नहीं बचती, जाने का कोई कारण नहीं रह जाता। जन्म की कोई वजह नहीं रह जाती।

राम कृष्ण के जीवन में एक अद्भुत घटना है। रामकृष्ण को जो लोग बहुत निकट से परमहंस जानते थे उनको यह बात जानकर अत्यन्त कठिनाई होती थी कि रामकृण–जैसा परहंस, रामकृष्ण–जैसा समाधिस्थ व्यक्ति भोजन के संबंध में बहुत लोलुप था। रामकृष्ण भोजन के लिए बहुत आतुर होते थे और भोजन के लिए इतनी प्रतीक्षा करते थे कि कई बार उठकर चौका में पहुँच जाते और पूछते शारदा को, बहुत देर हो गई, क्या बन रहा है आज ? ब्रह्म की चर्चाचलती और बीच में ब्रह्मचर्चा छोड़कर पहुँच जाते चौके में और पूछने लगते, क्या बना है आज और खोजने लगते। शारदा ने उन्हें कहा, आप क्या करते हैं ? लोग क्या सोचते होंगे कि ब्रह्म की चर्चा छोड़कर एकदम अन्न की चर्चा पर आप उतर आते हैं। रामकृष्ण हँसते और चुप रह

जाते। उनके शिष्यों ने भी उनको बहुत बार कहा कि इससे बहुत बदनामी होती है। लोग कहते है कि ऐसा व्यक्ति क्या ज्ञान को उपलब्ध हुआ होगा जिसकी अभी रसना, जिसकी अभी जीभ इतनी लालायित होती है भोजन के लिए। एक दिन बहुत कुछ भला-बुरा कहा रामकृष्ण की पत्नी शारदा ने तो रामकृष्ण ने कहा कि तुझे पता नहीं, जिस दिन मैं भोजन के प्रति अरुचि प्रकट करूँ, तू समझ लेना कि अब मेरे जीवन की यात्रा केवल तीन दिन और शेष रह गई। बस तीन दिन से ज्यादा फिर मैं बचूँगा नहीं। जिस दिन भोजन के प्रति मेरी उपेक्षा हो, तू समझ लेना कि तीन दिन बाद मेरी मौत आ जायगी। शारदा कहने लगी, इसका अर्थ? रामकृष्ण कहने लगे, मेरी सारी वासनाएँ क्षीण हो गईं, मेरी सारी इच्छाएँ विलीन हो गईं, मेरे सारे विचार नष्ट हो गए, लेकिन जगत के हित के लिए मैं रुका रहना चाहता हूँ। मैं एक वासना को जबरदस्ती पकड़े हुए हूँ जैसे किसी नाव की सारी जंजीरें खुल गई हों और एक जंजीर से नाव अटकी रह गई हो और वह जंजीर भी टूट जाय तो नाव अपनी अनंत यात्रा पर निकल आयगी। मैं चेष्टा करके रुका हुआ हूँ। किसी की समझ में शायद यह बात नहीं आई लेकिन रामकृष्ण की मृत्यु के तीन दिन पहले शारदा थाली लगाकर उनके कमरे में गयी। वे बैठे हुए देख रहे थे। उन्होंने थाली देखकर आँखें बन्द कर लीं, और पीठ कर ली शारदा की तरफ। उसे एकदम से खयाल आया कि उन्होंने कहा था कि तीन दिन बाद मौत हो जायगी जिस दिन जीवन के प्रति अरुचि करूँ। उसके हाथ से थाली गिर गई और वह पीट-पीट कर रोने लगी। रामकृष्ण ने कहा, रोओ मत। तुम जो कहती थी वह बात भी अब पूरी हो गई। ठीक तीन दिन बाद रामकृष्ण की मृत्यु हो गई। एक छोटी-सी वासना को प्रयास करके वे रोके हुए थे। उतनी छोटी-सी वासना जीवन-यात्रा का आधार बनी थी, वह वासना भी चली गई तो जीवन-यात्रा का सारा आधार समाप्त हो गया। जिसे तीर्थंकर कहते हैं, जिसे हम ईश्वर के पुत्र कहते हैं, जिसे हम अवतार कहते हैं उनकी भी एक ही वासना शेष रह गई होती है और उस वासना को वे शेष रखना चाहते हैं करुणा के हित, मंगल के हित, सर्वमंगल के हित, सर्वलोक के हित। जिस दिन वह वासना भी क्षीण हो जाती है उसी दिन जीवन की यह यात्रा समाप्त और अनंत की अंतहीन यात्रा शुरू होती है। उसके बाद जन्म नहीं है, उसके बाद मरण नहीं है, उसके न एक है, न अनेक

है। उसके पास तो जो शेप रह जाता है उससे संख्या में गिनने का कोई उपाय नहीं, इसलिए जो जानते हैं वे यह भी देखते हैं कि ब्रह्म एक है, परमात्मा एक है। क्योंकि एक कहना व्यर्थ है जब कि दो की गिनती न बनती हो। एक कहने का कोई अर्थ नहीं जब कि दो और तीन नहीं कहे जा सकते हों। एक कहना तभी तक सार्थक है जबतक कि दो, तीन, चार भी सार्थक होते हैं। संख्याओं के बीच की एक की सार्थकता है इसलिए जो जानते हैं वे यह भी नहीं कहते कि ब्रह्म एक है, वे कहते ब्रह्म अद्वैत है, दो नहीं है, बहुत अद्‌भुत बात कहते हैं। वे कहते हैं परमात्मा दो नहीं है। वे यह कहते हैं कि परमात्मा को संख्या में गिनने का उपाय नहीं है। एक कहकर भी हम संख्या में गिनने की कोशिश करते हैं वह गलत है, लेकिन उस तक पहुँचना दूर, अभी तो हम स्थूल खड़े हैं, उस शरीर पर जो अनंत है, अनेक है। उस शरीर के भीतर हम प्रवेश करेंगे तो एक और शरीर उपलब्ध होगा सूक्ष्म शरीर। उस शरीर को भी पार करेंगे तो वह उपलब्ध होगा जो शरीर नहीं है, अशरीर है, जो आत्मा है।

एक और मित्र ने पूछा है, आत्मा शरीर के बाहर चली जाय तो क्या दूसरे मृत शरीर में भी प्रवेश कर सकती है?

हाँ, कर सकती है। लेकिन दूसरे मृत शरीर में प्रवेश करने का कोई अर्थ और प्रयोजन नहीं रह जाता। क्योंकि दूसरा शरीर इसीलिए मृत हुआ है कि उस शरीर में रहनेवाली आत्मा अब उस शरीर में रहने में असमर्थ हो गई थी। वह शरीर व्यर्थ हो गया था इसीलिए छोड़ा गया है, कोई प्रयोजन नहीं है उस शरीर में प्रवेश का। लेकिन इस बात की संभावना है कि दूसरे शरीर में प्रवेश किया जा सके। लेकिन यह प्रश्न पूछना मूल्यवान नहीं है कि हम दूसरे के शरीर में कैसे प्रवेश करें। अपने ही शरीर में हम कैसे बैठे हुए हैं इसका भी हमें कोई पता नहीं। हम दूसरे के शरीर में प्रवेश करने की व्यर्थ की बातों पर विचार करने से क्या फायदा उठा सकते हैं, हम अपने ही शरीर में कैसे प्रविष्ट हो गए हैं इसका भी हमें कोई पता नहीं। हम अपने ही शरीर में कैसे जी रहे हैं इसका भी कोई पता नहीं, हम अपने ही शरीर से पृथक होकर अपने को देख सकें इसका भी कोई अनुभव नहीं। दूसरे के शरीर में प्रवेश का प्रयोजन भी नहीं है लेकिन वैज्ञानिक रूप से यह कहा जा सकता है कि दूसरे के शरीर में प्रवेश संभव है क्योंकि शरीर न ही दूसरे का है न अपना

है। सब शरीर दूसरे हैं। जब माँ के पेट में एक आत्मा प्रविष्ट होती है तब भी वह शरीर में प्रवेश हो रही है, बहुत छोटे शरीर में प्रवेश हो रही है, एटोमिक बाडी में प्रवेश हो रही है लेकिन शरीर तो है। वह जो पहले दिन अणु बनता है माँ के पेट में, वह अणु आपके शरीर की रूपाकृति अपने में छिपाये हुए है। पचास साल बाद आपके बाल सफेद हो जायँगे, यह संभावना भी उस छोटे से बीज में छिपी हुई है। आपकी आँख का रंग कैसा होगा यह संभवना भी उस बीज में छिपी हुई है, आपके हाथ कितने लम्बे होंगे, आप स्वस्थ हों कि बीमार, आप गोरे होंगे कि काले, बाल घुंघराले होंगे, ये सारी बातें उस छोटे बीज में छिपी हुई हैं। वह छोटी देह है, वह एटोमिक बाडी है, अणु शरीर है, उस अणु शरीर में आत्मा प्रविष्ट होती है। उस अणु शरीर की जो संरचना है उस अणु शरीर की जो स्थिति है, उसके अनुकुल आत्मा उसमें प्रविष्ट होती है और दुनियाँ में जो मनुष्य जाति का जीवन और चेतना रोज नीचे गिरती जा रही है उसका एक मात्र कारण है कि दुनिया के दंपत्ति श्रेष्ठ आत्माओं के जन्म लेने की सुविधा पैदा नहीं कर रहे हैं। जो सुविधा पैदा की जा रही है वह अति निकृष्ट आत्माओं के पैदा होने की सुविधा है। आदमी के मर जाने के बाद जरूरी नहीं है कि उस आत्मा को जल्दी जन्म लेने का अवसर मिल जाय। साधारण आत्माएँ, जो न बहुत श्रेष्ठ होती हैं, न बहुत निकृष्ट होती हैं, १३ दिन के भीतर नए शरीर की खोज कर लेती हैं लेकिन निकृष्ट आत्माएँ भी रुक जाती हैं क्योंकि उतना निकृष्ट अवसर मिलना मुश्किल होता है। उन निकृष्ट आत्माओं को ही हम प्रेत और भूत कहते हैं। बहुत श्रेष्ठ आत्माएँ भी रुक जाती हैं क्योंकि उतने श्रेष्ठ अवसर का उपलब्ध होना मुश्किल होता है। उन श्रेष्ठआत्माओं को ही हम देवता कहते हैं। पुरानी दुनियाँ में भूत प्रेत की संख्या बहुत कम थी और देवताओं की संख्या बहुत ज्यादा। आज की दुनियाँ में भूत-प्रेतों की संख्या बहुत ज्यादा हो गई है और देवताओं की संख्या कम, क्योंकि देवता पुरुषों का अवसर पैदा होने का कम हो गया है, भूत प्रेत तैदा होने का अवसर बहुत तीव्रता से उपलब्ध हुआ।

तो जो भूत-प्रेत रुके रह जाते हैं मनुष्य के भीतर प्रवेश करने से वे सारे मनुष्य जाति में प्रविष्ट हो गए। इसीलिए आज भूत-प्रेतों का दर्शन मुश्किल हो गया है क्योंकि उनके दर्शन की कोई जरूरत नहीं। आप आदमी को ही देख

लें और उसके दर्शन हो जाते हैं। देवता पर हमारा विश्वास कम हो गया क्योंकि देवपुरुष ही जब दिखायी नहीं पड़ते हों तो देवता पर विश्वास करना बहुत कठिन है। एक जमाना था कि देवता उतनी ही वास्तविकता थी, उतनी ही एक्चुअलटी थी जितना कि हमारे और जीवन के दूसरे सत्य हैं। अगर हम वेद के ऋषियों को पढ़ें तो ऐसा मालूम पड़ता है कि वे देवताओं के संबंध में जो बात कह रहे हैं वह किसी कल्पना के देवता के संबंध में कह रहे हैं, वे ऐसे देवता की बात कह रहे हैं जो उनके साथ गीत गाता है, हँसता है, बात करता है, वे एक ऐसे देवता की बात कर रहे हैं जो पृथ्वी पर उनके अत्यन्त निकट चलता है। हमारा देवता से सारा संबंध विनष्ट हुआ है क्योंकि हमारे बीच ऐसे पुरुष नहीं हुए जो सेतु बन सकें, जो ब्रिज बन सकें, जो देवताओं और मनुष्यों के बीच में खड़े होकर घोषणा कर सकें कि देवता कैसे होते हैं। इसका सारा जिम्मा मनुष्य जाति के दाम्पत्य की जो व्यवस्था है उसपर निर्भर है। मनुष्य जाति की दाम्पत्य की सारी की सारी व्यवस्था कुरूप है। पहली बात तो यह है कि हमने हजारों साल से प्रेमपूर्ण विवाह बन्द कर दिए हैं और विवाह हम बिना प्रेम के कर रहे हैं। जो विवाह प्रेम के बिना होगा उस दंपति के बीच कभी भी वह आध्यात्मिक संबंध उत्पन्न नहीं होगा जो प्रेम से संभव था। उन दोनों के बीच कभी भी वह एकरूपता और संगीत पैदा नहीं हो सकता जो एक श्रेष्ठ आत्मा के जन्म के लिए जरूरी है। उनके प्रेम में वह आत्मा का आंदोलन नहीं होता जो दो प्राणों को एक कर देता है। प्रेम के बिना जो बच्चे पैदा होते हैं प्रेमपूर्ण नहीं हो सकते, वे देवता-जैसे नहीं हो सकते, उनकी स्थिति भूत-प्रेत-जैसी ही होगी, उनका जीवन घृणा भर देगा और हिंसा का ही जीवन होगा। जरा सी बात फरक पैदा करती है। अगर व्यक्तित्व की बुनियादी लयबद्धता नहीं है तो अद्‌भुत परिवर्तन होते हैं।

शायद आपको पता नहीं होगा, स्त्री पुरुषों से ज्यादा सुन्दर क्यों दिखायी पड़ती है। शायद आपको खयाल न होगा, स्त्री के व्यक्तित्व में एक राउन्डनेस, एक सुडौलता क्यों दिखाई पड़ती है? वह पुरुष के व्यक्तित्व में क्यों नहीं दिखायी पड़ती? शायद आपको खयाल में न होगा कि स्त्री के व्यक्तित्व में एक संगीत, एक नृत्य, एक इनर डांस, एक भीतरी नृत्य क्यों दिखायी पड़ता है जो पुरुष में दिखायी नहीं पड़ता। एक छोटा-सा कारण है। एक छोटा-सा, इतना छोटा

है कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते। इतने छोटे-से कारण पर व्यक्तित्व का इतना भेद पैदा हो जाता है। माँ के पेट में जो बच्चा निर्मित होता है उसके पहले अणु में चौबीस जीवाणु पुरुष के होते हैं और चौबीस जीवाणु स्त्री के होते हैं। अगर चौबीस-चौबीस के दोनों जीवाणु मिलते हैं तो अड़तालीस जीवाणुओं का पहला सेल निर्मित होता है। अड़तालीस सेल से जो प्राण पैदा होता है वह स्त्री का शरीर बन जाता है। उसके दोनों बाजू २४–२४ सेल के संतुलित होते हैं। पुरुष का जो जीवाणु होता है वह सैंतालिस जीवाणुओं का होता है। एक तरफ चौबीस होते हैं, एक तरफ तेईस। बस यह संतुलन टूट गया वहीं से व्यक्तित्व का। स्त्री के दोनों पलड़े व्यक्तित्व के बाबत संतुलन के हैं। उससे सारा स्त्री का सौंदर्य, उसकी सुडौलता, उसकी कला, उसके व्यक्तित्व का रस, उसके व्यक्तित्व का काव्य पैदा होता है और पुरुष के व्यक्तित्व में जरा-सी कमी है। तो उसका एक तराजू चौबीस जीवाणुओं से बना हुआ है। माँ से जो जीवाणु मिलता है वह चौबीस का बना हुआ है और पुरुष से जो मिलता है वह तेईस का बना हुआ है। पुरुष के जीवाणुओं में दो तरह के जीवाणु होते हैं, चौबीस कोष्ठधारी और तेईस कोष्ठधारी। तेईस कोष्ठधारी जीवाणु अगर माँ के चौबीस कोष्ठ-धारी जीवाणु से मिलता है तो पुरुष का जन्म होता है। इसलिए पुरुष में एक बेचैनी जीवन भर बनी रहती है, एक असंतोष बना रहता है। क्या करूँ, क्या न करूँ, एक चिन्ता, एक बेचैनी, यह कर लूँ, यह कर लूँ, वह कर लूँ। पुरुष की जो बेचैनी है वह एक छोटी-सी घटना से शुरू होती है और वह घटना है कि उसके एक पलड़े पर एक अणु कम है। उसके व्यक्तित्व का संतुलन कम है। स्त्री का संतुलन पूरा है, उसकी लयबद्धता पूरी है। इतनी-सी घटना इतना फरक लाती है। इससे स्त्री सुन्दर तो हो सकी लेकिन विकासमान नहीं हो सकी, क्योंकि जिस व्यक्तित्व में समता है वह विकास नहीं करता, वह ठहर जाता है। पुरुष का व्यक्तित्व विषम है। विषम होने के कारण वह दौड़ता है, विकास करता है। एवरेस्ट चढ़ता है, पहाड़ पार करता है, चाँद पर जायगा, तारों पर जायगा, खोज बीन करेगा, सोचेगा, ग्रन्थ लिखेगा, धर्म-निर्माण करेगा। स्त्री यह कुछ भी नहीं करेगी। न वह एवरेस्ट पर जायगी, न वह चाँद तारों पर जायगी, न वह धर्मों की खोज करेगी, न ग्रन्थ लिखेगी, न विज्ञान की शोध करेगी। वह कुछ भी नहीं करेगी। उसके व्यक्तित्व में एक

संतुलन उसे पार होने के लिए तीव्रता से नहीं भरता है। पुरुष ने सारी सभ्यता विकसित की, एक छोटी ही बात के कारण। उसमें एक अणु कम है। स्त्री ने सारी सभ्यताएँ विकसित नहीं कीं। उसमें एक अणु पूरा है। उतनी-सी घटना व्यक्तित्व का भेद ला सकती है। तो पुरुष और स्त्री के मिलने पर जिस बच्चे का जन्म होता है वह उन दोनों व्यक्तियों में कितना गहरा प्रेम है, कितनी आध्यात्मिकता, कितनी पवित्रता है, कितने प्रार्थनापूर्ण हृदय से वे एक दूसरे के पास आए हैं इसपर निर्भर करेगा। कितनी ऊँची आत्मा उनकी तरफ आकर्षित होती है, कितनी विराट आत्मा उनकी तरफ आकर्षित होती है, कितनी महान दिव्य चेतना उस घर में अपना अवसर बनाती है यह इसपर निर्भर करेगा।

मनुष्य जाति क्षीण और दीन-दरिद्र और दुखी होती चली जा रही है। उसके बहुत गहरे में दाम्पत्य का विकृत होना कारण है। और जबतक हम मनुष्य के दाम्पत्य जीवन को स्वीकृत नहीं कर लेते, जबतक उसे हम आध्यात्मिक नहीं कर लेते तबतक हम मनुष्य के भविष्य में सुधार नहीं कर सकते। और इस दुर्भाग्य में उन लोगों का भी हाथ है जिन लोगों ने गृहस्थ जीवन की निन्दा की है और संन्यास जीवन का बहुत ज्यादा शोरगुल मचाया है। क्योंकि एक बार गृहस्थ जीवन निन्दित हो गया तो उस तरफ हमने विचार करना छोड़ दिया। मैं आपसे कहना चाहता हूँ, संन्यास के रास्ते से बहुत थोड़े लोग ही परमात्मा तक पहुँच सकते हैं। बहुत थोड़े से लोग, कुछ विशिष्ट तरह के लोग, कुछ अत्यंत निम्न तरह के लोग संन्यास के रास्ते से परमात्मा तक पहुँचते हैं। अधिकतम लोग गृहस्थ के रास्ते से और दाम्पत्य के रास्ते से ही परमात्मा तक पहुँचते हैं और आश्चर्य की बात यह कि गृहस्थ के मार्ग से पहुँच अत्यन्त सरल और सुलभ है लेकिन उस तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया। आज तक का सारा धर्म संन्यासियों के प्रति प्रभाव से पीड़ित है, आज तक का पूरा धर्म गृहस्थ के लिए विकसित नहीं हो सका और अगर गृहस्थ के लिए धर्म विकसित होता तो हमने जन्म के पहले चरण में विचार किया होता कि कैसी आत्मा को आमंत्रित करना है, कैसी आत्मा को पकड़ना है, कैसी आत्मा को जीवन में प्रवेश देना है। अगर धर्म की ठीक-ठीक शिक्षा हो सके और एक-एक व्यक्ति को धर्म का विचार, कल्पना और भावना दी जा सके तो बीस वर्षों में आनेवाले मनुष्य की पीढ़ी को

बिलकुल नया बनाया जा सकता है। वह आदमी पापी है जो आनेवाली आत्मा के लिए प्रेमपूर्ण आमंत्रण भेजे बिना भोग में उतरता है। वह आदमी अपराधी है, उसके बच्चे नाजायज हैं, चाहे उसने बच्चे विवाह के द्वारा पैदा किए हों। जिसने बच्चों को अत्यन्त प्रार्थना और पूजा से और परमात्मा को स्मरण करके नहीं बुलाया है, वह आदमी अपराधी है, वह अपराधी रहेगा। कौन हमारे भीतर प्रविष्ट होता है इसपर निर्भर करता है सारा भविष्य। हम शिक्षा की फिक्र करते हैं, हम वस्त्रों की फिक्र करते हैं, हम बच्चों के स्वास्थ्य की फिक्र करते हैं लेकिन बच्चे की आत्मा की फिक्र हमने बिलकुल ही छोड़ दी है। इससे कभी भी कोई अच्छी मनुष्य जाति पैदा नहीं हो सकती। इसलिए यह फिक्र न करें कि दूसरे के शरीर में कैसे प्रवेश करें। इस बात की फिक्र करें कि आप इस शरीर में ही कैसे प्रवेश कर गए।

इस संबंध में एक मित्र ने पूछा है कि क्या हम अपने अतीत जन्मों को जान सकते हैं?

निश्चित ही जान सकते हैं। लेकिन अभी तो आप इस जन्म को भी नहीं जानते अतीत के जन्मों को जानना तो फिर बहुत कठिन है। निश्चित ही मनुष्य जान सकता है अपने पिछले जन्मों को क्योंकि जो भी एक बार चित्र पर स्मृति बन गई है वह नष्ट नहीं होती। वह हमारे चित्र के गहरे तलों में अनभिज्ञ हिस्सों में सदा मौजूद रहती है। हम जो भी जानते हैं उसे कभी नहीं भूलते हैं। अगर मैं आपसे पूछूँ कि १९५० की १ जनवरी को आपने क्या किया था तो शायद आप कुछ भी नहीं बता सकेंगे। आप कहेंगे मुझे क्या याद है, मुझे कुछ भी याद नहीं है। कुछ भी खयाल नहीं आता कि मैंने कुछ किया, लेकिन अगर आपको सम्मोहित किया जा सके और सरलता से किया जा सकता है और आपको बेहोश करके पूछा जाय कि १ जनवरी १९५० को आपने क्या किया तो आप सुबह से साँझ तक का ब्योरा इस तरह बता देंगे जैसे अभी वह एक जनवरी आपके सामने से गुजर रही है। आप यह भी बता देंगे कि १ जनवरी की सुबह जो मैंने चाय पी थी, उसमें शक्कर थोड़ी कम थी आप यह भी बता देंगे कि हम आदमी ने मुझे चाय दी थी उसके शरीर से पसीने की बदबू आ रही थी। आप इतनी छोटी बातें बता देंगे कि जो जूता मैं पहने हुए था वह मुझे पैर में काट रहा था। सम्मोहित अवस्था में आपके भीतर की स्मृति को बाहर लाया जा सकता है। मैंने उस दिशा में बहुत-से

प्रयोग किए हैं इसलिए आपसे कहता हूँ। जिस मित्र को भी इच्छा हो अपने पिछले जन्मों में जाने की उन्हें ले जाया जा सकता है। लेकिन पहले उसे इसी जन्म की ही स्मृतियों में पीछे लौटना पड़ेगा। वहाँ तक पीछे लौटना पड़ेगा जहाँ वह माँ के पेट में गर्भ धारण हुआ, और उसके बाद फिर दूसरे जन्म की स्मृतियों में प्रवेश किया जा सकता है। लेकिन ध्यान रहे प्रकृति ने पिछले जन्मों को भुलाने की व्यवस्था अकारण नहीं की है। कारण बहुत महत्त्वपूर्ण है। और पिछले जन्म तो दूर हैं, अगर आपको एक महीने की ही सारी बातें याद रह जायँ तो आप पागल हो जायँगे। एक दिन की नींद में अगर सुबह से शाम तक की सारी बातें याद रह जायँ तो आप जिन्दा नहीं रह सकेंगे। तो प्रकृति की सारी व्यवस्था यह है कि आपका मन जितना तनाव झेल सका है उतनी ही स्मृति आपके भीतर शेष रहने दी जाती है। शेष सब अँधेरे गर्त में डाल दी जाती हैं। जैसे घर में एक कबाड़ होता है। बेकार चीजें आप कबाड़ घर में डालकर दरवाजा बन्द कर देते हैं वैसे ही स्मृति का एक कलेक्टिव हाउस, एक अनकांसस घर है, एक अचेतन घर है जहाँ स्मृति में जो बेकार होता चला जाता है जिसे चित्त में रखने की जरूरत नहीं है वह संग्रहीत होता रहता है। वहाँ जन्म-जन्मों की स्मृतियाँ संग्रहीत हैं। लेकिन अगर कोई आदमी अनजाने बिना समझे हुए उस घर में प्रविष्ट हो जाय तो तत्क्षण पागल हो जायगा। इतनी ज्यादा हैं वे संस्मृतियाँ।

एक महिला मेरे पास प्रयोग करती थीं। उनको बहुत इच्छा थी कि वे पिछले जन्मों को जानें। मैंने उनको कहा कि यह हो सकता है लेकिन आगे की जिम्मेदारी समझ लेनी चाहिए, क्योंकि हो सकता है पिछले जन्म को जानने से आप बहुत चिंतित और परेशान हो जायँ। उन्होंने कहा कि नहीं, मैं क्यों परेशान होऊँगी। पिछला जन्म तो हो चुका है अब, क्या फिक्र की बात है। उन्होंने प्रयोग शुरू किया। वे एक कालेज में प्राफेसर थीं। बुद्धिमान थीं, समझदार थीं हिम्मतवर थी। उन्होंने प्रयोग शुरू किया और जिस भांति मैंने कहा उन्होंने गहरे से गहरे मेडीटेशन किए, गहरे से गहरा ध्यान किया। धीरे-धीरे स्मृति के नीचे पर्तों को उघाड़ना शुरू किया और एक दिन जब पहली बार उन्हें पिछले जन्म में प्रवेश मिला वह भागती हुई आईं। उनके हाथ-पैर कँप रहे थे। आँखों से आँसू बह रहे थे एकदम छाती पीट-पीटकर रोने लगीं और कहने लगीं कि मैं भूलना चाहती हूँ उस बात को जो मुझे याद आ गई। मैं उस

पिछले जन्म में अब आगे नहीं जाना चाहती। मैंने कहा अब मुश्किल है। जो याद आ गई उसे भूलने में फिर बहुत वक्त लग जाएगा लेकिन इतनी घबराहट क्या है उन्होंने कहा, नहीं पूछिए ही मत। मैं तो सोचती थी कि मैं बहुत पतिव्रता हूँ, बहुत सच्चरित्र हूँ, लेकिन पिछले जन्म में एक मंदिर में वेश्या थी। मैं देवदासी थी और मैंने हजारों पुरुषों के साथ सम्भोग किया और मैंने अपने शरीर को बेचा। नहीं, मैं उसे भुलाना चाहती हूँ। मैं उसे एक क्षण भी याद नहीं रखना चाहती। मैंने कहा, अब इतना आसान नहीं है। याद करना बहुत आसान है, भूल जाना बहुत मुश्किल है।

पिछले जन्म में जाया जा सकता है और जिसकी मर्जी हो उसके रास्ते हैं। महावीर और बुद्ध दोनों ने मनुष्य जाति को बड़े से बड़ा दान दिया है। वह उनकी अहिंसा का सिद्धान्त नहीं है। वह सबसे बड़ा दान है। वह है पिछले जन्मों की स्मृति में उतरने की कला। महावीर और बुद्ध दोनों पहले आदमी पृथ्वी पर हैं जिन्होंने प्रत्येक साधक के लिए यह कहा कि तबतक तुम आत्मा से परिचित नहीं हो सकोगे जबतक तुम पिछले जन्मों में नहीं उतरते हो और उन्होंने प्रत्येक साधक को पिछले जन्म में ले जाने की फिक्र की और एक बार कोई आदमी अपने पिछले जन्मों की स्मृतियों में जाने की हिम्मत जुटा ले वह दूसरा आदमी हो जायगा, क्योंकि उसे पता चलेगा कि जिन बातों को मैं हजारों बार कर चुका हूँ उन्हीं को फिर कर रहा हूँ। कैसा पागल हूँ, कितनी बार मैंने सम्पत्ति इकट्ठी की है, कितनी बार मैंने करोड़ों के अम्बार लगा दिये, कितनी बार मैंने महल खड़े किए, कितनी बार इज्जत ज्ञान और पद और बार दिल्ली के सिंहासनों की यात्रा कर ली है। कितनी बार, कितनी अनन्त बार, और फिर मैं वही कर रहा हूँ और हर यात्रा असफल हो गई है। वह यात्रा इस बार भी असफल हो जायगी। तत्क्षण उसकी सम्पत्ति की दौड़ बंद हो जायगी, तत्क्षण उसके पदों का मोह नष्ट हो जाएगा। वह आदमी जानेगा मैंने हजारों-हजारों वर्षों में कितनी स्त्रियाँ भोगी, स्त्रियां जानेंगी कि मैंने हजारों-हजारों वर्षों में कितने पुरुष भोगे और न किसी पुरुष से तृप्ति मिली और न किसी स्त्री से तृप्ति मिली और अब भी मैं यही सोच रहा हूँ कि इस स्त्री को भोगूँ, उस स्त्री को भोगूँ, इस पुरुष को भोगूँ, उस पुरुष को भोगूँ। यह करोड़ बार हो चुका है।

एक बार स्मरण आ जाय इसका तो फिर यह दोवारा नहीं हो सकता। क्योंकि इतने बार जब हम कर चुके हों और कोई फल न पाया हो तो फिर आगे उसे दोहराये जाने का उपाय नहीं है, कोई अर्थ नहीं है। बुद्ध और महावीर दोनों ने अतीत जन्मों की स्मृति के गहरे प्रयोग किए। जो साधक एक बार उस स्मृति से गुजर गया वह दूसरा हो गया, ट्रांसफार्म हो गया, बदल गया। जिन मित्र ने पूछा है उनको जरूर कहूँगा कि अगर उनकी इच्छा हो तो उन्हें पिछली स्मृति में ले जाया जा सकता है। लेकिन सोच-समझकर ही उस प्रयोग में जाया जा सकता है। इस जिन्दगी की चिंताएँ ही काफी हैं, इस जिन्दगी की परेशानियाँ ही बहुत हैं। इस जिन्दगी को भुलाने के लिए आदमी शराब पीता है, सिनेमा देखता है, तास खेलता है, जुआ खेलता है। दिन भर को भूलाने के लिए रात में शराब पी लेता है। जो आदमी आज के दिन भर को याद नहीं रख सकता वह आदमी कैसे पिछले जन्मों को याद करने की हिम्मत जुटा पायगा? यह जानकर आपको हैरानी होगी कि सारे धर्मो ने शराब का इसलिए विरोध किया है कि उससे चरित्र नष्ट हो जाता है, घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, आदमी लड़ने-झगड़ने लगता है।

धर्मों ने शराब का विरोध सिर्फ इसलिए किया है कि जो आदमी शराब पीता है वह अपने को भुलाने का उपाय कर रहा है और जो आदमी अपने को भुलाने का उपाय कर रहा है वह अपनी आत्मा से कभी भी परिचित नहीं हो सकता। आत्मा से परिचित होने के लिए तो अपने को जानने का उपाय करना है। इसलिए शराब और समाधि दो विरोधी चीजें बन गईं। आमतौर से लोग समझते हैं कि शराबी आदमी बुरा होता है। मैं शराबियों को भी जानता हूँ और उनको भी जो शराब नहीं पीते हैं। मैंने आजतक हजारों अनुभव में यह पाया है कि शराब पीनेवाला न पीनेवाले से कई अर्थों में अच्छा होता है। मैंने शराब पीनेवालों में जितनी दया देखी और करुणा, उतनी मैंने गैर शराब-पीनेवालों में नहीं देखी। मैंने शराब पीनेवालों में जितनी विनम्रता देखी, उतनी मैंने शराब नहीं पीनेवालों में नहीं देखी। जितनी अकड़ मैंने देखी शराब न पीनेवालों में उतनी अकड़ शराब पीनेवालों में दिखायी नहीं पड़ी, लेकिन इन सारी बातों के कारण धर्म ने विरोध नहीं किया है विरोध किया है इसलिए कि जो आदमी अपने को भुलाने का उपाय करता है वह अपने साहस को छोड़ रहा है, याद करने के, स्मृति के। और जो आदमी इसी जन्म को भुलाने की फिक्र में

लगा है वह पिछले जन्मों को याद कैसे कर सकेगा और जो पिछले जन्मों को याद नहीं कर सकता वह इस जन्म को बदलेगा कैसे फिर एक अंधा रिपीटीशन चलता रहेगा जो हमने बार बार किया है वही हम बार बार करते चले जायेंगे। अंतहीन है यह प्रक्रिया और जब तक हमें स्मरण नहीं होगा, हम बारबार जन्मेंगे और उन्हीं बेवकूफियों को बार बार करेंगे जिन्हें हम बार-बार किया है और उसका कोई अंत नहीं। इस बोर्डम का, इस शृंखला का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि बारबार हम फिर मर जायेंगे, फिर भूल जायेंगे, फिर वही शुरू हो जायगा। एक सर्किल की तरह, कोल्हू के बैल की तरह हम घूमते रहेंगे। जिन लोगों ने इस जीवन को संसार कहा, संसार का आप मतलब समझते हैं ? संसार का मतलब व्हील, एक घूमता हुआ चाक जिसमें स्पोक जो हैं फिर ऊपर चले जाते हैं फिर नीचे, फिर ऊपर चले जाते हैं, फिर नीचे चले जाते हैं।

वह जो हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय ध्वज पर चक्र बना हुआ है वह पता नहीं हिन्दुस्तान के सोचने-समझने वालों ने किस वजह से वहाँ रख दिया। शायद उनको पता नहीं, वे न मालूम क्या सोचते होंगे। अशोक ने उस चक्र को इसीलिए खोदवाया था अपने स्तूपों पर ताकि आदमी को पता रहे कि जिन्दगी एक घूमता हुआ चाक है, कोल्हू का बैल है। उसमें हर चीज घूमकर फिर वहीं आ जाती है। वह संसार का प्रतीक है। वह किसी विजय चक्र यात्रा का प्रतीक नहीं है। वह जिन्दगी के रोज हार जाने का प्रतीक है, वह इस बात का प्रतीक है कि जिन्दगी बारबार दोहरा जानेवाला चाक है। लेकिन हर बार हम भूल जाते हैं इसलिए दोबारा फिर बड़े रसलीन होकर दोहराने लगते हैं। एक युवक एक युवती की तरफ प्रेम करने को बढ़ रहा हो, उसे पता नहीं कि वह कितनी बार बढ़ चुका है, कितनी युवतियों के पीछे दौड़ चुका है, लेकिन अब फिर बढ़ रहा है और सोचता है कि जिन्दगी में पहली दफा यह घटना घट रही है। यह अद्भुत घटना है, यह अद्भुत घटना बहुत दफे घट चुकी है और अगर उसे ही पता चल जाय तो उसकी हालत वैसी हो जायगी जैसे किसी आदमी की एक फिल्म को दस-पच्चीस दफा देख कर हो जाती है। अगर आप आज देखने गए हैं तो बात और है, कल भी आपको ले जाया जाय तो आप बरदाश्त फिल्म कर लेंगे। तीसरे दिन आप कहने लगेंगे, क्षमा कीजिए, अब मैं नहीं जाना चाहता हूँ। लेकिन आपको मजबूर किया जाय या कोई पुलिसवाले पीछे लगे

हैं वे आपको ले ही जायेंगे और १५ दिन वही फिल्म, दिखलावें तो सोलहवें दिन आप भागते की कोशिश करेंगे कि अब इस फिल्म को मैं नहीं देखना चाहता हूँ। यह हद हो गई। १५ दिन देख चुका हूँ और अब कबतक देखता रहूँगा। लेकिन वह पुलिस वाला पीछे लगना चाहता है कि नहीं, यह तो देखनी ही पड़ेगी। लेकिन अगर रोज फिल्म देखने के बाद अफीम खिला दी जाय और आप भूल जायँ कि मैंने यह फिल्म देखी थी तो दूसरे दिन फिर आप टिकट लेकर उसी फिल्म में मौजूद हो सकते हैं और बड़े मजे से देख सकते हैं।

आदमी हर बार जब शरीर को बदलता है तब उस शरीर में संजोई गई स्मृतियों का द्वार बन्द हो जाता है, फिर नया खेल शुरू हो जाता है, फिर वही खेल, फिर वही बात। फिर सब वही जो बहुत हो चुका है। जाति-स्मरण से यह स्मरण आता है कि यह तो बहुत बार हो चुका है, यह कहानी तो बहुत बार देखी जा चुकी है, यह गीत तो बहुत बार गाये जा चुके हैं, यह तो बरदाश्त के बाहर हो गई है बात। जाति-स्मरण से पैदा होती है विरक्ति, जाति-स्मरण से पैदा होता है वैराग्य, और किसी तरह वैराग्य उत्पन्न नहीं होता। वैराग्य उत्पन्न होता है जाति-स्मरण से, वह जो बीत गए जन्म हैं उनकी स्मृति से। इसलिए दुनियाँ में वैराग्य कम हो गया है क्योंकि पिछले जन्मों का कोई स्मरण नहीं, कोई उपाय नहीं। मेरी तैयारी पूरी है, मैं जो भी कह रहा हूँ उसे सिर्फ इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि मेरे लिए वह कोई सिद्धांत है। मैं जो भी कह रहा हूँ एक-एक शब्द पर जिद्द के साथ प्रयोग करने की मेरी तैयारी है, और किसी आदमी की तैयारी हो तो मुझे बहुत खुशी होगी। मैंने आमंत्रण दिया था कि जो लोग संकल्प करने की हिम्मत रखते हैं, वे आगे बढ़ें। दो चार मित्रों के पत्र आए और मुझे बहुत खुशी हुई। उन्होंने खबर दी है कि हम बहुत उत्सुक हैं और हम प्रतीक्षा में थे कि कोई हमें बुलाए और आपने पुकार दी है तो हम राजी हैं। वे राजी हैं तो मुझे बहुत खुशी है और मेरा द्वार उनके लिए खुला है। मैं उन्हें जितनी दूर ले चलना चाहूँ या वे जितनी दूर चलना चाहें उतनी दूर उन्हें ले जाया जा सकता है। अगर थोड़े लोग भी प्रबुद्ध हो सकें तो हम मनुष्य जाति के सारे के सारे अंधकार को तोड़ सकते हैं।

हिन्दुस्तान में दो विपरीत ढंग के प्रयोग पचास सालों में चले। एक प्रयोग गांधी ने किया, एक प्रयोग श्री अरविन्द ने गांधी ने एक-एक मनुष्य के चरित्र

को ऊपर उठाने का प्रयोग किया। उसमें गाँधी सफल होते हुए दिखायी पड़े लेकिन बिलकुल असफल हो गए जिन लोगों को गाँधी ने सोचा था कि इनका चरित्र मैंने उठा लिया वे बिलकुल मिट्टी के पुतले साबित हुए। जरा पानी गिरा और सब-रंग रोगन बह गया। बीस साल में रंग-रोगन बह गया वह हम सब देख रहे हैं। कहीं कोई रंग-रोगन नहीं है। वहजो गाँधी ने पोतपात कर तैयार किया था वह वर्षा में बह गया। जब तक पद की वर्षा नहीं हुई थी तबतक उनकी शकलें बहुत शानदार मालूम पड़ती थीं और उनके खादी के कपड़े बहुत धुले हुए दिखायी पड़ते थे और उनकी टोपियाँ ऐसी लगती थीं कि मुल्क को ऊपर उठा लेंगी, लेकिन आज वे ही टोपियाँ मुल्क के भ्रष्टाचार की प्रतीक बन गई हैं। गाँधी ने एक प्रयोग किया था जिसमें मालूम हुआ कि वे सफल हो रहे हैं लेकिन बिलकुल असफल हो गए। गाँधी–जैसा प्रयोग बहुत बार किया गया और हर बार असफल हो गया। श्री अरविन्द एक प्रयोग करते थे जिसमें वे सफल होते हुए नहीं मालूम पड़े, लेकिन उनकी दिशा बिलकुल ठीक थी। वे यह प्रयोग कर रहे थे कि क्या यह संभव है कि थोड़ी-सी आत्माएँ इतने ऊपर उठ जायँ कि उनकी मौजूदगी, दूसरी आत्माओं को ऊपर उठाने लगे और पुकारने लगे और दूसरी आत्माएँ ऊपर उठने लगें। क्या यह संभव है कि एक मनुष्य की आत्मा ऊपर उठे और उसके साथ आत्माओं का स्तर ऊपर उठ जाय। यह न केवल संभव है, बल्कि केवल यही संभव है। दूसरी आज कोई बात सफल नहीं हो सकती। आज आदमी तो इतने नीचे गिर चुका है कि अगर हमने यह फिक्र की कि हम एक-एक आदमी को बदलेंगे तो शायद यह बदलाहट कभी नहीं होगी बल्कि जो आदमी उनको बदलने जायगा उनके सत्संग में उसके खुद के बदल जाने की संभावना ज्यादा है। उसके बदले जाने की संभावना है कि वह भी उनके साथ भ्रष्ट हो जायगा। आप देखते हैं जितने जनता के सेवक, जनता की सेवा करने जाते हैं थोड़े दिन में पता चलता है कि वे जनता की जेब काटनेवाले सिद्ध होते हैं। वे गए थे सेवा करने, वे गए थे लोगों को सुधारने, थोड़े दिन में पता चलता है कि लोग उनको सुधारने का विचार करते हैं। मनुष्य जाति की चेतना का इतिहास यह कहता है कि दुनिया की चेतना किन्हीं कालों में एकदम ऊपर उठ गई, थी आपको शायद इसका अन्दाज न हो। २५०० वर्ष पहले हिन्दुस्तान में बुद्ध पैदा हुए, प्रबुद्ध कात्यायन हुआ, मावली गोसाल हुआ, संजय बिलाटीपुत्र हुआ। यूनान में सुकरात हुआ, प्लेटो हुआ,

अरस्तु हुआ, प्लटनस हुआ। चीन में लाओत्से हुआ, कंफ्यूशस हुआ, च्यांतसे हुआ। २५०० साल पहले सारी दुनियाँ में कुल दस पन्द्रह लोग इतनी कीमत के हुए कि उन एक सौ वर्षों में दुनियाँ की चेतना एकदम आकाश छूने लगी। सारी दुनियाँ का स्वर्ण युग आ गया ऐसा मालूम हुआ। इतनी प्रखर आत्मा मनुष्य की कभी प्रकट नहीं हुई थी। महावीर के साथ पचास हजार लोग गाँव-गाँव घूमने लगे। बुद्ध के साथ हजार भिक्षु खड़े हो गए और उनकी रोशनी और ज्योति गाँव-गाँव को जगाने लगी। जिस गाँव में बुद्ध अपने दस हजार भिक्षुओं को लेकर पहुँच जाते, तीन दिन के भीतर उस गाँव की हवा के अणु बदल जाते। जिस गाँव में वे दस हजार भिक्षु बैठ जाते, जिस गाँव में वे दस हजार भिक्षु प्रार्थना करने लगते उस गाँव से जैसे अंधकार मिट जाता, जैसे उस गाँव में रोशनी छा जाती, जैसे उस गाँव के हृदय में कुछ फूल खिलने लगते जो कभी नहीं खिले थे। कुछ थोड़े-से लोग उठे ऊपर और उनके साथ ही नीचे के लोगों की आँखें ऊपर उठीं। नीचे के लोगों की आखें तभी ऊपर उठती हैं जब ऊपर देखने जैसा कुछ हो। ऊपर देखने जैसा कुछ भी नहीं है, नीचे देखने—जैसा बहुत कुछ है। जो आदमी जितना नीचे उतर जाता है उतनी बड़ी तिजोरी बना लेता है। जो आदमी जितना नीचे उतर जाता है वह उतनी कीमती जवाहर खरीद लाता है। नीचे देखने–जैसा बहुत कुछ है। दिल्ली बिलकुल गड्ढे में बस गई है, बिलकुल नीचे। वहाँ नीचे देखो, पाताल में दिल्ली है। तो जिसको भी दिल्ली पहुँचना हो उसको पाताल में उतरना चाहिए, नीचे-नीचे उतरते जाना चाहिए। ऊपर देखने–जैसा कुछ भी नहीं है। किसकी तरफ देखेंगे, कौन है ऊपर? इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है कि ऊपर देखने–जैसी आत्माएँ नहीं हैं जिनकी तरफ देखकर प्राणों में आकर्षण उठे, जिनकी तरफ देखकर प्राणों में पुकार हो, जिनकी तरफ देखकर प्राण धिक्कारने लगे, अपने को कि यह प्रकाश तो मैं भी हो सकता था, ये फूल तो मेरे भीतर भी खिल सकते थे, यह गीत तो मैं भी गा सकता था। यह बुद्ध, और यह महावीर और यह कृष्ण और यह क्राइस्ट मैं भी हो सकता था। एक बार यह खयाल आ जाय कि मैं भी हो सकता था। यहाँ लेकिन कोई हो जिसे देखकर यह खयाल आ जाय तो प्राण ऊपर की यात्रा शुरू कर देते हैं। स्मरण रहे प्राण हमेशा यात्रा करते हैं, अगर ऊपर कीन हीं करते हैं तो नीचे की करते हैं। प्राण रुकते कभी नहीं हैं या तो ऊपर जायँगे या नीचे, रुकना जैसी कोई चीज नहीं है।

को ऊपर उठाने का प्रयोग किया। उसमें गाँधी सफल होते हुए दिखायी पड़े लेकिन बिलकुल असफल हो गए जिन लोगों को गाँधी ने सोचा था कि इनका चरित्र मैंने उठा लिया वे बिलकुल मिट्टी के पुतले साबित हुए। जरा पानी गिरा और सब-रंग रोगन बह गया। बीस साल में रंग-रोगन बह गया वह हम सब देख रहे हैं। कहीं कोई रंग-रोगन नहीं है। वहजो गाँधी ने पोतपात कर तैयार किया था वह वर्षा में बह गया। जब तक पद की वर्षा नहीं हुई थी तबतक उनकी शकलें बहुत शानदार मालूम पड़ती थीं और उनके खादी के कपड़े बहुत धुले हुए दिखायी पड़ते थे और उनकी टोपियाँ ऐसी लगती थीं कि मुल्क को ऊपर उठा लेंगी, लेकिन आज वे ही टोपियाँ मुल्क के भ्रष्टाचार की प्रतीक बन गई हैं। गाँधी ने एक प्रयोग किया था जिसमें मालूम हुआ कि वे सफल हो रहे हैं लेकिन बिलकुल असफल हो गए। गाँधी-जैसा प्रयोग बहुत बार किया गया और हर बार असफल हो गया। श्री अरविन्द एक प्रयोग करते थे जिसमें वे सफल होते हुए नहीं मालूम पड़े, लेकिन उनकी दिशा बिलकुल ठीक थी। वे यह प्रयोग कर रहे थे कि क्या यह संभव है कि थोड़ी-सी आत्माएँ इतने ऊपर उठ जायँ कि उनकी मौजूदगी, दूसरी आत्माओं को ऊपर उठाने लगे और पुकारने लगे और दूसरी आत्माएँ ऊपर उठने लगें। क्या यह संभव है कि एक मनुष्य की आत्मा ऊपर उठे और उसके साथ आत्माओं का स्तर ऊपर उठ जाय। यह न केवल संभव है, बल्कि केवल यही संभव है। दूसरी आज कोई बात सफल नहीं हो सकती। आज आदमी तो इतने नीचे गिर चुका है कि अगर हमने यह फिक्र की कि हम एक-एक आदमी को बदलेंगे तो शायद यह बदलाहट कभी नहीं होगी बल्कि जो आदमी उनको बदलने जायगा उनके सत्संग में उसके खुद के बदल जाने की संभावना ज्यादा है। उसके बदले जाने की संभावना है कि वह भी उनके साथ भ्रष्ट हो जायगा। आप देखते हैं जितने जनता के सेवक, जनता की सेवा करने जाते हैं थोड़े दिन में पता चलता है कि वे जनता की जेब काटनेवाले सिद्ध होते हैं। वे गए थे सेवा करने, वे गए थे लोगों को सुधारने, थोड़े दिन में पता चलता है कि लोग उनको सुधारने का विचार करते हैं। मनुष्य जाति की चेतना का इतिहास यह कहता है कि दुनिया की चेतना किन्हीं कालों में एकदम ऊपर उठ गई, थी आपको शायद इसका अन्दाज न हो। २५०० वर्ष पहले हिन्दुस्तान में बुद्ध पैदा हुए, प्रबुद्ध कात्यायन हुआ, माक्ली गोसाल हुआ, संजय बिलाटीपुत्र हुआ। यूनान में सुकरात हुआ, प्लेटो हुआ,

अरस्तु हुआ, प्लटनस हुआ। चीन में लाओत्से हुआ, कंफ्यूशस हुआ, च्यांतसे हुआ। २५०० साल पहले सारी दुनियाँ में कुल दस पन्द्रह लोग इतनी कीमत के हुए कि उन एक सौ वर्षों में दुनियाँ की चेतना एकदम आकाश छूने लगी। सारी दुनियाँ का स्वर्ण युग आ गया ऐसा मालूम हुआ। इतनी प्रखर आत्मा मनुष्य की कभी प्रकट नहीं हुई थी। महावीर के साथ पचास हजार लोग गाँव-गाँव घूमने लगे। बुद्ध के साथ हजार भिक्षु खड़े हो गए और उनकी रोशनी और ज्योति गाँव-गाँव को जगाने लगी। जिस गाँव में वुद्ध अपने दस हजार भिक्षुओं को लेकर पहुँच जाते, तीन दिन के भीतर उस गाँव की हवा के अणु बदल जाते। जिस गाँव में वे दस हजार भिक्षु बैठ जाते, जिस गाँव में वे दस हजार भिक्षु प्रार्थना करने लगते उस गाँव से जैसे अंधकार मिट जाता, जैसे उस गाँव में रोशनी छा जाती, जैसे उस गाँव के हृदय में कुछ फूल खिलने लगते जो कभी नहीं खिले थे। कुछ थोड़े-से लोग उठे ऊपर और उनके साथ ही नीचे के लोगों की आँखें ऊपर उठीं। नीचे के लोगों की आखें तभी ऊपर उठती हैं जब ऊपर देखने जैसा कुछ हो। ऊपर देखने जैसा कुछ भी नहीं है, नीचे देखने-जैसा बहुत कुछ है। जो आदमी जितना नीचे उतर जाता है उतनी बड़ी तिजोरी बना लेता है। जो आदमी जितना नीचे उतर जाता है वह उतनी कीमती जवाहर खरीद लाता है। नीचे देखने-जैसा बहुत [कुछ है। दिल्ली बिलकुल गड्ढे में बस गई है, बिलकुल नीचे। वहाँ नीचे देखो, पाताल में दिल्ली है। तो जिसको भी दिल्ली पहुँचना हो उसको पाताल में उतरना चाहिए, नीचे-नीचे उतरते जाना चाहिए। ऊपर देखने-जैसा कुछ भी नहीं है। किसकी तरफ देखेंगे, कौन है ऊपर? इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है कि ऊपर देखने-जैसी आत्माएँ नहीं हैं जिनकी तरफ देखकर प्राणों में आकर्षण उठे, जिनकी तरफ देखकर प्राणों में पुकार हो, जिनकी तरफ देखकर प्राण धिक्कारने लगे, अपने को कि यह प्रकाश तो मैं भी हो सकता था, ये फूल तो मेरे भीतर भी खिल सकते थे, यह गीत तो मैं भी गा सकता था। यह बुद्ध, और यह महावीर और यह कृष्ण और यह क्राइस्ट मैं भी हो सकता था। एक बार यह खयाल आ जाय कि मैं भी हो सकता था। यहाँ लेकिन कोई हो जिसे देखकर यह खयाल आ जाय तो प्राण ऊपर की यात्रा शुरू कर देते हैं। स्मरण रहे प्राण हमेशा यात्रा करते हैं, अगर ऊपर कीन हीं करते हैं तो नीचे की करते हैं। प्राण रुकते कभी नहीं हैं या तो ऊपर जायँगे या नीचे, रुकना जैसी कोई चीज नहीं है।

जहाँ भी मुझे कोई आँखें मिल जायँगी लगेगा कि ये प्रकाश बन सकती हैं, इनमें ज्योति जल सकती है तो मैं अपना पूरा श्रम करने को तैयार हूँ। मेरी तरफ से पूरी तैयारी है। देखना है कि मरते वक्त मैं भी यह न कहूँ कि सौ आदमियों को खोजता था, वे मुझे नहीं मिले।

ज्ञान-गंगा

प्रेम से बड़ी इस जगत में दूसरी कोई अनुभूति नहीं है। प्रेम की परिपूर्णता में ही व्यक्ति विश्वसत्ता से सम्बन्धित होता है। प्रेम की अग्नि में ही स्व और पर के भेद भस्म हो जाते हैं और उसकी अनुभूति उपलब्ध होती है, जो कि स्व और पर के अतीत है। धर्म की भाषा में इस सत्य की अनुभूति का नाम ही परमात्मा है। विचारपूर्वक देखने पर विश्व की समस्त सत्ता एक ही प्रतीत होती है। उसमें कोई खंड दिखाई नहीं पड़ते हैं। भेद और भिन्नता के होते हुए भी सत्ता अखंड है। जितनी वस्तुएँ हमें दिखाई पड़ती हैं और जितने व्यक्ति वे कोई भी स्वतंत्र नहीं हैं। सबकी सत्ता परस्पर आश्रित है। एक के अभाव में दूसरे का भी अभाव हो जाता है। स्वतंत्र सत्ता तो मात्र समग्र विश्व की है। यह सत्य विस्मरण हो जाय तो मनुष्य में अहम् का उदय होता है। वह स्वयं

को शेष सबसे प्रथक् और स्वतंत्र होने की भूल कर बैठता है, जबकि उसका होना किसी भी दृष्टि और विचार से स्वतंत्र नहीं है। मनुष्य की देह प्रति क्षण पंच भूतों से निर्मित होती रहती है, उनमें से किसी का सहयोग एक पल को भी छूट जाय तो जीवन का अन्त हो जाता है। यह प्रत्येक को दृश्य है। जो अदृश्य है वह इसी भाँति सत्य है। चेतना के अदृश्य द्वारों से परमात्मा का सहयोग एक क्षण को भी विलीन हो जाय तो भी मनुष्य विसर्जित हो जाता है। मनुष्य की यह स्वतंत्र-सी भासती सत्ता विश्व की समग्र सत्ता से अखंड और एक है। इसीलिए अहंकार मूल पाप है। यह समझना कि "मैं हूँ", इससे बड़ी और कोई नासमझी नहीं है। इस "मैं" को जो जितना प्रगाढ़ कर लेता है, वह उतना ही परमात्मा से दूर हो जाता है। यह दूरी भी वास्तविक नहीं होती, इसलिए इसे किसी क्षण नष्ट भी किया जा सकता है। यह दूरी वैसी ही काल्पनिक और मानसिक होती है, जैसे कि स्वप्न में हम जहाँ वस्तुतः होते हैं, वहाँ से बहुत दूर निकल जाते हैं। और फिर स्वप्न के टूटते ही दूरी ऐसे विलीन हो जाती है जैसे रही ही न हो। वस्तुतः परमात्मा से दूर होना असंभव है, क्योंकि वह हमारी आधारभूत सत्ता है लेकिन विचार में हम उससे दूर हो सकते हैं। विचार स्वप्न का ही एक प्रकार है। जो जितने ज्यादा विचारों में है वह उतने ज्यादा स्वप्न में है। और जो जितने अधिक स्वप्न में होता है, वह उतना ही अहम्–केन्द्रित हो जाता है। प्रगाढ़ स्वप्नशून्य निद्रा में चूँकि कोई विचार नहीं रह जाते इसलिए अहम् बोध भी नहीं रह जाता। सत्ता तो तब भी होती है किन्तु विश्वसत्ता से एक होती है। "मैं" का भाव उसे तोड़ता और खंडित नहीं करता। लेकिन यह मिलन प्राकृतिक है और इससे विश्राम तो मिलता है, परन्तु परम विश्राम नहीं। परमात्मा के सान्निध्य में पहुँच जाना ही विश्राम है। और "मैं" के सान्निव्य में आ जाना ही विकलता एवं तनाव है। "मैं" यदि पूर्ण शून्य हो जाय तो परम विश्राम उपलब्ध हो जाता है। परम विश्राम का ही नाम मोक्ष है। सुषुप्ति में एक प्राकृतिक आवश्यकता के निमित्त अहंकार-भाव से अल्पकाल के लिए मुक्ति मिलती है। जीवन के लिए यह अपरिहार्य आवश्यकता है, क्योंकि किसी भी दशा की अशांत, उत्तेजनापूर्ण स्थिति को बहुत देर तक नहीं रखा जा सकता। यही इस बात का प्रमाण है कि जो दशा सदा न रह सके वह स्वाभाविक नहीं है। वह आती है और जाती है। जो स्वभाव है वह सदा बना रहता है। वह आता और जाता नहीं। अधिक

से अधिक वह आवृत्त हो सकता है। अर्थात् जब हम अहं भाव से भरे होते हैं तब हमारा ब्रह्म भाव नष्ट नहीं हो जाता है, अपितु मात्र ढक जाता है। जैसे ही "मैं" का तनाव और अशांति सीमा को लाँघ जाता है वैसे ही उस ब्रह्म भाव में पुनः अनिवार्य रूपेण हमें विश्रांति लेनी होती है। यह विश्रांति बलात् और अनिवार्य है। इसे हम स्वेच्छा से नहीं लेते हैं। यदि हम स्वेच्छा से "मैं" भाव से विश्रांति ले सकें तो अभूतपूर्व क्रांति घटित हो जाती है। "मैं" भाव से स्वेच्छा से विश्रांति लेने का सूत्र प्रेम है। क्योंकि प्रेम की दशा अकेली दशा है जब हमारी सत्ता तो होती है, किन्तु उस सत्ता पर "मैं" भाव आरोपित नहीं होता। सुषुप्ति बलात् विश्राम है, प्रेम स्वेच्छित। इसीलिए प्रेम समाधि बन जाता है।

प्रेम क्या है? प्रेम उस भाव-दशा का नाम है, जब विश्व-सत्ता से पृथकत्व का भाव तिरोहित हो जाता है। समग्र की सत्ता में स्वयं की सत्ता का मिलन ही प्रेम है। यह सत्य भी है, क्योंकि वस्तुतः सत्ता एक है और जो भी है उसमें है। यह प्रेम प्रत्येक में सहज ही स्फूर्त होता है, लेकिन अज्ञान के कारण हम उसे राग में परिणत कर लेते हैं। प्रेम की स्फुर्णा को अहंकार पकड़ लेता है और वह स्वयं और समग्र की सत्ता के बीच सम्मिलन न होकर दो व्यक्तियों के बीच सीमित संबंध हो जाता है। असीम होकर जो प्रेम है सीमित होकर वही राग है। राग बंधन बन जाता है, जबकि प्रेम मुक्ति है। असल में जहाँ सीमा है वहीं बंधन है। राग का बुरा होना उसमें निहित प्रेम के कारण नहीं वरन् उस पर आरोपित सीमा के कारण है। राग असीम हो जाय तो वह प्रेम बन जाता है, विराग हो जाता है। ध्यान रखने की बात यही है कि प्रेम तो हो परन्तु उसमें कोई सीमा न हो। जहाँ सीमा आने लगे वहीं सचेत हो जाना आवश्यक है। वही सीमा संसार है। इस भाँति क्रमशः सीमाओं को तोड़ते हुए प्रेम की ऊर्जा का विस्तार ही साधना है। जिस घड़ी उस जगह पहुँचना हो जाता है जहाँ सीमा नहीं है, तो जानना चाहिए कि परमात्मा पर पहुँचना हो गया। इसके विपरीत यदि प्रेम सीमित होता चला जाय और अंततः अहम् अणु पर ही केंद्रित हो जाय तो जानना चाहिए कि परमात्मा से जितनी ज्यादा पृथकता हो सकती है वह हो चुकी है। यह अवस्था राग की चरम अवस्था है, जो कि अत्यन्त दुख, परतंत्रता और संताप को उत्पन्न करती है, इसके विपरीत प्रेम के

असीम होने की चित्त दशा है जो जीवन को अनन्त आलोक और आनंद से परिपूरित कर देती है।

महर्षि रमण से किसी ने पूछा कि सत्य को जानने के लिए मैं क्या सीखूं? श्री रमण ने कहा जो जानते हो उसे भूल जाओ। यह उत्तर बहुत अर्थपूर्ण है। मनुष्य का मन बाहर से संस्कार और शिक्षाएँ लेकर एक कारागृह बन जाता है। बाह्य प्रभावों की धूल में दबकर उसकी स्वयं की दर्पण-जैसी निर्मलता ढक जाती है। जैसे किसी झील पर काई आवृत्त हो जाय और सूर्य या चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब उसमें न बन सके ऐसे ही मन भी बाहर के सीखे गए ज्ञान से इतना आवृत्त हो जाता है कि सत्य का प्रतिफलन उसमें नहीं हो पाता। ऐसे मन के द्वार और झरोखे बन्द हो जाते हैं। वह अपनी ही क्षुद्रता में सीमित हो जाता है, और विराट के संपर्क से वंचित। इस भाँति बन्द मन ही बंधन है। सत्य के सागर में जिन्हें संचरण करना है, उन्हें मन को सीखे हुए किसी भी खूंटे से बाँधने का कोई उपाय नहीं है। तट से बँधे होना और साथ ही सागर में प्रवेश कैसे संभव है? एक पुरानी कथा है—एक संन्यासी सूर्य निकलने के पूर्व ही नदी में स्नान करने उतरा, अभी अंधियारा था और भोर के अंतिम तारे डूबते थे। एक व्यक्ति नाव पर बैठकर पतवार चलाता था, किन्तु नाव आगे नहीं बढ़ती थी। अँधेरे के कारण उसे वह साँकल नहीं दिखती थी जिससे नाव बँधी हुई थी। उसने चिल्ला कर संन्यासी से पूछा कि स्वामीजी, इस नाव को क्या हो गया है। उस संन्यासी ने कहा, मित्र पहले खूंटे से बँधी उसकी साँकल को तो खोलो। मनुष्य जो भी बाहर से सीख लेता है वह सीखा हुआ ज्ञान ही खूंटों की भाँति उसके चित्त की नाव को अपने से बाँध लेता है और आत्मा के सागर में उसका प्रवेश संभव नहीं हो पाता और यह बन्धन उसे सरलता से दिखाई भी नहीं पड़ता। जिसे परमात्मा के ज्ञान को पाना हो उसे बाहर से सीखे गए अपने ज्ञान को छोड़ देना होगा। इस अवस्था को दिव्य अज्ञान (Divine Ignorance) कह सकते हैं। इसे साध लेने से बड़ी और कोई साधना नहीं है। कुछ भी जानने का भाव अहंकार को पुष्ट करता है। इसीलिए उपनिषद् के ऋषियों ने कहा है कि जो कहे कि मैं जानता हूँ तो जानना कि, वह नहीं जानता। जो जानते हैं उनका तो "मैं" खो जाता है। बाहर से आया हुआ ज्ञान "मैं" को भरता है; भीतर से जगा हुआ ज्ञान उसे बहा ले जाता है। ज्ञान को पाने की विधि है कि सब ज्ञान को छोड़ दो।

"मैं" को शून्य होने दो और चित्त को मौन। उस मौन और शून्यता में ही उसके दर्शन होते हैं जो कि सत्य है।

ज्ञान नहीं विचार सीखे जा सकते है। विचारों के संग्रह से ही ज्ञान का भ्रम पैदा हो जाता है। विचार कम हो सकते हैं; विचार ज्यादा भी हो सकते हैं। ज्ञान न तो कम होता है और न ज्यादा होता है। या तो ज्ञान होता है या अज्ञान होता है। यह भी स्मरण रहे कि विचार अज्ञान का अंग है। केवल अज्ञानी ही विचार करता है। ज्ञानी विचारता नहीं, देखता है। जिसके आँख हैं उसे दिखाई पड़ता है। वह सोचता नहीं कि द्वार कहाँ है, वह तो द्वार को देखता है। जिसके पास आँख नहीं, वह सोचता है और टटोलता है, विचार टटोलना मात्र है। वह आँख का नहीं अन्धे होने का प्रमाण है। बुद्ध, महावीर या ईसा विचारक नहीं हैं। हमने सदा ही उन्हें दृष्टा कहा है। वे जो भी जानते हैं वह उनके चिन्तन का परिणाम नहीं, उनके दर्शन की प्रतीति है। वे जो भी करते हैं वह भी विचार का फल नहीं, उनकी अन्तर्दृष्टि की सहज निष्पत्ति है। इस सत्य को समझना बहुत आवश्यक है। विचारों का संग्रह कहीं भी नहीं ले जाता। सभी प्रकार के संग्रह दरिद्रता को मिटाते नहीं, दबाते हैं। इसीलिए जो सर्वाधिक दरिद्र होते हैं संग्रह की इच्छा भी उनकी सर्वाधिक होती है। डायोजनीज ने सिकन्दर को कहा था, "मैं इतना समृद्ध हूँ कि मैं कुछ भी संग्रह नहीं करता। और तेरी दरिद्रता का अन्त नहीं, क्योंकि इस पूरी पृथ्वी के साम्राज्य को पा लेने पर भी तुम संग्रह करोगे, इसीलिए जब सम्राटों को संग्रह में छिपी दरिद्रता के दर्शन हुए हैं तो उन्होंने दरिद्रता में छिपे साम्राज्य को स्वीकार कर लिया है।" क्या मनुष्य का इतिहास ऐसे भिखारियों से परिचित नहीं जिनसे सम्राट् बड़े कभी नहीं होते। जो धन-संग्रह के संबंध में सत्य है वही सभी प्रकार के संग्रहों के लिए भी सत्य है। विचार-संग्रह भी उसका अपवाद नहीं। बाह्य संपत्ति के संग्रह से जो धनी है वह यदि दरिद्र है तो शास्त्रों के शब्दों से जो ज्ञानी है वह भी अज्ञानी ही है। शास्त्र से नहीं जब स्वयं से, और शब्द से नहीं जब अन्तस् से आलोक मिलता है तभी ज्ञान का अविर्भाव होता है।

ज्ञान का जन्म ध्यान से होता है और ध्यान का अर्थ है विचार छोड़कर चेतना में प्रतिष्ठित हो जाना। विचारों के प्रवाह का नाम मन है। जो इन विचारों के प्रवाह को देखता है उसका नाम चेतना है। विचार विषय है

चेतना विषयी। विचार दृश्य है चेतना दृष्टा। विचार जाने जाते हैं, चेतना जानती है। विचार बाहर से आते हैं, चेतना भीतर है। विचार पर है, चेतना स्व है। विचारों को छोड़ना है और चेतना में ठहरना है। सब धर्मों की साधना का सार यही है। विचार-प्रवाह के सम्यक्-निरीक्षण से तथा तटस्थ साक्षीभाव से मात्र उन्हें देखने से वे क्रमशः क्षीण हो जाते हैं। जैसे कोई बिल्ली चूहे को पकड़ती हो तो पकड़ने के पूर्व उसकी तैयारी पर ध्यान दें, कितनी सजग और कितनी शान्त, कितनी शिथिल और कितनी तैयार! ऐसे ही स्वयं के भीतर विचार को पकड़ने के लिए होना पड़ता है। जैसे ही कोई विचार उठे, बिल्ली की भाँति झपटें और उसे पकड़ लें, उसे उलटें-पलटें और उसका निरीक्षण करें। किन्तु उसे सोचें नहीं, मात्र देखें। और तब पाया जाता है कि वह देखते-देखते ही वाष्पीभूत हो गया है। हाथ खाली और विचार विलीन हो जाता है। फिर शान्त और सजग रहें। दूसरा विचार आयगा, उसके साथ भी यही करना है। तीसरा आयगा, उसके साथ भी यही। यह ध्यान का अभ्यास है। जैसे-जैसे अभ्यास गहरा होता है, वैसे-वैसे बिल्ली बैठी रह जाती हैं और चूहे विलीन हो जाते हैं। चूहे जैसे बिल्ली से डरते हैं, विचार वैसे ही ध्यान से डरते हैं। बिल्ली जैसे चूहों की मृत्यु है, ध्यान वैसे ही विचारों की मृत्यु है।

विचार की मृत्यु पर सत्य का दर्शन होता है। तब मात्र वही शेष रह जाता है जो "है"। वह सत्य है। वही परमात्मा है। उसे जानने में ही मुक्ति है और दुःख एवं अंधकार का अतिक्रमण है।

मनुष्य के व्यक्तित्व में सबसे बड़ा अन्तर्द्वन्द्व उस मान्यता से पैदा होता है कि उसका शरीर और उसकी आत्मा विरोधी सत्य हैं। यह स्वीकृति आधारभूत रूप से मनुष्य को विभाजित कर देती है। फिर स्वभावतः इन दोनों विभाजित खेमों में संघर्ष और कलह का प्रारम्भ हो जाता है। यह फिर न केवल मनुष्य के व्यक्तित्व में वरन् समाज के व्यक्तित्व में प्रतिफलित होता है। इसी के आधार पर अब तक की सारी संस्कृतियाँ खंड संस्कृतियाँ हैं। अखंड और समग्र जीवन को समाविष्ट करनेवाली संस्कृति का अभी जन्म नहीं हुआ है। जब तक शरीर और आत्मा, पदार्थ और परमात्मा, संसार और मोक्ष के बीच विरोध की जगह सामंजस्य और समस्वरता स्थापित नहीं होती तब तक यह हो भी नहीं सकता। या तो ऐसी विचार-दृष्टियाँ रही हैं जो आत्मा के निषेध पर शरीर-मात्र को

ही स्वीकार करती हैं या फिर ऐसी परम्पराएँ जो शरीर के निषेध पर मात्र आत्मा की सत्ता मानती हैं। एक विचार वर्ग परमात्मा को असत्य मानता है और दूसरा संसार को माया और भ्रम। ये दोनों ही पूर्ण मनुष्य को स्वीकार करने से भय खाते हैं। वे उसी अंश को स्वीकार करते हैं जिसे पूर्व से स्वीकार करने की उन्होंने धारणा बना रखी है। जैसे कोई वस्त्र पहले बना ले और फिर मनुष्य को काट-छाँट कर वस्त्र पहनाने की चेष्टा करे ऐसी ही उनकी चेष्टा है। धारणाएँ पहले तय कर ली जाती हैं और फिर बाद में उन्हें मनुष्य को पहना दिया जाता है जबकि विवेकपूर्ण यही होगा कि हम पहले मनुष्य को उसकी समग्रता में विचार करें और फिर कोई जीवन-दर्शन बनाएँ। विचार-संख्या या विचार-धाराएँ महत्त्वपूर्ण नहीं—महत्त्वपूर्ण मनुष्य की यथार्थता है। धार्मिक और भौतिकवादी दोनों ही पूर्व पक्षों को छोड़कर यदि मनुष्य को देखा जाय तो न तो वह मात्र शरीर ही है और न मात्र आत्मा ही। वह तो अद्वय इकाई है। शरीर और आत्मा हमारे विचार के विभाजन हैं। मनुष्य तो अखंड है। वस्तुत: शरीर और आत्मा का जहाँ मिलन है वहीं मनुष्य की उत्पत्ति है। वे आत्माएँ जो किसी अशरीरी मोक्ष में हों उन्हें हम मनुष्य नहीं कह सकते और न ही उन देहों को जो आत्मरहित हैं। मनुष्य आत्मा और शरीर का संगम है। इसलिए उसके सम्बन्ध में किसी भी पक्ष को दूसरे के निषेध पर स्वीकार कर लेना घातक ही सिद्ध होता है और ऐसी स्वीकृति से बनी हुई संस्कृति अधूरी, पंगु एवं एकांगी है। या तो सामान्य दैहिक वासनाओं का जीवन ही उसके लिए इति श्री हो जाती है या काम ही फिर उसके लिए केन्द्र हो जाता है। फिर उसके लिए और किसी चीज की सत्ता नहीं होती। स्वभावत: ऐसी दृष्टि शान्ति सत्य और उदात्त जीवन की ओर ऊर्ध्वगमन की सब संभावनाएँ छीन लेती है। मनुष्य एक डबरे में बन्द हो जाता है और सागर तक पहुँचने की गति, आकर्षण और अभीप्सा सभी खो जाते हैं। दूसरी ओर जो पदार्थ को अस्वीकार कर देते हैं वे भी शक्तिहीन हो जाते हैं और भूमि से उनकी जड़ें टूट जाती हैं। उनका होना न होने की भाँति हो जाता है। इस तरह के दोनों विकल्प अनुभव किए गए हैं और उनकी दोषपूर्ण स्थिति भी प्रत्यक्ष हो गई है। जिन संस्कृतियों ने जड़ को सब कुछ माना उनके पास सम्पदा आई, शक्ति आई लेकिन साथ ही अशांति और विनाश भी। तथा जिनने जड़ को कुछ भी न माना वे सम्पदाशून्य, शक्तिरिक्त, दास और दरिद्र होते देखे

गए। समय आ गया है कि इस भूल के प्रति हम सचेत हों और जड़तावादी या ब्रह्मवादी की अतियों से बचें। अति सदा वर्जित है और अनिवार्य रूपेण अति का अनुगमन असत्य में हो जाता है। सत्य सदा मध्य में है क्योंकि सत्य सदा सन्तुलन और संगति में है।

शरीर और आत्मा में किसी एक को नहीं चुनना है। पदार्थ और परमात्मा में से किसी एक के पक्ष में खड़ा नहीं होना है। क्योंकि जो जानते हैं वे विश्व-सत्ता में दो का अनुभव ही नहीं करते हैं। जो जड़ की भाँति प्रतीत हो रहा है वह भी मूलतः और अन्ततः वही है जो चैतन्य की तरह अनुभव में आता है। विश्वसत्ता एक है। उसकी अभिव्यक्तियाँ ही भिन्न हैं। जो दृश्य परमात्मा है वही संसार है और जो अदृश्य संसार है वही परमात्मा है। यदि हम जड़ सत्ता का आत्यन्तिक अनुसंधान करें तो वह अदृश्य में विलीन हो जाती है। विज्ञान ने यह किया और परमाणु के बाद वह जिन सत्ता-कणों पर पहुँचा है वे अब पदार्थ नहीं हैं, न ही वे दृश्य हैं वरन् अदृश्य ऊर्जा मात्र में परिणत हो गए हैं। ऐसे ही जिन्होंने चेतना का आत्यन्तिक अनुसंधान किया है उन्होंने पाया है कि चेतना ही दृश्य हो जाती है अर्थात् अदृश्य आत्मशक्ति का भी साक्षात्कार हो जाता है और वह साक्षात्कार इतना प्रगाढ़ होता है कि उसके समक्ष पदार्थ ही असत्तावान मालूम होने लगता है। इस सत्य को ध्यान में रखें तो ज्ञात होगा कि जो दृश्य है वह अदृश्य ही है और जो अदृश्य है वह भी दृश्य है। संसार और मोक्ष भिन्न नहीं, अभिन्न हैं। अज्ञान में जो संसार मालूम होता है ज्ञान में वही मोक्ष हो जाता है। अँधेरे में जो पदार्थ मालूम होता है आलोक में वही परमात्मा में परिणत हो जाता है। दोनों के बीच एकता है और इस एकता का अनुभव केवल वही कर पाते हैं जो दोनों के बीच अतिवादी द्वन्द्व से नहीं वरन् दोनों के मध्य संतुलन से प्रारम्भ करते हैं।

हमने अतियों में जीकर देख लिया है। वह प्रयोग किसी भी दिशा में सफल नहीं हुआ। अब अन-अति का प्रयोग करने का समय आ गया है। मनुष्य को उसकी पूर्णता को स्वीकार कर संस्कृति का निर्माण करना है।

मनुष्य स्वरूपतः शुभ है या अशुभ ? जो उसे स्वरूपतः अशुभ मान लेते हैं उनकी दृष्टि अत्यन्त निराशाजनक और भ्रान्त है। क्योंकि जो स्वरूपतः अशुभ हो उसके शुभ की संभावना समाप्त हो जाती है। स्वरूप का अर्थ ही यही है कि उसे छोड़ा नहीं जा सकता है। जो सदा अनिवार्य रूप से साथ है वही

स्वरूप है। यदि मनुष्य स्वरूप से ही अशुभ हो तब तो उसे शुभ का विचार भी नहीं उठ सकता। इसलिए हम मनुष्य को स्वरूपतः शुभ मानते हैं। अशुभ आच्छादन है। वह दुर्घटना-मात्र है। जैसे सूर्य अपने ही द्वारा पैदा की हुई बदलियों में छिप जाता है, वैसे ही मनुष्य की चेतना में जो शुभ है वह उसकी अंतर्निहित स्वतंत्रता के दुरुपयोग से आच्छादित हो जाता है। चेतना स्वरूपतः शुभ और स्वतंत्र है। स्वतंत्रता के ही कारण अशुभ भी चुना जा सकता है। तब एक क्षण को अशुभ आच्छादित कर लेता है। जिस क्षण अशुभ हो रहा है उसी क्षण वह आच्छादन रहता है। उसके बाद आच्छादन तो नहीं, मात्र-स्मृति रह जाती है। शुद्ध वर्तमान में स्मृति शून्य चेतना सदा ही शुभ में प्रतिष्ठित है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपनी शुद्ध वर्तमान सत्ता में शुभ और निर्दोष है। जो व्यक्ति सोचता है कि मुझसे पाप हुआ उसे भी समझना आवश्यक है कि पाप उसकी अतीत स्मृति है। क्योंकि जो हो गया है उसका ही सिंहावलोकन चित्त कर पाता है। जो है यदि चित्त उसके प्रति सजग और जागरूक हो तो चित्त मिट जाता है और मात्र चेतना रह जाती है। यह चेतना नित्य शुभ है। स्मृति और कामना, अतीत और भविष्य यही चेतना के बंधन हैं। इनसे जो मुक्त है वही स्वरूप में पहुँच पाता है। स्वरूप सदा निर्दोष है।

यह स्मरणीय है कि मैं स्वरूपतः शुभ हूँ। यह प्रतीत और प्रत्यय कि मैं सदा निर्दोष हूँ, शुभ और निर्दोष जीवन के लिए मुख्य आधार है। कोई यह न सोचे कि इस भाँति तो अहंता प्रगाढ़ होगी क्योंकि इस प्रत्यय में मेरी ही नहीं समस्त चेतनाओं की निर्दोषता समाविष्ट है। प्रत्येक चेतना ही अपनी निज सत्ता में शुभ है। यह बोध स्वयं तथा सर्व के लिए सद्‌भाव उत्पन्न करता है। स्वयं को पापी मानना पाप करने से ज्यादा बुरी बात है। क्योंकि जो निरन्तर यह भाव करता है कि मैं पापी हूँ वह अपने ही भाव में सम्मोहित हो जाता है। कूए ने बड़े वैज्ञानिक आधारों पर यह सुप्रतिष्ठित कर दिया है कि हम जो भाव निरंतर करते हैं क्रमशः हम वैसे ही होते जाते हैं। बुद्ध ने तो कहा ही था, विचार ही व्यक्तित्व बन जाता है। विचार और भाव में जो तरंगें उठती हैं वे ही धीरे-धीरे हमारा व्यवहार बन जाती हैं। जो स्वयं के पाप, पतित, और अपराधी होने के भाव करता रहता है वह उन्हीं में जकड़ जाता है। फिर जो स्वयं को पापी समझता है वह शेष लोगों को भी पापी समझता है। उसके सोचने के मापदंड वे ही हो जाते हैं।

यदि पाप एक सत्य दिखाई पड़ने लगे तो क्रमशः परमात्मा एक असत्य दिखाई पड़ने लगता है। पाप से ऊपर उठने की संभावना ही परमात्मा के होने का प्रमाण है। उस संभावना से ही जीवन के अन्धकार में आलोक की किरण फूटती है।

यह भी स्मरणीय है कि पाप के ऊपर हम तभी उठ सकते हैं कि हमारे भीतर निरन्तर ही पाप के ऊपर कुछ हो। अर्थात् यदि हमारी चेतना में पाप से अस्पर्शित कुछ भी नहीं है तो फिर पाप के बाहर जाने का कुछ उपाय ही नहीं रह जाता। फिर तो पाप के ऊपर जाना वैसे ही असम्भव है जैसे स्वयं के जूते के बन्धों को पकड़कर स्वयं को उठाने का प्रयास। और यदि चेतना सर्वांशतः पाप हो जाय तो उसे पाप का बोध भी नहीं रह जायगा। जिसे पाप का बोध होता है वह निरंतर पाप के बाहर है। वह बोध ही हमारी शक्ति, सुरक्षा और परमात्मा तक पहुँचने का आश्वासन है। पाप आते हैं और चले जाते हैं। पुण्य भी आते हैं और चले जाते हैं। पाप भी कम हैं पुण्य भी कम हैं। किन्तु जिस पर वे आते हैं वह निरन्तर ही बना रहता है। वह यदि पाप से ग्रसित हो जाय तो फिर पुण्य नहीं आ सकता और यदि पुण्य से ग्रसित हो जाय तो पाप नहीं आ सकता। वह किसी से भी ग्रसित नहीं होता। वह सदैव अस्पर्शित है। इस साक्षी का, इस आत्मा का संकल्पपूर्वक स्मरण समस्त कर्मों के बीच उसका भान सब कुछ करते हुए, सोते, उठते बैठते, व्यक्ति को अपने स्वरूपतः निर्दोष और शुभ होने का अवबोध करा देता है। इस बोध की दशा में ही प्रकृति का अतिक्रमण एवं परमात्मा का अनुभव होता है।

मनुष्य के चित्त-विश्लेषण से जो केन्द्रीय तत्त्व उपलब्ध होता है वह है परिग्रह की दौड़। चाहे यश हो, चाहे धन, चाहे ज्ञान हो, लेकिन प्रत्येक स्थिति में मनुष्य किसी न किसी भाँति अपने को भरना चाहता है और संग्रह करता है। संग्रह न हो तो वह स्वयं को स्वत्वहीन अनुभव करता है और संग्रह हो तो उसे लगता है कि मैं भी कुछ हूँ। संग्रह, शक्ति देता हुआ मालूम पड़ता है। और संग्रह स्व या अहं को भी निर्मित करता है। इसलिए जितना संग्रह उतनी शक्ति और उतना अहंकार। इस दौड़ का क्या मूलभूत कारण है उसे बिना समझे जो इस दौड़ के विरोध में दौड़ने लगते हैं वे ऊपर से भले ही अपरिग्रही दिखायी पड़ें, अन्तस् में उनके भी परिग्रह ही केन्द्र होता है। जो व्यक्ति स्वर्ग के लिए, वैकुण्ठ के लिए या बहिस्त के लिए सम्पत्ति और संग्रह छोड़ देते हैं उनका

छोड़ना कोई वास्तविक छोड़ना नहीं है। क्योंकि जहाँ भी कुछ पाने की आकांक्षा है वहाँ परिग्रह है। फिर चाहे यह आकांक्षा परमात्मा के लिए हो या चाहे मोक्ष के लिए, चाहे निर्वाण के लिए। वासना परिग्रह की आत्मा है। लोभ ही उसका स्वाँस-प्रस्वाँस है। इस भाँति धन को जो धर्म या पुण्य के लिए छोड़ते हैं वे भी किसी और वड़े धन के पाने की अभिलाषा रखते हैं। यही कारण है कि यदि हम भिन्न-भिन्न धर्मों द्वारा कल्पित स्वर्ग पर विचार करें तो उसमें हमें मनुष्य के लोभ का ही विस्तार उपलब्ध होगा। कामनाओं और वासनाओं ने ही उसका सृजन किया है। जो सुख और ऐन्द्रिक तृप्ति इस लोक में चाही जाती है उसकी ही पूर्ति के वहाँ और भी सुलभ साधन प्रस्तुत किए गए हैं। कामधेनु है या कल्पवृक्ष, चिरयौवना अप्सराएँ हैं या हूरें, शराब की नदियाँ हैं और काम भोग के सभी उपकरण हैं। दान-पुण्य और त्याग से यदि यही सब उपलब्ध करना है तो ऐसे दान, पुण्य, त्याग को आत्म-वंचना ही मानना होगा। यह वासना का ही विकृत रूप है और परमात्मा के नाम से परिग्रह की ही तृप्ति है। यह भी हो सकता है कि कोई न स्वर्ग चाहता है, न अन्य तरह की कामनापूर्ति, लेकिन इन सबसे मुक्ति चाहता हो। किन्तु वहुत गहरे में देखने पर यह भी चाह का अत्यंतिक रूप है। वासनाओं से यदि दुःख अनुभव होता है तो उनसे मुक्ति चाहने में भी सुख की वासना ही उपस्थित है। वस्तुतः त्याग किसी भी भाँति की इच्छा के साथ संभव नहीं है।

परिग्रह की इतनी गहरी दौड़ क्यों है। उसे छोड़ते हैं तो भी वह उपस्थित रहता है। त्याग में भी वह खड़ा है, भोग में भी। तब क्या उससे छुटकारा संभव नहीं है? क्योंकि जो उससे छूटने की कोशिश करते हैं वे परिवार को तो छोड़ते हुए अनुभव करते हैं लेकिन खाई में गिरते दिखायी पड़ते हैं। उनका त्याग योग का ही शीर्षासन करता हुआ रूप मालूम होता है। गृहस्थ और तथा-कथित संन्यासी में कोई आधारभूत अन्तर नहीं होता। गृहस्थ जिस ओर भागता है संन्यासी ठीक उसके विपरीत भागता हुआ मालूम होता है। इससे संन्यासी गृहस्थ से भिन्न है ऐसी भ्रांति पैदा होती है, लेकिन विपरीत दिशाओं में भागते हुए भी उनकी मूल तृष्णा में कोई भेद नहीं है। विपरीत तथाकथित त्यागवादी और अधिक काम और लोभ से ग्रसित मालूम होंगे क्योंकि क्षणिक लौकिक सुख उन्हें तृप्त नहीं कर पाते, उनकी अभीप्सा तो शाश्वत सुख के लिए है। और यदि उस शाश्वत सुख के लिए वे इन क्षणिक सुखों को लात मार देते हों तो

न तो यह अलोभ है न त्याग, न अपरिग्रह। यह तो किसी भावी लाभ की आकांक्षा में सम्पत्ति विनियोग (इन्वेस्टमेन्ट) है।

साधारणतः परिग्रह को छोड़ना कठिन है, जब तक कि उसके उद्भाव के मूल कारण को न जाना जा सके। मूल कारण है स्वयं से अपरिचित होना। इस अपरिचय और अज्ञान से आत्म अविश्वास उत्पन्न होता है। आत्म अविश्वास से असुरक्षा अनुभव होती है। असुरक्षा की भावना से बचने के लिए परिग्रह की दौड़ प्रारम्भ होती है। स्वयं का बोध न हो तो सम्पत्ति और संग्रह से सुरक्षित होने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह जाता। स्वयं का होना है अज्ञात। वस्तुएँ हैं ज्ञात। जो ज्ञात है वह उपलब्ध करना सरल है उसे जीतना आसान है। और उसके द्वारा जो अभाव भीतर काटता है उससे भ्रान्ति ही सही, लेकिन छुटकारा मिलता हुआ अनुभव होता है। स्वयं के भीतर देखें तो कुछ नहीं मालूम होता है, वहाँ तो एक शून्य है, गहन रिक्तता है, यह रिक्तता भरे बिना चैन नहीं। किसी न किसी भाँति इसे भरना ही है। अभाव के साथ जिया नहीं जा सकता। रिक्तता घबड़ाती है और मृत्यु मालूम होती है। उससे बचने के लिए ही परिग्रह की शरण लेनी पड़ती है। सम्पत्ति, यश, पद, प्रतिष्ठा, इन सबमें उस अभाव से पलायन ही हम खोजते हैं लेकिन अभाव है आन्तरिक और सम्पत्ति है बाह्य। सम्पत्ति कितनी ही इकट्ठी करते जायँ अभाव उससे नष्ट नहीं होता है। भीतर का अभाव भीतर के भाव से ही नष्ट होगा। बाहर की कोई भी उपलब्धि उसे भरने में केवल इस कारण ही असमर्थ है कि वह बाहर की है। यही कारण है कि परिग्रह की दौड़ और के पागलपन से पीड़ित रहती है। जो मिल जाता है वह काम करता हुआ मालूम नहीं होता। अभाव वैसे ही का वैसा मालूम होता है। कितना ही अभाव को भोजन दें उसका पेट भरता नहीं। वह मुँह बाये ही खड़ा रहता है। स्वभावतः बुद्धि कहती है और दो, इतने से नहीं हुआ तो और करो और इस भाँति एक अन्तहीन चक्कर चलता है। जिसमें हर पड़ाव पर लिखा होता है और आगे और ऐसा कोई पड़ाव नहीं है जहाँ यह नहीं लिखा है।

परिग्रह की वृत्ति स्वयं की रिक्तता से पैदा होती है, तो उचित है कि इस रिक्तता को हम जानें और पहचानें। रिक्तता के ज्ञान के लिए रिक्तता में जीना आवश्यक है। न तो उसे भरें और न उससे भागें। वरन् उसमें कूद जावें ताकि उसका पूरा अनुभव हो सके। यही है योग। रिक्तता में छलांग समाधि

है, शून्य में जीना साधना है। जो व्यक्ति स्वयं की इस शून्यता में प्रवेश का साहस करता है वह प्रविष्ट होकर पाता है कि जो रिक्तता अनुभव होती थी वही आत्मा है और दूर से जो शून्य–जैसा भासता था वही परम सत्ता है। यह अनुभव अभाव से मुक्त कर देता है। परमात्मा उपलब्ध हो, परम सत्ता का साक्षात्कार हो तो परिग्रह की वृत्ति सहज ही विलीन हो जाती है। जैसे जाग जाने पर स्वप्न नहीं है वैसे ही स्वयं में आने पर बाहर की कोई दौड़ शेष नहीं रह जाती। जीवन की दो ही दिशाएँ हैं परिग्रह या परमात्मा। स्वयं का अभाव है दोनों दिशाओं का प्रारम्भ बिन्दु। उससे भागिए तो परिग्रह की गति शुरू होती है उसमें डूबिए तो परमात्मा उपलब्ध होता है।

मनुष्य में और पशु में जन्म और मृत्यु की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। न तो मनुष्य को ज्ञात है कि वह क्यों पैदा होता है और क्यों मर जाता है और न पशु को। लेकिन मनुष्य को यह ज्ञात है कि वह पैदा होता है और मरता है। यह ज्ञान पशु को नहीं है। और यह ज्ञान बहुत बड़ा भेद पैदा करता है। इसके कारण ही मनुष्य पशुओं के बीच होते हुए भी पशुओं से भिन्न हो जाता है। वह जीवन पर विचार करने लगता है। जीवन में अर्थ और प्रयोजन खोजने लगता है। वह मात्र होने से तृप्त नहीं होता वरन् सप्रयोजन और सार्थक रूप से होना चाहता है। इससे ही जीवन उसे जीना ही न होकर एक समस्या और उसके समाधान की खोज बन जाता है। स्वाभाविक है कि इससे तनाव, अशांति और चिन्ता पैदा हो। कोई पशु न तो चिंतित है, न अशांत। मनुष्य अकेला प्राणी है जिसमें ऊब प्रकट होती है। और वही अकेला है जो कि हँसता है और रोता है। न तो किसी और पशु को किसी भी भाँति उबाया ही जा सकता है न हँसाया ही। पशु जीते हैं सहज और सरल। कोई समस्या वहाँ नहीं है। भोजन, छाया या इस तरह की तात्कालिक खोजें हैं लेकिन जीवन का कोई अनुसंधान नहीं है। न कोई अतीत की स्मृति है और न भविष्य का विचार। वर्तमान ही सब कुछ है। और वर्तमान का यह बोध भी हमारे विचार में है क्योंकि जिनके लिए अतीत और भविष्य नहीं है उनके लिए वर्तमान भी नहीं है। समय या काल मानवीय घटना है और इसीलिए जो भी व्यक्ति मानवीय चिंताओं से मुक्त होना चाहता है वह किसी न किसी रूप में समय को भूलने या मिटाने की चेष्टा करता है। भूलने के उपाय हैं निद्रा, नशा, सेक्स, या इसी तरह की और मूर्च्छाएँ। मिटाने का उपाय है समाधि। लेकिन जब तक

चित्त समय में है तब तक वह चिंता के बाहर नहीं होता है। समय ही चिंता है। उसका बोध भार है। पशु निर्भार, निर्बोध ज्ञात होते हैं।

मनुष्य की यह विशेष स्थिति कि वह सृष्टि का अंग होते हुए भी सामान्य रूप से अन्य अंगों की भाँति अचेत अंग नहीं है, उसके जीवन में असामान्य और असाधारण उलझाव खड़े कर देती है। जीवन भर किसी न किसी रूप में इस दबावग्रस्त स्थिति के अतिक्रमण की खोज चलती है। मनुष्य सृष्टि का अचेतन अंग तो नहीं हो पाता। होश में रहते यह असंभव है। वह पशु और पौधों के निश्चित जीवन को नहीं पा सकता है। उसकी चेतना ही इन द्वारों को वर्जित किए हुए है। फिर अतिक्रमण का मार्ग एक ही है कि वह किसी भाँति सृष्टा हो जाय। सृष्टि के साथ सम्मिलन की भूमिका है अचेतना और सृष्टा के साथ सम्मिलन की संभावना है सम्पूर्ण चेतना। मनुष्य है मध्य में। न वह पूरा अचेतन है और न पूरा चेतन। पशुओं को वह पीछे छोड़ आया है और प्रभु होना अभी दूर है। चेतना जितनी आलोकित होती जाय और अचेतना का अंधकार जितना दूर हो उतना ही वह परमात्मा के निकट पहुँचता है। प्रकृति और परमात्मा, अचेतना और चेतना यही दो ध्रुव हैं जिनके मध्य पतन है या प्रगति है। दोनों ही ध्रुव मनुष्य को खींचते हैं और इससे ही उसमें संताप और चिंता का जन्म होता है। छोटे-मोटे रूप में भी यदि वह सृष्टा बन जाता है तो आनन्द अनुभव करता है। काव्य हो या चित्र हो या मूर्ति हो इनका निर्माता होकर भी वह सृष्टा के जगत का अंशभूत भागीदार हो पाता है। विज्ञान के आविष्कार भी उसकी चेतना को इसी विन्दु पर ले आते हैं। माँ या पिता को संतति को पाकर जो खुशी है वह भी सृष्टा होने की खुशी है। इसी कारण जो किसी भी भाँति का सृजन नहीं कर पाते उनकी पीड़ा अनन्तगुनी बढ़ जाती है। सृजन जीवन में न हो तो किसी भी भाँति की आनन्द-अनुभूति कठिन है। एक विकल्प और है : वह है विनाश का। उससे भी मनुष्य अचेतन सृष्टि के ऊपर होने का अनुभव करता है। हत्यारे, हत्या करके स्वयं को मिटाने की क्षमता का अनुभव करते हैं। वह भी बनाने की क्षमता का दूसरा पहलू है। तैमूर लंग, हिटलर या स्टेलिन या अन्य युद्धखोरों का जो सुख है वह सृष्टि के अचेतन अंग-मात्र होने के अतिक्रमण की चेष्टा है। जो सृजन नहीं कर पाते वे विनाश की ओर झुक जाते हैं। समाधान भिन्न और विपरीत है लेकिन समस्या दोनों की एक है। निश्चय ही सृजन का आनन्द और विनाश के सुख में मूलभूत

अन्तर है। दोनों स्थितियों में व्यक्ति प्रकृति से दूर हटता है लेकिन पहली स्थिति में वह परमात्मा के निकट पहुँच जाता है और दूसरी स्थिति में कहीं नहीं पहुँचता। पहली स्थिति में स्वयं से मुक्त हो जाता है, दूसरी स्थिति में मात्र अहंकार में केन्द्रित। इसीलिए विनाश की दिशा में जो सुख-जैसा आभास था वह अंत में चरम दुःख सिद्ध होता है, क्योंकि स्वयं की अहंता में बन्द हो जाने से बड़ा और कोई नरक नहीं है। जीवन का जो भी विकास और विस्तार है वह स्वयं से मुक्त हो समग्र संयुक्त होने में है। यह अवस्था केवल सतत सृजनशील मन ही उपलब्ध कर पाता है। सतत सृजनशील इसलिए कि यदि अपने ही किसी सृजन पर व्यक्ति रुक जाय तो वह भी अहंकार का पोषण हो जाता है। सतत सृजन का अर्थ है जो हमसे निर्मित हुआ है उससे मुक्त होते जाना। जिस दिन सृजन ही रह जाता है और कृतत्व-भाव विलीन हो जाता है उस दिन ही, उस क्षण ही, व्यक्ति मिटता है, अहंकार की छाया विसर्जित होती है, समष्टि के द्वार खुलते हैं और ब्रह्म में चेतना का प्रवेश होता है। यह प्रवेश ही आनंद में, आलोक में और अमृत में प्रतिष्ठा है।

प्रेम क्या है, इसे समझने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि प्रेम क्या नहीं है, क्योंकि जिसे हम प्रायः प्रेम के नाम से जानते हैं वह और कुछ भले ही हो, प्रेम कतई नहीं है। मानव के सम्बन्धों में भी हमें अधिकतर राग, लालसा, आसक्ति दिखाई देती है, वह प्रेम नहीं कहा जा सकता। प्रेम की विकृति ही राग, लालसा और आसक्ति है।

पहले काम को लीजिए जो राग से उत्पन्न होता है। काम प्रेम नहीं है। काम या यौन-आकर्षण तो प्रकृति का संतति उत्पादन के लिए प्रयोग किया गया सम्मोहन है। यथार्थ में वह वैसी मूर्च्छा है, जैसी शल्य चिकित्सक शल्य क्रिया के पूर्व उपयोग में लाता है। इस मूर्च्छा के अभाव में प्रकृति का संतति-क्रम चलना संभव नहीं है। इसे ही जो प्रेम समझ लेते है वे भ्रांति में पड़ जाते हैं। यह मूर्च्छा मनुष्य में ही नहीं वरन् समस्त पशु-पक्षी, कीट-पतंग में भी ऐसी ही पाई जाती है। कई जीवधारियों की तो संभोग के बाद मृत्यु हो जाती है। शहद की मक्खी का दृष्टांत लीजिए। इस मक्खी के छत्ते में इन मक्खियों की एक रानी रहती है। इस रानी से अनेक नर मक्खियाँ संभोग की इच्छा रखते हैं। अंत में जिस नर को वह रानी पसंद करती है उसके साथ उड़ती है और संभोग होने के पश्चात् नर का प्राणांत हो जाता है। फिर भी प्रकृति का सम्मोहन इतना

गहरा है कि सामने खड़ी मृत्यु भी यौन-आकर्षण से प्राणियों को नहीं रोक पाती। जहाँ तक इस प्रकार के प्रेम का संबंध है मनुष्य के विषय में, वह पशु-पक्षियों कीटादि से भिन्न नहीं है। प्रेम के संबंध में विचार करते समय यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यौन-आकर्षण को ही प्रेम न समझ लिया जाय। यथार्थ में यह राग का सबसे बड़ा रूप है। सत्य तो यह है कि राग की यह शक्ति जिस मात्रा में वासना से मुक्त हो जाती है उतनी ही मात्रा में उसका रूपांतपण प्रेम में होता है। प्रेम राग नहीं, वरन् राग शक्ति का दिव्य रूपान्तरण है।

राग के बाद लालसा आती है। हम लालसा और प्रेम को भी एक ही समझ बैठे हैं। लालसा में युद्ध-अधिकार की भावना रहती है। मनुष्य शक्ति पिपासु है प्रेम के नाम से भी। इसलिए अधिकार और स्वामित्व खोजा जाता है। पिता-पुत्र, मित्र-मित्र, पति-पत्नी आदि के अधिकांश संबंधों में यह अधिकार की भावना दृष्टिगोचर होती है, इसलिए अनेक बार हमें पिता-पुत्र, मित्र-मित्र और पति-पत्नी तक के संबंध टूटते दिखाई पड़ते हैं।

पति को अपने स्वामित्व का बड़ा ध्यान-रहता है और पत्नी दासी बन जाती है। पत्नी भी ऊपर से चाहे स्वयं को दासी कहे, परन्तु बहुधा भीतर से उसमें भी मालिक बनने का भाव सक्रिय रहता है। मालकियत की यह प्रतिस्पर्धा चाहे वह पिता-पुत्र में हो, चाहे मित्र-मित्र में और पति-पत्नी में बहुजा संघर्ष और कलह बन जाती है। प्रेम की पहली शर्त है निरहंकारिता। मनुष्य की सबसे बड़ी और गहरी भावना है अहंकार। जहाँ अहंकार नहीं वहीं प्रेम का जन्म है। लालसा में अहंकार सबसे प्रधान वस्तु रहती है।

अहंकार केन्द्रित जीवन में जिसे हम प्रेम समझते हैं, वह प्रेम न होकर लालसा होती है। जिसके प्रति यह लालसा रहती है, वह भी अनेक बार इसे प्रेम समझकर भ्रांति में पड़ जाता है। वस्तुओं और साधनों से प्रेम नहीं किया जा सकता। उनका तो बस उपयोग और शोषण ही होता है, हाँ उन्हें प्रेम बतलाया जा सकता है वैसे ही जैसे दासता के युगों में मालिक गुलामों को जीवन सुविधाएँ देता था ताकि वे मर जायँ। शायद वे मालिक अपने दासों के प्रति प्रेम भी जतलाते रहे हों। जैसा उनका प्रेम रहा होगा वैसी ही यह लालसा है।

इस प्रकार राग, लालसा और आसक्ति चाहे प्रेम दिखें पर वह यथार्थ में प्रेम नहीं है। जो व्यक्ति स्वयं को निपट शून्य बना लेता है उससे और केवल उससे ही प्रेम की ऊर्जा अभिव्यक्त होती है। प्रेम, व्यष्टि और समष्टि दोनों के प्रति हो सकता है। जिनके हृदय में प्रेम है, वह चाहे व्यष्टि के प्रति हो या समष्टि के, वह प्रेम पात्र के लिए ही सब कुछ करता है। उसकी समस्त इच्छाएँ प्रेम-पात्र को सुख देने में रहती है। उस प्रेम के बदले में वह कुछ नहीं चाहता है। प्रेम बेशर्त दान है।

और जब ऐसा प्रेम समष्टि से हो जाता है तब उसे विश्व प्रेम की सत्ता मिल जाती है।

इस प्रेम के लिए स्वयं को मिटाना आवश्यक है जो कठिनतम कार्य है। हम तो स्वयं को भरने और बनाने में लगे रहते हैं। इसलिए यह कोई आश्चर्य नहीं है कि हमारे जीवन राग, लालसा और आसक्ति से भरे हों तथा प्रेम से रहित। और जहां प्रेम नहीं वहाँ दुख है।

प्रेम से उदात्त आनन्द से बढ़ कर निर्दोष और दिव्य कोई दूसरी अनुभूति नहीं है। इस सृष्टि के सर्व श्रेष्ठ प्राणी के अनुभव में प्रेम ही सर्व श्रेष्ठ अनुभव है। प्रेम की गहराइयों में ही उसकी चेतना पदार्थ का अतिक्रमण करती है और प्रभु के द्वार परउपस्थित होती है। प्रेम ही प्रभु का द्वार है। प्रेम है रहस्य और अबूझ। उसे मनुष्य जानता भी है और नहीं भी जानता, परन्तु अनजाने भी उसे उसका अनुभव होता है। प्रेम के समक्ष परमात्मा भी प्रत्यक्ष हो जाता है। इसी से प्रेम परम कला है और प्रेम ही परम प्रार्थना भी। मैं तो कहता हूँ : प्रेम ही परमात्मा है।

साधारणतः जिसे ज्ञान कहते है वह ज्ञान द्वैत के ऊपर नहीं ले जाता। जहाँ दो हैं वहीं ऐसा ज्ञान संभव है। ज्ञेय ज्ञात हो पृथक ही बना रहता है। इसलिए यह ज्ञान एक बाह्य संबंध है, यह अन्दर प्रवेश नहीं कर पाता। ज्ञाता ज्ञेय के कितने ही निकट पहुँच जाय फिर भी दूर ही बना रहता है। इस ज्ञान की सम्भावना के लिए दूरी अनिवार्य और अपरिहार्य है। इसलिए ऐसा ज्ञान मात्र परिचय ही हो पाता है, वस्तुतः ज्ञान नहीं बन पाता। मनुष्य के लिए बड़ी से बड़ी पहेलियों में से एक यही है कि ज्ञान बिना दूरी के सम्भव नहीं और जहाँ दूरी है वहाँ सच्चा ज्ञान असम्भव है।

क्या यह सम्भव है कि दूरी न हो और ज्ञान सम्भव हो जाय ? यदि वह संभव नहीं है तो सत्य कभी भी नहीं जाना जा सकता। और साधारणतः यह सम्भव नहीं दीखता, क्योंकि जो भी हम जानते हैं, वह जानने के कारण ही हमसे पृथक और अन्य हो जाता है। ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय को तोड़ देता है। वह जोड़ने वाला सेतु नहीं वरन् पृथक करने वाली खाई है। और यही कारण है कि जिन्हें हम ज्ञानी कहते हैं वे अति अहंकार युक्त हो जाते हैं। जैसे-जैसे उनका ज्ञान बढ़ता है, वैसे-वैसे वे विश्वसत्ता से टूटते जाते हैं। इस भाँति यदि कोई सर्वज्ञ हो जाये तो वह अपने अहं बिन्दु पर समग्र रूपेण केन्द्रित हो जायगा। और जहाँ जितना अहंकार है उतना ही अंधकार है। ज्ञानी होने का बोध अहंकार की सूचना है। और सर्वज्ञ होने की धारणा परम अज्ञान की स्थिति है। सुकरात को परम ज्ञानी कहा गया है। क्योंकि उसने कहा है कि मैं इतना ही जानता हूँ कि मैं कुछ भी नहीं जानता। उपनिषद् भी घोषणा करते हैं कि अज्ञान तो अंधकार में ले ही जाता है, लेकिन ज्ञानी महा अंधकार में ले जाते हैं। ईशोपनिषद् का इस संबंध में स्पष्ट कथन है : 'जो जन अविद्या में निरन्तर मग्न हैं, वे डूब जाते हैं घने तमसान्ध में। जो मनुज विद्या में सदा रममाण हैं, वे और धन तमसान्ध में मानो धंसे। जो मनुज करते हैं निरोध उपासना, वे डूब जाते हैं घने तमसान्ध में। जो जन सदैव विकास में रममाण हैं, वे और धन समसान्ध में मानो धँसे।'

अहंकार ही अज्ञान है। इसलिए जिस ज्ञान से अहंकार पोषित होता हो, वह प्रच्छन्न रूप में अज्ञान ही है। फिर क्या ऐसा भी कोई ज्ञान सम्भव है, जो अज्ञान न हो, अर्थात् क्या ऐसा ज्ञान सम्भव है जिसमें अहंकार न हो ? दूसरे शब्दों में क्या ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय को जोड़ने वाला सेतु भी हो सकता है ? निश्चय ही ऐसा ज्ञान सम्भव है और उस ज्ञान का नाम ही प्रेम है। प्रेम ज्ञान का ऐसा मार्ग है जहाँ अहंकार को मिटाकर प्रवेश मिलता है। प्रेम का अर्थ है स्वयं के और सर्व के बीच दूरी को मिटाना। यह दूरी उसी मात्रा में विलीन होने लगती है जिस मात्रा में मैं का भाव नष्ट हो जाता है। रूमी की एक कविता है—जिसमें प्रेमी ने प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी है। भीतर से पूछा गया—कौन है ? प्रेमी ने कहा मैं तेरा प्रेमी। लेकिन फिर भीतर से कोई ध्वनि न आई और न दरवाजे खुलते मालूम पड़े। प्रेमी ने चिल्लाकर पूछा कि क्या कारण है कि द्वार नहीं खुलते हैं। उत्तर मिला प्रेम के द्वार

उसके लिए ही खुलते हैं, जिसने वैसी पात्रता अर्जित कर ली हो। यह सुन प्रेमी चला गया और वर्षों की तपश्चर्या के बाद पुनः उस द्वार पर आया। फिर पूछा गया कौन है? इस बार उत्तर भिन्न था। प्रेमी ने कहा—मैं नहीं हूँ, अब तो तू ही है। और जो द्वार सदा बन्द थे वे खुल गए। प्रेम के द्वार तभी खुलते हैं जब अहंकार का आभास गिर जाता है। सत्य पर पर्दा नहीं है। पर्दा हमारी दृष्टि पर है और गहरे देखने पर प्रेम के द्वार वन्द नहीं थे, अहंकार से आँखें बन्द थीं। अहंकार गया तो द्वार सदा से खुले ही हैं।

प्रेम की साधना स्वयं को मिटाने की साधना है। और आश्चर्यो का आश्चर्य तो यही है कि जो स्वयं को मिटाता है वही स्वयं को पाने में समर्थ होता है!

धर्म के प्रति आधुनिक मन में बड़ी उपेक्षा है। और यह अकारण भी नहीं है। धर्म का जो रूप आँखों के सामने आता है, वह न तो रुचिकर ही प्रतीत होता है और न ही धार्मिक। धार्मिक से अर्थ है सत्य, शिव और सुन्दर के अनुकूल। तथाकथित धर्म वह वृत्ति ही नहीं बनाता जिससे सत्य, शिव और सुन्दर की अनुभूति होती हो। वह असत्य, अशिव, और असुन्दर की भावनाओं को वल और समर्थन भी देता है। हिंसा, वैमनस्य और विद्वेष उसकी छाया में पलते हैं। मनुष्य का इतिहास तथाकथित धर्म के नाम पर इतना रक्तरंजित हुआ है कि जिनमें थोड़ा विवेक और वुद्धि है, वहुत स्वाभाविक है कि न केवल उनके हृदय धर्म के प्रति उदासीन हो जायँ, बल्कि ऐसे विकृत रूपों के प्रति विद्रोह का भी अनुभव करें। यह बात विरोधाभासी मालूम होगी, किन्तु वहुत सत्य है कि जिनके चित्त वस्तुतः धार्मिक हैं वे ही लोग तथाकथित धर्मो के प्रति विद्रोह अनुभव कर रहे हैं।

धर्म भी एक जीवन्त प्रवाह है। और निरंतर रूढ़ियों, परम्पराओं और अंधविश्वासों को तोड़कर उसे मार्ग बनाना पड़ता है। सरिताएँ जैसे सागर की ओर वहती हैं और उन्हें अपने मार्ग में बहुत-सी चट्टानें तोड़नी पड़ती हैं, और वहुत सी वाधाएँ दूर करनी होती हैं, ठीक वैसे ही धर्म का भी विकास होता है। धर्म के प्रत्येक सत्य के आसपास शीघ्र ही सम्प्रदाय अपने घेरे बाँध कर खड़े हो जाते हैं। फिर इन घेरों से न्यस्त स्वार्थ होते हैं। स्वाभाविक है कि जहाँ स्वार्थ है वहाँ संघर्ष भी आ जाय। ऐसे संप्रदाय आपस में लड़ने लगते हैं। यह लड़ाई वैसी ही है जैसी प्रतिस्पर्धी दुकानों में ग्राहकों के लिए

होती है। संगठन संख्या पर जीते हैं। इसलिए येन-केन प्रकारेण अनुयायियों को बढ़ाने की दौड़ चलती रहती है। धर्म के नाम पर भी इस प्रकार शोषण संभव हो जाता है। मार्क्स ने सम्भवतः इसी कारण धर्म को जनता के लिए अफीम का नशा कहा है।

धर्म, संप्रदाय सत्य के खोजी भी नहीं रह जाते। वे तो अपनी-अपनी धारणाओं को हर स्थिति में सत्य सिद्ध करने में संलग्न रहते हैं और इसलिए वे ज्ञान के प्रत्येक नए चरण के शत्रु हो जाते हैं। विज्ञान के साथ धर्म का संघर्ष इसी बात की सूचना है। ज्ञान तो नित्य आगे बढ़ता रहता है और तथा-कथित धार्मिक पुरानी और मृत धारणाओं से ही चिपके रहते हैं, इसलिए वे प्रगति के विरोध में प्रतिक्रियावादी सिद्ध होते हैं। ऐसे धर्म-सम्प्रदाय धर्म के ही मार्ग में बाधा बन जाते हैं। धर्म को जितना अहित साम्प्रदायिक दृष्टि ने पहुँचाया है, उतना किसी और बात ने नहीं। सम्प्रदाय जितने बढ़ते गए धर्म का उतना ही ह्रास होता गया। सम्प्रदाय तो जड़ आवरण है। धर्म की विकासशील आत्मा के वे कारागृह बन जाते हैं।

धर्म एक है, लेकिन सम्प्रदाय अनेक हैं और इसी कारण अद्वय सत्य की उपलब्धि में उनकी अनेकता सहयोगी नहीं हो पाती। जैसे विज्ञान एक है और उसके कोई सम्प्रदाय नहीं वैसे ही वस्तुतः धर्म भी एक है और उसके सत्य भी सार्वभौम हैं। धर्म की सम्प्रदायों से मुक्ति अत्यन्त आवश्यक हो गई है। मनुष्य के विकास में ऐसी घड़ी आ गई है कि धर्म सम्प्रदाय से मुक्त होकर ही उसे प्रीतिकर, उपादेय और वाछंनीय ज्ञात हो सकेगा। सम्प्रदाय से मुक्त होते ही धर्म का न्यस्त स्वार्थ का रूप नष्ट हो जाता है। वह दूकानदारी नहीं है और न किन्हीं अंधविश्वासों का प्रचार है। वह न संगठन है और न शोषण। फिर तो वह व्यक्ति, सत्ता और सर्व सत्ता के बीच प्रम और प्रार्थना का अन्यन्त निजी संबंध है। धर्म अपने शुद्ध रूप में वैयक्तिक है। वह तो स्वयं का समर्पण है। संगठन से नहीं, साधना से उसका संबंध है। क्या प्रेम के कोई सम्प्रदाय हैं? और जब प्रेम के नहीं हैं तब प्रार्थना के कैसे हो सकते हैं? प्रार्थना तो प्रेम का ही शुद्धतम रूप है।

सत्य की कोई भी धारणा चित्त को बंदी बना लेती है। सत्य को जानने के लिए चित्त की परिपूर्ण स्वतंत्रता अपेक्षित है। चित्त जब समस्त सिद्धान्तों, शास्त्रों से स्वयं को मुक्त कर लेता है, तभी उस निर्दोष और

निर्विकार दशा में सत्य को जानने में समर्थ हो पाता है। व्यक्ति जब शून्य होता है तभी उसे पूर्ण को पाने का अधिकार मिलता है।

मनुष्य के सारे जीवन सूत्र उलझ गए हैं। उसके संबंध में कोई भी सत्य सुनिश्चित नहीं प्रतीत होता। न जीवन के अथ का पता है, न अंत का। पहले के समय में जो भी धारणाएँ स्पष्ट प्रतीत होती थीं वे सब अस्पष्ट हो गई हैं। धारणाओं के पुराने भवन तो गिर गए पर नए निर्मित नहीं हुए। पुराने सब मूल्य मर गए हैं या मर रहे हैं और कोई नए मूल्य अंकुरित नहीं हो पाते। एक ही नया मूल्य अंकुरित हुआ है कि यह भौतिक जीवन ही सब कुछ है। परन्तु इस नए मूल्य संघर्ष, द्वंद्व और युद्ध, अशांति को जन्म दिया है। इस भाँति जीवन दिशाशून्य होकर ठिठका सा खड़ा है। यह किंकर्तव्यविमूढ़ता हमारी प्रत्येक चिन्तना और क्रिया पर अंकित है। स्वभावतः ऐसी दशा में हमारे चित्त यदि तीव्र संताप से भर गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। गन्तव्य के बोध के बिना गति एक बोझ ही हो सकती है। जीवन के अर्थ को जाने बिना जीना एक भार ही हो सकता है। अर्थ और अभिप्राय-शून्य उपक्रम अन्ततः अर्थ और अभिप्राय को कैसे जन्म दे सकते हैं। जिस यात्रा का प्रथम चरण ही अर्थहीन हो, उसका अंतिम चरण अर्थ नहीं बन सकता। फिर जो पूरी की पूरी यात्रा ही अर्थहीन हो तब तो अंत में अनर्थ ही हाथ आयगा। यह कोई कोरे सिद्धान्त की बात नहीं है। यह तो सीधा अनुभव ही है। चारों ओर हजारों चेहरों पर छाई हुई निराशा, लाखों आँखों में घिरा हुआ अंधकार, करोड़ों हृदयों पर ऊब और संताप का भार इसका स्पष्ट प्रमाण है। खोज करने पर भी शांत, संतुष्ट और आनन्दित व्यक्ति का मिलना दुर्लभ होता जा जा रहा है। अभी भी ऋतुराज आता है और सृष्टि सुमनों तथा उनकी सुगंधि से भर जाती है। पावस में मेघमालाएँ उठतीं, दामिनी दमकतीं, वर्षा होती, इन्द्र धनुष निकलता और हरियाली छा जाती है। ऊषा और संध्या की सुनहरी आभा से पूर्व और पश्चिम नित्य ही आलोकित होते हैं। उदय होते हुए भगवान भास्कर की आभा और नित्य प्रति बढ़ती हुई चन्द्रमा की कलाएँ अपना सौंदर्य दिखाती हैं। त्रिविध समीर बहता है और पंछी अपना मधुर राग अलापते हैं। किन्तु वे मनुष्य कहाँ हैं जिनके हृदय संगीत से भरे हों और जिनकी आँखों से सौन्दर्य झरे? निश्चय ही मनुष्य के साथ कुछ भूल हो गई है। निश्चय ही उसके भीतर कुछ टूट और खो गया है। निश्चय ही मनुष्य जो होने को

पैदा हुआ है, वही होना वह भूल गया है।

यह भूल इसलिए हुई कि मनुष्य जो उसके बाहर है उसे समझने और जीतने में अतिशय संलग्न हो गया है। उसकी बाहर की अति सलंग्नता ने भीतर की भूमि से क्रमशः उसे अपरिचित कर दिया है। धीरे-धीरे यह स्मरण ही न रहा कि हमारे भीतर भी जानने और जीतने को एक जगत् है। बाहर के जगत् में मिली विजय क्रमशः उसे और बाहर लेती गई। नए-नए अविजित क्षितिज उसे आकर्षित करते रहे और उनके प्रलोभनों में वह स्वयं से ही दूर बढ़ता गया। जगत् का कोई अंत नहीं है। बाहर अनन्त विस्तार है, यह सम्भव नहीं कि कभी भी उस पूरे विस्तार को हम अपनी मुट्ठी में ले सकेंगे। जितना हम जानते हैं जगत् उतना ही बड़ा होता जाता है। जितना हम उसे जीतते हैं उतना ही वह अविजित क्षेत्र बड़ा होता जाता हैं। इस दौड़ में स्वर्णमृग तो हाथ नहीं आता। हाँ, स्वयं की सीता से जरूर दूर हुए जाते हैं। राम ने जैसा अंत में पाया कि स्वर्णमृग तो मिला नहीं लेकिन सीता अवश्य खो गई। ऐसी दशा पूरी मनुष्यता की है। बाहर के सर्व को खोजने और जीतने हम निकले और अंत में यह पा रहे हैं कि भीतर के स्व को ही हार गए और खो बैठे। मनुष्य की चेतना को वापिस उसके स्व में प्रतिष्ठित करना अपरिहार्य हो गया है। तभी हम स्वयं को जानने में समर्थ हो सकेंगे। और उस ज्ञान के प्रकाश से ही जीवन की उलझी गुत्थी सुलझ पायगी। यह अज्ञान चरम अज्ञान है कि जो स्वयं को ही न जानता हो वह शेष सबको जानने में संलग्न हो। प्रकृति नहीं, पुरुष सर्वप्रथम जानने योग्य है। उस ज्ञान के आधार पर शेष सब ज्ञान सार्थक हो सकता है। उस मूल ज्ञान के अभाव में और किसी भी भाँति के ज्ञान का कोई भी मूल्य नहीं। मनुष्य प्रथम है, शेष सब पीछे। मनुष्य को सबसे अंत में रखकर ही भूल हो गई है।

आज मनुष्य के विकास में एक अद्भुत विरोधाभास दिखाई देता है। जहाँ एक और मौलिक तल पर समृद्धि और प्रगति अनुभव होती है वहीं इस भौतिक समृद्धि और प्रगति के साथ-साथ ही आत्मिक तल पर ह्रास और पतन भी दिखाई पड़ता है। अतः वे लोग भी ठीक हैं जो कहते हैं कि मनुष्य निरन्तर उन्नत हो रहा है और वे लोग भी ठीक हैं जिनकी मान्यता है कि मनुष्य का प्रतिदिन पतन होता जा रहा है। हम दोनों को ठीक इसलिए कहते हैं कि भौतिकवादी अपनी दृष्टि से आधुनिक मनुष्य को देखते हैं और आध्यात्मवादी

अपनी दृष्टि से। कठिनाई यह है कि दोनों यह अनुभव नहीं करते कि उनकी दृष्टि एकांगी दृष्टि है। भौतिक विचारधारावाले तो, आत्मिकतल भी कोई तल होता है, इसे जानते तक नहीं हैं और आध्यात्मिक विचारधारावाले इस सारी समृद्धि और प्रगति को निरर्थक मानते हैं। विचारणीय यह हो गया है कि विरोधी दिशाओं में खिंच रही मानव की यह स्थिति कहीं उसका अन्त ही न कर दे। यह घटना असम्भव घटना नहीं है।-यह इसलिए कि यदि हम भौतिकतल की उन्नति में ही लगे रहे और हमारा अन्तस जैसा अभी है वैसा ही रहा तो यह सारी भौतिक समृद्धि नष्ट हो सकती है। भीतर रुग्णता हो और बाहर स्वस्थ दिखाई पड़े तो किसी भी क्षण दुर्घटना घटित हो सकती है। जिस हृदयरोग का आजकल बाहुल्य हो गया है उसमें बाहिरी स्वस्थता ही दीख पड़ती है, परन्तु बाहर का स्वास्थ्य अच्छा दिखते हुए भी यह ऐसा रोग है जो क्षण भर में सारी स्वस्थता समाप्त कर व्यक्ति का नाश कर देती है। बाहर सम्पदा दिखाई पड़े और भीतर पास में कुछ न हो तो दिवालियापन कभी भी प्रकट हो सकता है। बाहर विकास हो और भीतर ह्रास तो भविष्य के सम्बन्ध में आशावान नहीं हुआ जा सकता। बाह्य और अंतस का तनाव से बड़ा और कोई तनाव संभव नहीं है। इससे बड़ी न तो कोई अशान्ति हो सकती है और न कोई आत्मवंचना। हम कब तक अपने को धोखा देते जायँगे। हर धोखे का भी टूट जाने का समय आता है और भौतिक समृद्धि के रहते हुए अन्तस् की इस शून्यता के कारण जिस एक धोखे में हम रह रहे हैं उस धोखे के टूटने का समय निकट आ रहा है— अन्तस् की यह स्थिति ही भौतिक समृद्धि के बढ़ते रहने पर चारों ओर अनैतिकता और अमानवीयता बढ़ा रही है। जिसे सच्ची धार्मिकता कहते हैं वह नष्ट हो गई है। इस स्थिति में प्रतिक्षण पैदा हो रहे छोटे-बड़े दुष्परिणाम क्या हमें सजग कर देने को यथेष्ट नहीं है? क्या सम्पत्ति और समृद्धि के बीच भी तीव्र संताप की मनःस्थिति और चिन्ता की ज्वालाओं का ताप हमें जगा देने को पर्याप्त नहीं है? व्यक्ति के तल पर ही नहीं, समाज और राष्ट्रों के तल पर भी फैला हुआ विद्वेष, घृणा और हिंसा और आए दिन विस्फोट होते हुए घातक युद्ध भी क्या हमारी निद्रा को नहीं तोड़ सकेंगे? विगत आधी सदी में दो महायुद्धों में कोई दस करोड़ लोगों की हत्या हुई। जहाँ-जहाँ युद्ध की विभीषिका फैली थी वहाँ-वहाँ युद्ध के पश्चात् जीवित जन-समुदाय ने अगणित कष्ट पाए। इतनी बड़ी हिंसा और दुर्दशा का जन्म

निश्चित ही हमसे ही हुआ है। हम ही इसके लिए उत्तरदायी हैं। हम जैसे हैं उसमें ही उसके बीज मौजूद हैं। ये युद्ध केवल राजनैतिक या आर्थिक स्थिति के ही परिणाम नहीं थे। मूलतः और अन्ततः तो सब कुछ मानव के मन से सम्बन्धित होता है। ऊपर से इस प्रकार की घटनाएँ चाहे राजनैतिक दिखें अथवा आर्थिक किन्तु गहरे में तो सभी कुछ मानसिक रहता है। समाज में ऐसी कोई स्थिति नहीं है जिसके मूल कारण व्यक्ति के मन में न खोजे जा सकें, क्योंकि समाज व्यक्तियों के जोड़ के अतिरिक्त और क्या है? जो चिनगारियाँ व्यक्तियों के मन में अत्यन्त छोटे रूप में दिखाई पड़ती हैं वे ही तो समूह की सामूहिकता में बिकराल अग्निकांड बन जाती है।

व्यक्ति की आत्मा में ही यथार्थ में समूह का सारा स्वास्थ्य या रुग्णता छिपी रहती है। आत्मविपन्न व्यक्ति स्वस्थ समाज के निर्माता नहीं हो सकते। दुखी, संतापग्रस्त ईकाइयाँ किसी भी भाँति आनन्दपूर्ण और शान्तचित्त समाज की घटक कैसे हो सकती हैं? ऐसा कोई भी चमत्कार संभव नहीं है जो तत्त्व में किसी भी अंश-रूप से इकाई में उपस्थित न हो और वह पूर्ण जोड़ में आ जाय। जो समूह में और जोड़ में दिखाई पड़ता हो, मानना होगा कि वह अपने अंशों में अति सूक्ष्म रूप से अवश्य ही मौजूद रहता है। इसलिए ऊपर दूसरे शब्दों में केवल उथला देखकर मानवीय जीवन की किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। उथले में समूह ही पकड़ में आता है, गहरे जाने पर व्यक्ति उपलब्ध होता है। जहाँ समस्या का जन्म है, वहीं समाधान भी खोजना होगा तभी वह समाधान और वास्तविक समाधान होगा। अन्यथा जिसे हम समाधान मानते हैं वह और अन्य नवीन समस्याएँ खड़ी कर देता है। जैसे युद्ध को मिटाने के लिए या शान्ति पाने के लिए उथली दृष्टि युद्ध का ही समाधान प्रस्तुत करती है। आज तक जितने युद्ध लड़े गए वे अन्याय का निराकरण करने और न्याय की स्थापना करने के उद्देश्य से ही लड़े गए। यह सदा कहा गया। परन्तु जिसे अन्याय कहा जाता था, न युद्ध से उस अन्याय का निराकरण हुआ और जिसे न्याय कहा जाता था, न उस न्याय की ही स्थापना। इस प्रकार भ्रान्त तर्क के आधार पर हजारों वर्षो से मनुष्य लड़ता रहा है लेकिन कोई भी युद्ध न अन्याय का निराकरण कर सका और न न्याय की स्थापना। फिर शान्ति तो वह स्थापित कर ही कैसे सकता था? जो युद्ध शांति का विरोधी है, उससे शान्ति की स्थापना! अनेक युद्धों को तो धर्मयुद्ध तक कहा गया है।

कोई युद्ध भी धर्म युद्ध हो सकता है ? युद्ध शान्ति का जनक न होकर नए युद्धों का ही जन्मदाता होता है और नया युद्ध पुराने युद्ध से भीषणतर होता जाता है। पश्चिम में जहाँ सर्वप्रथम सभ्यता का विकास हुआ उस यूनान के ऐथेन्स और स्पार्टा के युद्धों में वीरगति प्राप्त करनेवालों की संख्या कितनी और उस युद्ध के आयुध कैसे थे ? पूर्व में भारतीय महाभारत युद्ध में भी कितना नर-संहार हुआ था और उसमें भी किस प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग किया गया था ? इस शताब्दी के गत दो विश्वयुद्धों के नरसंहार और आयुधों का इन प्राचीन युद्धों से मिलान किया जाय। और अब तो अणुबम और उद्जन बम तक हम पहुँच गए हैं। यदि तीसरा विश्वव्यापी युद्ध हुआ और युद्ध में इन आयुधों का उपयोग किया गया तो विश्व की मानवता की क्या स्थिति रहेगी इस संबंध में बड़े से बड़ा भविष्यवक्ता भी कोई ठीक भविष्यवाणी करने में असमर्थ है। ऐसी ही जीवन की अन्य समस्याओं के भी हमारे समाधान है। अपराध को मिटाना है तो दण्ड और फाँसी है, किन्तु हजारों वर्षो तक दण्ड देने पर भी अपराध मिटा नहीं, वह बढ़ता गया और अभी भी बढ़ रहा है। इतने पर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं और हम सतह पर ही इलाज किए चले जाते हैं जबकि बीमारी गहरी है और भीतर है। शोषण मिटाने के लिए हिंसात्मक क्रान्तियाँ हुईं। जबकि शोषण भी हिंसा ही है तो वह हिंसा से कैसे मिटाया जा सकेगा ? हिंसा से जो क्रान्तियाँ हुईं उनसे क्या कहीं भी शोषण मिट पाता है ? इस प्रकार की क्रान्तियों का परिणाम यह होता है कि शोषक तो बदल जाते हैं किन्तु शोषण बना रहता है।

व्यक्ति के अन्तस्तल के परिवर्तन के बिना कोई परिवर्तन वास्तविक परिवर्तन नहीं हो सकता। व्यक्ति के हृदय में समृद्धि आनी चाहिए। वहाँ की दरिद्रता, दीनता और रिक्तता मिटनी चाहिए। वहाँ दुःख, चिन्ता और संताप का अन्त होना चाहिए। जब तक उस गहराई में आलोक, प्रेम और आनंद का आविर्भाव न होगा तब तक जीवन को शान्त और सुखी बनाने के सब उपाय व्यर्थ होंगे। क्या केवल भौतिकतल की समृद्धि यह कर सकती है ? केवल बाह्य समृद्धि और बाह्य विकास उस अवस्था को देने में असमर्थ हैं। मनुष्य की आन्तरिकता भी विकसित होनी चाहिए। चीजों का बढ़ता जाना ही पर्याप्त नहीं है, हृदय भी बढ़ना चाहिए। वस्तुओं की पारिमाणिकता ही नहीं, मनुष्य की गुणात्मिकता भी बढ़नी चाहिए। मनुष्यता की वृद्धि जितनी अधिक होगी उतनी ही अधिक

समस्याएँ कम हो जायँगी क्योंकि हमारी अधिकांश समस्याएँ हमारे भीतर जो पाशविकता है उससे ही उत्पन्न होती है। आज हम इस पाशविकता की अभिव्यक्ति के लिए ही अधिकतर नए-नए उपाय खोजते हैं फिर चाहे वे राष्ट्रों के नाम पर हों, चाहे सिद्धान्तों के नाम पर, चाहे वादों के नाम पर। अच्छे-अच्छे शब्दों की आड़ में हम अपने बुरे से बुरे रूप को प्रकट करते रहते हैं। शब्द तो बहाने हैं । उन्हे कोई समस्याएँ न समझे। जो उन्हें ही समस्याएँ समझ लेता है वह समाधान तक कभी नहीं पहुँच सकेगा। समस्या शब्दों की नहीं, चित्त की है। प्रश्न युद्ध का नहीं, युद्ध करनेवाले मन का है। वह मन जो संघर्ष, विप्लव, युद्ध करना चाहता है वह एक बहाना न मिलने पर दूसरा बहाना खोज लेगा। इसलिए हम बहाने को बदलते जाते हैं परन्तु अशांति बनी रहती है। जो चित्त इसाईयत और इस्लाम के नाम पर या हिन्दू और बौद्ध के नाम पर लड़ता था, वही चित्त साम्यवाद और जनतंत्र के नाम पर लड़ रहा है। लेकिन लड़ाई वहीं की वहीं है। इस स्थिति को बदलना हो तो चित्त को बदलना आवश्यक है।

सृष्टि में कोई भी वस्तु पूर्णतया पूर्ण और निर्दोष तो नहीं हो सकती परन्तु मानव हर वस्तु को निर्दोष बनाने का यत्न अवश्य करता है। चूँकि वह स्वयं पूर्ण नहीं है इसलिए उसके समस्त कार्य अपूर्ण ही रहते हैं। हजारों वर्षों के मानव इतिहास में कभी भी शिक्षा की कोई पद्धति सर्वथा निर्दोष और सर्वमान्य नहीं रही है, परंतु शिक्षा की वर्तमान पद्धति तो अत्यंत शोचनीय और चिंतनीय हो गई है। सारे संसार में कोई भी उससे संतुष्ट नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है कि वर्तमान शिक्षापद्धति के माध्यम से मनुष्य को जानकारियाँ (Information) तो मिल जाती हैं लेकिन सच्चे ज्ञान की उपलब्धि उसे नहीं होती। यह ज्ञान उपलब्ध न होने से स्वयं मानव का निर्माण यह शिक्षा नहीं कर पाती। तथ्यों की जानकारी से मनुष्य का मस्तिष्क तो भर जाता है, परन्तु उसकी अन्तरात्मा खाली की खाली बनी रहती है। न तो उसके अन्तःकरण का जागरण होता है, न उसके हृदय में शुभ भावना का अवतरण। इसे यों भी कह सकते हैं कि यह शिक्षा उस आहार की भाँति है जिससे भूख तो मिट जाती है, तृप्ति नहीं होती और न ही नया रक्त अथवा अन्य धातुओं की शरीर में अभिवृद्धि ही होती है। यही कारण है कि वर्तमान शिक्षा हमारे चरित्र को स्पर्श भी नहीं कर पाती और इससे मनुष्य के व्यक्तित्व को गढ़ने का कोई उपाय प्रतिपादित नहीं होता। यह कितना आश्चर्यजनक और अभाग्यपूर्ण है कि शिक्षा-

प्रशिक्षण द्वारा पशु को मानव बनाने का उपक्रम तो किया जाता है पर मानव को मानव बनाने का नहीं। या इसे यों कहें कि पशु की पशुता दूर करने के प्रयत्न तो किए जा रहे हैं, जबकि मनुष्य में अन्तर्निहित पाशविकता को उलटा बढ़ाया जा रहा है। यही नहीं, उसे मानव से कुछ और बनाने के सभी प्रयत्न आधुनिक शिक्षा में किए जा रहे हैं।

मानव को मानव बनाए रखना है अथवा कुछ और बना देना है, यही आधुनिक शिक्षा की समस्या है, जिस पर ही बुद्धिवादी, विवेकशील व्यक्ति और संसार का हर वर्ग चिंतित है।

मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी जीव को शिक्षित नहीं किया जा सकता, क्योंकि निसर्ग ने जो ज्ञान-शक्ति मनुष्य को दी है वह अन्य किसी प्राणी को नहीं। अन्य जीवों को केवल प्रशिक्षण (training) दिया जा सकता है जैसे सर्कस के सिंह, हाथी, घोड़ा, बंदर, बकरे और तोता-मैना आदि को। शिक्षण और प्रशिक्षण के इस बुनियादी भेद को समझना बहुत आवश्यक है।

शिक्षा का सूत्र और उसका स्रोत, अन्तस् में है। वह एक संस्कार है जो बीज रूप से अंकुरित हो वृक्ष बनता है और उसमें पुष्प एवम् फल फलते हैं, जबकि प्रशिक्षण मात्र अभ्यास है। वह है उस पौधे की भाँति, जो पुष्प और फलों से रहित रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए सजावट के किसी स्थल पर क्षणिक महत्व के लिए रोपा जाता है, जिसे आर्टिफिसियल कह सकते हैं। याने शिक्षा एक प्राकृतिक संस्कार है और प्रशिक्षा एक कृत्रिम वस्तु-मात्र। पहले का संबंध अन्तस् से है, दूसरे का बाहर से, पहला प्राकृतिक है, दूसरा कृत्रिम! एक विकास-शील प्राण-तत्व है तो दूसरा निर्जीव पदार्थवत्। इस प्रकार प्रशिक्षण ऊपर से जबर्दस्ती थोपा हुआ ढाँचा है। शिक्षा ऊपर से नहीं थोपी जाती वरन् अन्तस् को जगाकर दी जाती है। पानी के हौज में जिस प्रकार पानी ऊपर से भरा जाता है उसी प्रकार प्रशिक्षण शिक्षा रूपी कुएँ में भरे हुए पानी की भाँति है जो भीतरी छेदों से भरता है। अंग्रेजी शब्द "एजुकेशन" का अर्थ बड़ा महत्वपूर्ण है। उसका अर्थ है भीतर से बाहर निकालना, उसका अर्थ बाहर से भीतर डालना नहीं है। पर हम जो कुछ कर रहे हैं वह बाहर से भीतर डालना है। इसे शिक्षा कैसे कहा जा सकता है? यह मात्र प्रशिक्षण है और यही कारण है कि जिसे हम शिक्षित होना कहते हैं, और जिसे हमारे विश्वविद्यालय सम्मानित करते हैं, वह जीवन की व्यापक और वृहद् परीक्षा में असफल हो जाता है। ऐसा शिक्षित जन केवल

रटा हुआ तोता होता है, उसमें स्वयं विचार की न तो कोई ऊर्जा होती है और न अपने जीवन को निर्देशित करने का कोई विवेक। वह पानी की लहरों पर बहते हुए लकड़ी के उस टुकडे की भाँति होता है जिसे लहरें जहाँ ले जाती हैं चला जाता है।

प्रशिक्षण का शिक्षण के रूप में इस भाँति प्रचलित होना तकनीकी शिक्षा के अति प्रभाव के कारण हुआ है क्योंकि तकनीकी का प्रशिक्षण ही हो सकता है, शिक्षण नहीं। सारा संसार चूँकि भौतिक समृद्धि के लिए लालायित है, और हमारा देश तो गरीबी के कारण और भी अधिक, इसलिए तकनीकी ज्ञान को ही प्रमुखता मिली है। मैं तकनीकी ज्ञान की और उसके द्वारा होनेवाली भौतिक समृद्धि के विरूद्ध नहीं हूँ। संसार के लिए और हमारे लिए वह भी आवश्यक है। किंतु इससे जो हमारा अनिष्ट हो रहा है, उसकी दिनों-दिन बढ़ती हुई संभावना से हमारे बुनियादी जीवन का जो आधार खोखला हो रहा है, उससे अब हम अधिक समय तक अपनी आँखें मूँद कर नहीं रह सकते। अपनी अयोग्यता को छिपाकर केवल अभ्यास के बल पर हम आखिर कहाँ तक आगे बढ़ सकेंगे? सच्ची शिक्षा के अभाव में यह प्रशिक्षण हमारे जीवन को दरिद्र और एकांगी बना रहा है। इसी के साथ इसके कुछ भयावह नतीजे भी निकल रहे हैं। तकनीकी ज्ञान भौतिक जगत्–नियंत्रण के लिए आवश्यक है। परन्तु जिसे मैं सच्ची शिक्षा कहता हूँ, उसके द्वारा शिक्षित न होने के कारण मनुष्य अपने पर नियंत्रण नहीं कर पा रहा है। स्वयं पर इस अनियंत्रण के कारण उसका पदार्थ-ज्ञान एवं भौतिक वस्तुओं का आधिपत्य वैसा ही है जैसा अबोध बच्चे के हाथ में तलवार देना। पिछले दो महायुद्ध इसके प्रमाण हैं और हम आज भी उसी दिशा में बढ़ रहे हैं। हमें इन महायुद्धों से चेतावनी नहीं मिली। यदि हम सचेत नहीं होते हैं तो अनियंत्रित मनुष्य के हाथ में प्रकृति की नियंत्रित शक्तियाँ आत्मघाती सिद्ध होंगी। इसकी चरम परिणति समस्त मानवता के अंत करने में हो सकती है। अतः भौतिक वस्तुओं पर नियंत्रण के पूर्व मनुष्य का उससे कहीं अधिक स्वयं पर नियंत्रण होना आवश्यक है। क्योंकि शक्ति केवल संयमी के हाथों में ही सुरक्षित रहती है। असंयमी, अविवेकी के शक्तिशाली होने से भस्मासुर की पुनरावृत्ति अवश्यम्भावी है।

इस जगत में मनुष्य के लिए मनुष्य से अधिक महत्त्वपूर्ण और कुछ भी नहीं है। वह प्रथम है और जो शिक्षा मनुष्य के सृजन की शिक्षा न होकर उसके

संहार का कारण बनती है उसे शिक्षा कैसे कहा जा सकता है ? शिक्षा का अर्थ है सदिच्छा, सद्‌भाव का प्रसार करना। एक ऐसे ज्ञान का विस्तार शिक्षा-तत्व में निहित है जो व्यष्टि के माध्यम से समष्टि के कल्याण का केन्द्र बने। तकनीकी ज्ञान शिक्षा का प्रधान अंग कभी नहीं होना चाहिए, वह गौण रहना चाहिए। मानवीय मूल्यों की स्थापना ही शिक्षा का केन्द्रीय तत्व है। तक-नीकी ज्ञान से उपार्जित वस्तुएँ जीवन यापन का साधन हो सकती हैं, साध्य नहीं, साध्य तो मनुष्य स्वयं है। इस साध्य की प्राप्ति के लिए ही शिक्षा उसका एक शस्त्र है, एक साधन है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति में हुआ यह है कि जो साध्य है वह साधन बन गया है और जो साधन है वह साध्य। इस प्रकार साधन को साध्य के ऊपर रखना घातक सिद्ध हुआ है। भौतिक शिक्षा में साधन साध्य बन जाते हैं और आध्यत्मिक शिक्षा में साधन साधन रहते हैं और साध्य साध्य। यदि आवश्यकता पड़े एवं कोई अन्य विकल्प शेष न रहे तो सच्ची शिक्षा साधनों का परित्याग कर सकती है, लेकिन साध्य का नहीं। उसकी दृष्टि में वे हर साधन सम्यक् है जो जीवन के चरम साध्य की उपलब्धि में सहयोगी है। उसके विपरीत पड़ते ही वे व्यर्थ और त्याज्य हो जाते हैं।

मानव की सम्यक् शिक्षा मूलतः उसके विवेक और उसकी भावनाओं की शिक्षा होगी। विवेक जागृत और शक्तिशाली हो तथा भावनाएँ संयमित और शुभ। विवेक के जागृत होते ही वासनाएँ अनिवार्यतः उसकी अनुगामी हो जाती हैं। फिर श्रेय ही प्रेम हो जाता है। ऐसा जीवन ही यज्ञपूर्ण है। शिक्षा का लक्ष्य ऐसा ही जीवन है।

कृष्ण की अनासक्ति, बुद्ध की उपेक्षा, महावीर की वीतरागता, क्राइस्ट की तटस्थता

क्राइस्ट की तटस्थता और बुद्ध की उपेक्षा, महावीर की वीतरागता और कृष्ण की अनासक्ति, इनमें बहुत-सी समानताएँ हैं। लेकिन बुनियादी भेद भी है। समानता अंत पर है, उपलब्धि पर है; भेद मार्ग में है। अंतिम क्षण में ये चारों बातें एक ही जगह पहुँचा देती हैं। लेकिन चारों के रास्ते बड़े अलग-अलग हैं। जीसस जिसे तटस्थता कहते हैं, बुद्ध जिसे उपेक्षा कहते हैं, इनमें बड़ी गहरी समानता है। यह जगत जैसा है, इस जगत की धाराएँ जैसी हैं, इस जगत के अंतर्द्वन्द जैसे हैं, इस जगत में भेद और विरोध जैसे हैं—उनके प्रति कोई तटस्थता हो सकती है। लेकिन तटस्थता कभी भी प्रसन्नता नहीं हो सकती। तटस्थता बहुत गहरे में उदासी बन जायगी। इसलिए जीसस उदास हैं और अगर वे किसी आनन्द को पाते भी हैं, तो वह इस उदासी के रास्ते से ही उन्हें उपलब्ध

होता है। लेकिन उसका पूरा रास्ता उदास है। वे जीवन के पथ पर गीत गाते हुए नहीं निकलते। तटस्थता उदासी बन ही जायगी। और जीसस की तटस्थता बहुत उदासी बन गई है। अगर मैं न यह चुनूं, न वह चुनूं, अगर कोई चुनाव न हो तो मेरे भीतर की बहनेवाली सारी धाराएँ रुक जायँगी। नदी न पूरब बहे, न पश्चिम बहे, न दक्षिण बहे, न उत्तर बहे, तटस्थ हो जाय तो वह उदास तालाब बन जायगी। तालाब भी सागर तक पहुँच जाता है लेकिन नदी के रास्ते से नहीं, सूर्य की किरणों के रास्ते से पहुँचता है। लेकिन नदी, जो बीच का रास्ता नाचते हुए, गीत गाते हुए तय करती है वह भाग्य तालाब का नहीं है। तालाब सूखता है धूप में, गर्मी में उत्तप्त होता है, उड़ता है, भाप बनता है, बादल बनता है। सागर तक पहुँच जाता है। लेकिन नदी की मुदिता, उसकी प्रफुल्लता, उसकी 'एक्सटैसी' तालाब को नहीं मिलती। वह उदासी स्वाभाविक है। सूरज की किरणों में तपना और भाप बनना उदासी हो सकती है। तालाब नाचता हुआ बादलों पर नहीं चढ़ता पर नदी नाचती हुई सागर में उतर जाती है और तालाब सीधा भी सागर तक नहीं पहुँचता, बीच में भाप बनता है, फिर पहुँचता है। तो जीसस एक उदास बादल की तरह हैं जो आकाश में मँडराता है और सागर की यात्रा करता है। नाचती हुई नदी की तरह नहीं हैं।

बुद्ध और जीसस की जीवन-व्यवस्था में थोड़ी निकटता है; लेकिन एकदम निकटता नहीं है। क्योंकि बुद्ध और तरह के व्यक्ति हैं। जहाँ जीसस की तटस्थता जीसस को उदास कर जाती है वहाँ बुद्ध की उपेक्षा बुद्ध को सिर्फ शांत कर जाती है, उदास नहीं। इतना फर्क है। बुद्ध की उपेक्षा सिर्फ शांत कर जाती है। न वहाँ उदासी है जीसस-जैसी, न वहाँ कृष्ण-जैसा नाचता हुआ गीत है, न महावीर-जैसा झरता हुआ अप्रकट सुख और आनन्द है। बुद्ध शांत हैं, तटस्थ नहीं हैं। तटस्थता तो उदासी ले ही आयगी। वे सिर्फ तटस्थ नहीं हैं, वे उपेक्षा को उपलब्ध हैं। पाया है कि यह भी व्यर्थ है, पाया है कि वह भी व्यर्थ है। इसलिए उत्तेजित होने का उन्हें कोई उपाय नहीं रहा है। उन्हें कोई भी आल्टरनेटिव, कोई भी विकल्प उत्तेजित नहीं कर पाता। सब विकल्प समान हो गए हैं। जीसस के लिए तटस्थता है। विकल्प समान हैं, पर जीसस अभी भी कहेंगे, यह ठीक है और वह गलत है। यह करो और वह मत करो। यद्यपि वे दोनों से तटस्थ हैं, लेकिन बहुत गहरे में उनका चुनाव जारी है। बुद्ध

कृष्ण की अनासक्ति, बुद्ध की उपेक्षा, महावीर की वीतरागता, क्राइस्ट की तटस्थता

क्राइस्ट की तटस्थता और बुद्ध की उपेक्षा, महावीर की वीतरागता और कृष्ण की अनासक्ति, इनमें बहुत-सी समानताएँ हैं। लेकिन बुनियादी भेद भी है। समानता अंत पर है, उपलब्धि पर है; भेद मार्ग में है। अंतिम क्षण में ये चारों बातें एक ही जगह पहुँचा देती हैं। लेकिन चारों के रास्ते बड़े अलग-अलग हैं। जीसस जिसे तटस्थता कहते हैं, बुद्ध जिसे उपेक्षा कहते हैं, इनमें बड़ी गहरी समानता है। यह जगत जैसा है, इस जगत की धाराएँ जैसी हैं, इस जगत के अंतर्द्वन्द जैसे हैं, इस जगत में भेद और विरोध जैसे हैं—उनके प्रति कोई तटस्थता हो सकती है। लेकिन तटस्थता कभी भी प्रसन्नता नहीं हो सकती। तटस्थता बहुत गहरे में उदासी बन जायगी। इसलिए जीसस उदास हैं और अगर वे किसी आनन्द को पाते भी हैं, तो वह इस उदासी के रास्ते से ही उन्हें उपलब्ध

होता है। लेकिन उसका पूरा रास्ता उदास है। वे जीवन के पथ पर गीत गाते हुए नहीं निकलते। तटस्थता उदासी बन ही जायगी। और जीसस की तटस्थता बहुत उदासी बन गई है। अगर मैं न यह चुनूँ, न वह चुनूँ, अगर कोई चुनाव न हो तो मेरे भीतर की बहनेवाली सारी धाराएँ रुक जायेंगी। नदी न पूरब बहे, न पश्चिम बहे, न दक्षिण बहे, न उत्तर बहे, तटस्थ हो जाय तो वह उदास तालाब बन जायगी। तालाब भी सागर तक पहुँच जाता है लेकिन नदी के रास्ते से नहीं, सूर्य की किरणों के रास्ते से पहुँचता है। लेकिन नदी, जो बीच का रास्ता नाचते हुए, गीत गाते हुए तय करती है वह भाग्य तालाब का नहीं है। तालाब सूखता है धूप में, गर्मी में उत्तप्त होता है, उड़ता है, भाप बनता है, बादल बनता है। सागर तक पहुँच जाता है। लेकिन नदी की मुदिता, उसकी प्रफुल्लता, उसकी 'एक्सटैसी' तालाब को नहीं मिलती। वह उदासी स्वाभाविक है। सूरज की किरणों में तपना और भाप बनना उदासी हो सकती है। तालाब नाचता हुआ बादलों पर नहीं चढ़ता पर नदी नाचती हुई सागर में उतर जाती है और तालाब सीधा भी सागर तक नहीं पहुँचता, बीच में भाप बनता है, फिर पहुँचता है। तो जीसस एक उदास बादल की तरह हैं जो आकाश में मँडराता है और सागर की यात्रा करता है। नाचती हुई नदी की तरह नहीं हैं।

बुद्ध और जीसस की जीवन-व्यवस्था में थोड़ी निकटता है; लेकिन एकदम निकटता नहीं है। क्योंकि बुद्ध और तरह के व्यक्ति हैं। जहाँ जीसस की तटस्थता जीसस को उदास कर जाती है वहाँ बुद्ध की उपेक्षा बुद्ध को सिर्फ शांत कर जाती है, उदास नहीं। इतना फर्क है। बुद्ध की उपेक्षा सिर्फ शांत कर जाती है। न वहाँ उदासी है जीसस-जैसी, न वहाँ कृष्ण-जैसा नाचता हुआ गीत है, न महावीर-जैसा झरता हुआ अप्रकट सुख और आनन्द है। बुद्ध शांत हैं, तटस्थ नहीं हैं। तटस्थता तो उदासी ले ही आयगी। वे सिर्फ तटस्थ नहीं हैं, वे उपेक्षा को उपलब्ध हैं। पाया है कि यह भी व्यर्थ है, पाया है कि वह भी व्यर्थ है। इसलिए उत्तेजित होने का उन्हें कोई उपाय नहीं रहा है। उन्हें कोई भी आल्टरनेटिव, कोई भी विकल्प उत्तेजित नहीं कर पाता। सब विकल्प समान हो गए हैं। जीसस के लिए तटस्थता है। विकल्प समान हैं, पर जीसस अभी भी कहेंगे, यह ठीक है और वह गलत है। यह करो और वह मत करो। यद्यपि वे दोनों से तटस्थ हैं, लेकिन बहुत गहरे में उनका चुनाव जारी है। बुद्ध

अचुनाव को (च्वाइसलेसनेस) उपलब्ध होते हैं। बुद्ध को अगर हम ठीक से समझें तो बुद्ध के लिए न कुछ सही है न कुछ गलत है। सिर्फ चुनाव ही गलत है, और अचुनाव सही है। च्वाइस गलत है, च्वाइसलेसनेस सही है। इसलिए जीसस अपनी तटस्थता में होती, इनडिफरेंस में भी, मंदिर में जाकर कोड़ा उठा लेते हैं और सूदखोरों को कोड़े से पीट देते हैं, उनके तख्त उलट देते हैं। यहूदियों के मंदिर में, सिनागाग में पुरोहित व्याज का काम भी करते थे। हर वर्ष लोग इकट्ठे होते थे मेले में, और तब वे उन्हें उधार देते थे और सूद लेते थे। सूद की दर इतनी बढ़ गई थी कि लोग अपना मूल तो कभी चुका ही नहीं पाते थे, व्याज भी नहीं चुका पाते थे। और जिंदगी भर मेहनत करके बस इतना ही काम करते थे कि वे हर वर्ष आकर पुरोहितों को उनके व्याज का पैसा चुका जायँ। पूरे मुल्क का धन सिनागाग में इकट्ठा होने लगा। तो जीसस कोड़ा उठा लेते हैं, तख्ते उलट देते हैं सूदखोरों के। जीसस इनडिफरेंट हैं, तटस्थ हैं, लेकिन चुनाव जारी है। वे कहते हैं कि इस जगत के प्रति एक तटस्थता चाहिए। लेकिन इस जगत में अगर गलत हो रहा है, तो जीसस चुनाव करते हैं। लेकिन बुद्ध को हम हाथ में कोड़ा उठाए हुए नहीं सोच सकते। उनका कोई चुनाव नहीं है, उनका कोई चुनाव ही नहीं है। अचुनाव के कारण वे गहरी साइलेंस को, गहरी शांति को उपलब्ध हुए हैं। इसलिए बुद्ध को समझते वक्त शांति सबसे महत्वपूर्ण शब्द है। बुद्ध की प्रतिमा से जो भाव प्रकट होता है और झरता है चारों तरफ, वह शांति का है। कहना चाहिए शांति बुद्ध में मूर्तिमंत हुई है। कोई उत्तेजना नहीं है। तालाब की उत्तेजना भी नहीं है। तालाब भी कम से कम धूप की किरणों में भाप बनता है और आकाश की तरफ उड़ता है। बुद्ध इतने शांत हैं कि वे कहते हैं कि मैं सागर की तरफ जाने की उत्तेजना नहीं लेता। सागर को आना हो तो आ जाय। वे इतनी भी यात्रा करने की तैयारी में नहीं हैं। उतनी यात्रा भी तनाव है। इसलिए बुद्ध ने सागरवाची जितने भी प्रश्न हैं सबको इनकार कर दिया। कोई पूछे ईश्वर है, कोई पूछे ब्रह्म है, कोई पूछे मोक्ष है, कोई पूछे आत्मा का मरने के बाद क्या होता है ? इस तरह के जितने भी प्रश्न हैं बुद्ध उनको हँस कर टाल देते हैं। वे कहते हैं यह पूछो ही मत। क्योंकि अगर कुछ भी है तो उस तक की यात्रा पैदा होती है और यात्रा अशांति बन जाती है। वे कहते हैं—मैं जहाँ हूँ वहीं हूँ। मुझे कोई यात्रा नहीं करनी है, मुझको कोई तनाव नहीं करना है।

इसलिए अगर बुद्ध की उपेक्षा बहुत गहरे में देखें तो सिर्फ संसार की उपेक्षा नहीं है। जीसस की उपेक्षा सिर्फ संसार की उपेक्षा है, लेकिन परमात्मा का चुनाव जारी है। बुद्ध की उपेक्षा परमात्मा की भी उपेक्षा है। वे कहते हैं, परमात्मा को भी पाना है तो यह भी तो मन की डिजायर, तृष्णा और ईर्ष्या है। आखिर नदी क्यों सागर को पाना चाहे और नदी सागर को पाकर भी क्या पा लेगी ? अगर सागर में ज्यादा जल है तो मात्रा का ही फर्क पड़ता है। नदी में भी जल है, और सागर के जल में और नदी के जल में फर्क क्या है ! बुद्ध कहते हैं, हम जो हैं—हैं; और वहीं शांत हैं। इसलिए बुद्ध की उपेक्षा यात्राविहीन है। बुद्ध के चेहरे पर, बुद्ध की आँखों में यात्रा नहीं देखी जा सकती है। वे स्थिर हैं, ठहर गए हैं, वहीं हैं, जैसे कोई ताल बिलकुल शांत हो। न नदी की तरह भागता हो, न आकाश की तरफ उड़ता हो, बिलकुल शांत हो। एक लहर भी न उठती हो, एक रिपल भी पैदा न होती हो। ऐसे बुद्ध का होना है।

स्वभावतः बुद्ध की शांति निगेटिव होगी, नकारात्मक होगी। उसमें कृष्ण का प्रकट आनंद नहीं हो सकता, उसमें महावीर का अप्रकट आनंद भी नहीं हो सकता। लेकिन जो इतना शांत होगा कि जिसे सागर तक पहुँचने की इच्छा भी नहीं है, क्या वह अंततः आनंद को उपलब्ध नहीं हो जायगा ? हो जायगा। लेकिन वह बुद्ध की भीतरी दशा होगी। उनके अंतरतम में वह आनन्द का दीया जलेगा, लेकिन बाहर उनकी सारी की सारी आभा, उनका जो प्रभामंडल है, वह शांति का होगा। दीए की गहरी ज्योति जहाँ होगी वहाँ तो आनन्द होगा, लेकिन उसका प्रभामंडल सिर्फ शांति का होगा। बुद्ध से हिलते-डुलते सोचना भी कठिन मालूम पड़ता है। बुद्ध की कोई चिंतना करे, सोचे तो ऐसा भी नहीं लगता कि यह आदमी उठकर चला भी होगा। उनकी प्रतिमा देखें तो ऐसी लगती है जैसे यह आदमी सदा बैठा ही रहा हो। यह उठा भी होगा, हिला भी होगा, डुला भी होगा, इसने पैर भी उठाया होगा, इसने ओठ ही खोला होगा, यह बोला भी होगा, ऐसा भी मालूम नहीं पड़ता। बुद्ध की प्रतिमा 'जस्ट स्टिलनेस' की प्रतिमा है जहाँ सब चीजें ठहर गई हैं, जहाँ कोई मूवमेंट नहीं है, किसी तरह की कोई गति नहीं है। तो बुद्ध की आभा जो है वह शान्ति की है। फिर बुद्ध की उपेक्षा समस्त तनावों की उपेक्षा है। चाहे वे तनाव मोक्ष के ही क्यों न हों। कोई आदमी मोक्ष ही क्यों न पाना चाहे, बुद्ध कहेंगे, कि पागल

हो ! कहीं मोक्ष है ? कोई कहे आत्मा को पाना है, तो बुद्ध कहेंगे, कि पागल हो ! कहीं आत्मा है ? असल में जब तक पाना है तब तक बुद्ध कहेंगे, तुम पा न सकोगे । तुम उस जगह खड़े हो जाओ जहां पाना ही नहीं है। तब तुम पा लोगे । लेकिन यह बात वे कभी साफ कहते नहीं हैं । क्योंकि अगर वे इतना भी कहें कि तब तुम पा लोगे, तो हम तत्काल पाने को दौड़ पड़ेंगे । तो बुद्ध सिर्फ निषेध करते जाते हैं । वे कहते हैं न परमात्मा है, न आत्मा है, न मोक्ष है, कोई भी नहीं है । है ही नहीं कुछ । क्योंकि जबतक कुछ है तबतक तुम पाना चाहोगे । और जबतक तुम पाना चाहोगे तबतक तुम न पा सकोगे । क्योंकि जो भी पाना है वह ठहर के, रुक के, मौन में, थिरता में, शून्य में पाना है । और तुम्हारी चाह, तुम्हारी तृष्णा तुम्हें दौड़ाती रहेगी । तृष्णा मूल है बुद्ध के लिए, और उपेक्षा सूत्र है तृष्णा से मुक्ति का । चुनो ही मत, पूछो ही मत कि कहीं जाना है । मंजिल बनाओ ही मत, मंजिल नहीं है कोई !

जीसस के लिए मंजिल है । इसलिए जगत के प्रति वे एक होली इनडिफरेंस, पवित्र तटस्थता की बात करते हैं । लेकिन परमात्मा के प्रति उनकी इनडिफरेंस नहीं हो सकती । अगर वैसा कोई इनडिफरेंस है तो वह अनहोली इनडिफरेंस होगी । वह पवित्र तटस्थता न होगी । उनकी पवित्र तटस्थता संसार के प्रति है । अगर हम जीसस से पूछें कि बुद्ध तो कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं है । कैसा परमात्मा ? कोई आत्मा नहीं । है कैसी आत्मा ? न कुछ पाने को है, न कोई पानेवाला है । इसलिए बुद्ध जो बात करते हैं वह बहुत अद्भुत है । अगर उनसे पूछो कि कोई भी नहीं है, तो वे कहते हैं यह जो हमें दिखाई पड़ रहा है सिर्फ संघटन है, सिर्फ संघात है, सिर्फ एक कम्पोजीशन है । जैसे रथ है—उसका चाक अलग कर लें, घोड़े अलग कर लें, बल्ली अलग कर लें तो फिर रथ पीछे नहीं बचता ! रथ सिर्फ एक जोड़ है । ऐसे ही तुम भी एक जोड़ हो । यह सारा जगत एक जोड़ है । चीजें टूट जाती हैं पीछे कुछ भी नहीं बचता । न कोई आत्मा, न कोई परमात्मा । और यही पाने योग्य है । लेकिन यह सदा बुद्ध भीतर कहते हैं । यह कभी बाहर नहीं कहते । इसलिए जो बहुत गहरे समझ सकते हैं वही समझ पाते हैं; अन्यथा बुद्ध के पास से तृष्णालु व्यक्ति सभी लौट जाते हैं, जिसको कुछ भी पाना है । वह कहते है यह आदमी व्यर्थ है । इसके पास पाने को कुछ नहीं है शांत होने को हम नहीं आए हैं, हम कुछ पाने को आए हैं । और बुद्ध उनपर हँसते हैं । क्योंकि वे कहते हैं शांत होकर

ही पाया जा सकता है। वह जो परमात्मा है, शांत होकर ही पाया जा सकता है। वह जो आत्मा है, उसे शांत होकर ही पाया जा सकता है। वह जो मोक्ष है, तुम उसको लक्ष्य मत बनाओ। तुम अगर मुझसे पूछोगे मोक्ष है ? और मैं कहूँ—है, तो तुम तत्काल लक्ष्य बना लोगे। और लक्ष्य की तरफ दौड़ता आदमी कभी शान्त नहीं होता है। इसलिए बुद्ध की अपनी तकलीफ है। उनकी उपेक्षा शान्ति को ले जाती है—इतनी गहरी शान्ति में जहाँ कोई यात्रा ही नहीं है।

महावीर की वीतरागता, बुद्ध की शान्ति से मेल खाती है थोड़ी दूर तक। क्योंकि इस जगत में वे भी उपेक्षा के पक्ष में हैं। और थोड़ी दूर तक महावीर की वीतरागता जीसस से मेल खाती है। क्योंकि उस जगत में मोक्ष के प्रति उनका चुनाव है। महावीर मोक्ष के प्रति अचुनाव में नहीं हैं। क्योंकि महावीर कहेंगे, अगर मोक्ष भी नहीं है तो फिर शांति होने का प्रयोजन ही क्या है ? फिर अशांत होने में हर्ज भी क्या है ? अगर कुछ पाने को ही नहीं है तो फिर चुप और मौन बैठने का प्रयोजन भी क्या है ? महावीर कहेंगे कि सब छोड़ा जाय, तो कुछ पाने को है; और जो पाने को है उसी के लिए सब छोड़ा जा सकता है। इसलिए मोक्ष के प्रति महावीर की उपेक्षा नहीं है। वीतरागता उनकी, इस जगत का जो द्वन्द्व है, उसके पार ले जानेवाली है, निर्द्वन्द्व की उपलब्धि का मार्ग है। लेकिन महावीर की वीतरागता किसी उपलब्धि का मार्ग है, बुद्ध की उपेक्षा अनुपलब्धि का द्वार है जहाँ सब शून्य हो जायगा और सब खो जायगा। बुद्ध का संन्यास एक अर्थ में पूर्ण है। उसमें परमात्मा की भी माँग नहीं है। महावीर के संन्यास में मोक्ष की जगह है। महावीर यह कहते हैं कि संन्यास संभव ही नहीं है, अगर मोक्ष नहीं है; तो फिर सब किस लिए ? क्योंकि महावीर का चिंतन बड़ा वैज्ञानिक है। महावीर कहते है कि कार्य-कारण बिना कुछ होता ही नहीं। इसलिए वे बुद्ध से राजी नहीं होंगे कि हम सिर्फ शांत हो जायँ बिना किसी वजह के। महावीर कहते हैं, अशांत होने की भी वजह होती है और शांत होने की भी वजह होती है। वे कृष्ण से भी राजी न होंगे इस बात के लिए कि हम सब कुछ स्वीकार कर लें। क्योंकि महावीर कहते हैं, अगर हम सब कुछ स्वीकार कर लेते हैं तो हम आत्मवान ही नहीं रह जाते हैं, हम तो पदार्थ की तरह हो जाते हैं। आत्मवान होने का अर्थ है डिसक्रिमिनेशन। महावीर कहते हैं, आत्मवान होने का अर्थ है विवेक—यह ठीक है, और यह गलत है, इस

बात का विवेक ही आत्मवान होने का अर्थ है। और जो गलत है उसे छोड़ते जाना है। राग भी गलत है और विराग भी गलत है, इसलिए दोनों को छोड़ देना है और वीतरागता को पकड़ लेना है। महावीर के लिए वीतरागता उपलब्धि है, और वीतरागता से मोक्ष है। तो महावीर सिर्फ शांत ही नहीं हैं- शांत तो हैं ही, लेकिन आनंदित भी हैं। मोक्ष की उपलब्धि की किरणें उनके भीतर ही नहीं फैलतीं, उनके शरीर के चारों ओर नाचने लगती हैं। इसलिए अगर महावीर और बुद्ध को साथ-साथ खड़ा करें तो बुद्ध बिलकुल पैसिव साइलेंस में हैं, जैसे हों ही नहीं। महावीर ऐक्टिव साइलेंस में हैं, बहुत होकर हैं। बहुत मजबूती से हैं। हां, उनके होने में चारों तरफ आनन्द की प्रखरता है। लेकिन अगर कृष्ण के पास महावीर को खड़ा करें तो महावीर का आनन्द भी साइलेंट मालूम पड़ेगा, शांत मालूम पड़ेगा, और कृष्ण का आनंद आंदोलित मालूम पड़ेगा। कृष्ण नाच सकते हैं, महावीर नाच नहीं सकते। अगर महावीर के नाच को देखना है तो उनकी शांति और मौन को उनकी थिरता में ही देखना होगा। वह दिखाई पड़ सकता है उनके रोयें-रोयें से, उनकी साँस-साँस से, उनकी आँखों के हिलने-डुलने से, उनके चलने से। सब तरफ से उनका आनन्द दिखाई पड़ेगा; लेकिन वे नाच नहीं सकते। यह नाच देखना पड़ेगा। यह इनडाइरेक्ट है, यह परोक्ष है। तो महावीर की वीतरागता प्रकट रूप से आनंद को घोषित करती है। इसलिए महावीर की प्रतिमा और बुद्ध की प्रतिमा में वही फर्क है। महावीर की प्रतिमा में आनन्द प्रकट होता मालूम पड़ेगा। बुद्ध एकदम भीतर चले गए हैं, उनके बाहर कुछ जाता हुआ मालूम नहीं पड़ता। वह बिलकुल ऐसे हो गए हैं जैसे 'न हों'। महावीर ऐसे हो गए हैं जैसे 'हों'। महावीर स्वयं हो गए हैं, जैसे पूरी तरह के हैं। उनके अस्तित्व की घोषणा समग्र है, इसलिए महावीर ईश्वर को इनकार कर देते हैं लेकिन आत्मा को इनकार नहीं कर पाते। महावीर कह देते हैं कोई परमात्मा नहीं है- हो भी कैसे सकता है? मैं ही परमात्मा हूँ। इसलिए महावीर कहते हैं, आत्मा ही परमात्मा है। तुम सब परमात्मा हो, कोई और अलग परमात्मा नहीं है। यह घोषणा उनकी प्रगाढ़ आनंद की एक्सटेसी से निकलती है। हर्षोन्माद में वे यह घोषणा करते हैं कि मैं ही परमात्मा हूँ। कोई और ऊपर परमात्मा नहीं है। महावीर कहते हैं, अगर मुझसे ऊपर कोई भी परमात्मा है तो फिर मैं कभी पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हो पाऊँगा। स्वतंत्रता की फिर कोई संभावना न

रही। कोई एक परमात्मा ऊपर बैठा ही है । अगर मेरे ऊपर एक नियंता है, जिसके कानून से जगत चलता है, तो मेरी मुक्ति का क्या अर्थ है ? कल अगर वह सोच ले कि वापस भेज दो इस मुक्त आदमी को संसार में, तो मैं क्या कर सकूँगा ? इसलिए महावीर कहते हैं—स्वतंत्रता की गारंटी सिर्फ इसमें है कि परमात्मा न हो। परमात्मा और स्वतंत्रता दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते हैं। इसलिए परमात्मा को इनकार कर देते हैं; लेकिन आत्मा को बड़ी प्रगाढ़ता से घोषित करते हैं कि आत्मा ही परमात्मा है। इसलिए महावीर में प्रकट आनन्द दिखाई पड़ता है। वह उनकी वीतरागता है। वीतरागता में वे बुद्ध से सहमत हैं अचुनाव के लिए। राग और विराग में चुनाव नहीं करना है; लेकिन संसार और मोक्ष में चुनाव नहीं करना है इस बात में वे बुद्ध से राजी नहीं हैं । वे कहते हैं--संसार और मोक्ष में तो चुनाव करना ही है। इस मामले में वे जीसस से राजी हैं। इस मामले में जीसस की तटस्थता उनके करीब आती है। लेकिन जीसस का परमात्मा परलोक में है और मरने के बाद ही जीसस प्रसन्न हो सकते हैं, जब परमात्मा से मिल जायँ। महावीर का कोई परमात्मा परलोक में नहीं है। महावीर का परमात्मा भीतर है और वह यहीं पाकर प्रसन्न हैं। इसलिए जीसस उदास हैं पर महावीर उदास नहीं हैं।

कृष्ण की अनासक्ति का भी तीनों से कुछ तालमेल है और कुछ बुनियादी भेद भी है। कृष्ण को अगर हम इन तीनों के जोड़ से कुछ ज्यादा कहें तो कठिनाई नहीं है। कृष्ण की अनासक्ति उपेक्षा नहीं है। कृष्ण कहते हैं—जिसके प्रति उपेक्षा हो गई उसके प्रति हम अनासक्त नहीं हो सकते। क्योंकि उपेक्षा भी विपरीत आ सकती है। रास्ते से मैं गुजरा और मैंने आपकी तरफ देखा ही नहीं। देखने में भी एक आसक्ति है, न देखने में भी एक आसक्ति है। सिर्फ विपरीत आसक्ति है, कि नहीं देखूँगा। और फिर कृष्ण कहते हैं—उपेक्षा किसके प्रति ? क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। जिसके प्रति भी उपेक्षा हुई, वह परमात्मा ही है। यह जगत पूरा का पूरा ही अगर परमात्मा है, तो उपेक्षा किसके प्रति ? और उपेक्षा करेगा कौन ? और जो उपेक्षा करेगा वह अहंकार से मुक्त कैसे होगा ? उपेक्षा करेगा कौन ? मैं करूँगा उपेक्षा ? बुरे की उपेक्षा करूँगा अच्छे के लिए, संसार की उपेक्षा करूँगा मोक्ष के लिए ? करेगा कौन ? और करेगा किसकी ? इसलिए उपेक्षा जैसे नकारात्मक और कंडेमनेटरी, निंदात्मक शब्द का उपयोग कृष्ण नहीं कर सकते। तटस्थता का भी

उपयोग वे नहीं कर सकते। क्योंकि कृष्ण कहेंगे परमात्मा खुद भी तटस्थ नहीं है, तो हम कैसे तटस्थ हो सकते हैं? तटस्थ हुआ नहीं जा सकता। कृष्ण कहते हैं—हम सदा धारा में हैं, तट पर हो नहीं सकते। जीवन एक धारा है। जीवन का कोई तट है ही नहीं जिसपर हम खड़े हो जायँ, और तटस्थ हो जायँ, और हम कह दें कि हम धारा के बाहर हैं। हम जहाँ भी हैं धारा के भीतर हैं; हम जहाँ भी हैं जीवन में हैं; हम जहाँ भी हैं अस्तित्व में हैं। तट पर हम खड़े हो नहीं सकते। होना ही—अस्तित्व ही–धारा है। इसलिए तटस्थ हम होंगे कैसे? हाँ, नदी के किनारे हम तट पर खड़े हो जाते हैं। नदी बहती जाती है। हम तट पर खड़े रहते हैं। लेकिन जीवन की ऐसी कोई नदी नहीं है जिसके किनारे हम खड़े हो जायँ। जीवन की नदी का कोई किनारा ही नहीं है, तो तटस्थता शब्द का प्रयोग वे नहीं कर सकते। उपेक्षा शब्द का वे प्रयोग नहीं कर सकते। वीतराग शब्द का वे इसलिए प्रयोग नहीं कर सकते, क्योंकि वे यह कहते हैं कि अगर राग बुरा है, अगर विराग बुरा है तो है ही क्यों? बुरे का अस्तित्व भी कैसे हो सकता है? या तो हम ऐसा मानें कि जगत में दो शक्तियाँ हैं—एक शुभ की, परमात्मा की शक्ति है, एक अशुभ की, शैतान की शक्ति है। जैसा कि जरथुस्त्र मानते हैं, जैसा कि ईसाई मानते हैं, जैसा कि मुसलमान मानते हैं। उन सबकी तकलीफ यही है कि अगर जगत में अशुभ है तो फिर अशुभ की शक्ति हमें अलग करनी पड़ेगी परमात्मा से। अन्यथा परमात्मा फिर अशुभ का भी स्रोत है। वह जरथुस्त्र नहीं सोच पाए, मोहम्मद नहीं सोच पाए। जीसस भी राजी नहीं हैं। इसलिए शैतान, डेविल, अशुभ के लिए हमें कोई जगह बनानी पड़ती है। कृष्ण यह कहते हैं कि अगर अशुभ भी है, अलग भी है, तो भी क्या वह परमात्मा की आज्ञा से है, या परमात्मा की आज्ञा के बिना है? उसके होने में भी परमात्मा के सहारे की जरूरत है, या वह स्वतंत्र रूप से है? तो वह ठीक परमात्मा के समतुल शक्ति हो गई। फिर इस जगत में शुभ कभी भी फलित नहीं हो सकता। फिर वह हारेगा भी क्यों? हारने की जरूरत भी क्या है? फिर इस जगत में दो परमात्मा होंगे। और इस जगत में दो परमात्मा की कल्पना असंभव है। इसलिए कृष्ण कहते हैं—शक्ति एक है और उसी शक्ति से सब उठता है। जिस शक्ति से स्वस्थ फल लगता है वृक्ष में, उसी शक्ति से सड़ा हुआ फल भी लगता है। उसके लिए किसी अलग शक्ति के होने की जरूरत नहीं है। और जिस चित से बुराई पैदा

होती है उसी चित्त से भलाई पैदा होती है। उसके लिए अलग शक्ति की जरूरत नहीं है। शुभ और अशुभ एक ही शक्ति के रूपांतरण हैं। अंधकार और प्रकाश एक ही शक्ति के रूपांतरण हैं। इसलिए कृष्ण यह कहते हैं कि मैं दोनों को छोड़ने को नहीं कहता। दोनों को उनकी समग्रता में जीने को कहता हूँ।

अनासक्ति का अर्थ, एक के पक्ष में दूसरे की आसक्ति नहीं, शुभ के पक्ष में अशुभ की आसक्ति नहीं। आसक्ति ही नहीं, चुनाव ही नहीं और जीवन जैसा है वह समग्र जीवन की पूर्ण स्वीकृति और इस समग्र जीवन के प्रति स्वयं का पूर्ण समापन, पूर्ण समर्पण। 'आसक्ति' का अर्थ यह है कि मैं अलग हूँ ही नहीं, एक ही हूँ इस जगत से। कौन चुने, किसको चुने ? जगत जैसा करवा रहा है वैसा मैं लहर की तरह सागर में बहा जा रहा हूँ। मैं अलग हूँ ही नहीं। इसमें कुछ समानताएँ मिलेंगी। कृष्ण, बुद्ध-जैसी शांति को उपलब्ध हो जायँगे, क्योंकि कुछ उन्हें पाना नहीं है। जो भी है, वह पाया हुआ है। वे महावीर-जैसे वीत-राग दिखायी पड़ेंगे किन्हीं क्षणों में, क्योंकि उनके आनंद का कोई पारावार नहीं है। वे जीसस-जैसे परमात्मा की घोषणा करते दिखायी पड़ेंगे, इसलिए नहीं कि इस लोक में और ऊपर के लोक में परमात्मा कहीं बैठा है, बल्कि सब कुछ परमात्मा ही है। कृष्ण की अनासक्ति समग्र समर्पण है, मैं का 'न' हो जाना है, 'मैं' है ही नहीं यह जानना है। इसके जान लेने के बाद, जो हो रहा है वह हो रहा है ! इसमें कोई उपाय ही नहीं। इसमें हम कुछ कर सकते हैं, ऐसा है ही नहीं है। इसमें हमारे द्वारा कुछ हो सकता है, इसकी कोई संभावना ही नहीं है। कृष्ण अपने को एक लहर की तरह सागर में देखते हैं। कोई चुनाव नहीं करना है, इसलिए कोई आसक्ति नहीं है। अनासक्ति की यह स्थिति अगर ठीक से हम समझें तो स्थिति नहीं है, स्टेट्स आफ माइंड नहीं है, यह समस्त स्टेट्स आफ माइंड को छोड़ देना है। समस्त स्थितियों को छोड़ देना है और अस्तित्व के साथ एक हो जाना है। इसमें कृष्ण वहीं पहुँच जाते हैं जहाँ अपनी-अपनी सँकरी गलियों से महावीर पहुँच जाते हैं, जीसस पहुँच जाते हैं, बुद्ध पहुँच जाते हैं। लेकिन उनके चुनाव पगडंडियों के हैं। कृष्ण का चुनाव राजपथ का है। पगडंडियों वाला भी पहुँच जाता है। पगडंडियोंकी सुविधाएँ भी हैं, असुविधाएँ भी हैं। राजपथ की सुविधाएँ हैं, असुविधाएँ भी हैं।

व्यक्तिगत चुनाव है। कुछ लोग हैं जो पगडंडियों पर ही चलना पसन्द करेंगे। उन्हें चलने का मजा ही तब आयगा जब पगडंडी होगी, जब वे अकेले

होंगे, जब न कोई आगे होगा, न कोई पीछे होगा। जब भीड़ के धक्के न होंगे, और जब प्रतिपल उन्हें रास्ते खोजने पड़ेंगे घने जंगल में, तभी उनकी चेतना को चुनौती होगी। वह पगडंडियों को खोज कर ही पहुँचेंगे। कुछ लोग हैं जो पगडंडियों पर चलना बिलकुल आनंदपूर्ण न पायँगे। अकेला होना उन्हें भारी पड़ जायगा। सबके साथ होना ही उनका होना है, सबके साथ ही उनका आनंद है। आनंद उनके लिए सह-जीवन, सहयोग में, साथ में हैं, संग में हैं। राजपथ पर चलेंगे। निश्चित ही, पगडंडियों पर चलनेवाले उदास चित्त ही चल सकते हैं। राजपथ पर चलनेवाले उदासी से चलेंगे तो पगडंडियों पर धक्का दे दिए जायँगे। राजपथ पर, जहाँ लाखों लोग चलेंगे, वहाँ नाचते हुए ही चला जा सकता है, वहाँ गीत गाते हुए ही चला जा सकता है। पगडंडियों पर चलनेवाले शांति से चल सकते हैं, राजपथ पर चलनेवालों पर अशांति के बादल भी आते रहेंगे। उनको उसके लिए भी राजी होना पड़ेगा। यही उनकी शांति होगी। पगडंडीं पर नाचनेवाले अपनी निपट निजता के आनंद में तल्लीन हो सकते हैं। राजपथ पर चलनेवालों को दूसरों के सुख-दुख में भागीदार भी होना पड़ेगा। यह सब भेद होंगे। लेकिन कृष्ण, जैसा मैंने कहा, मल्टी डाइमें-शनल हैं। उनका चुनाव राजपथ का है। और ठीक से अगर हम समझें तो परमात्मा तक पहुँचने का कोई एक मार्ग नहीं बन सकता है कि वह परमात्मा तक पहुँचा दे। परमात्मा तक पहुँचने के लिए कोई बना हुआ मार्ग नहीं है। सब अपनी तरह से, अपने ढंग से पहुँच सकते हैं। पहुँचने पर, यात्रा एक ही मंजिल पर पूरी हो जाती है—उनकी भी, जो वीतरागता से जाते हैं, उनकी भी, जो तटस्थता से जाते हैं, उनकी भी, जो उपेक्षा से जाते हैं, उनकी भी, जो आनन्द से जाते हैं।

मंजिल एक है, रास्ते अनेक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को, उसके जो अनुकूल है, उसे चुन लेना चाहिए। उसे इसकी बहुत चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि कौन गलत है, कौन सही है। उसे जानना चाहिए कि उसके अनुकूल, उसके स्वभाव के अनुकूल क्या है।

व्यक्ति को शांति और समाज को क्रांति

कबीर एक गाँव से गुजरते थे। गाँव के एक झोंपड़े पर खड़े हो वे रोने लगे। एक औरत आटा पीसती थी। कबीर रोने लगे और अपने साथियों से कहने लगे कि चक्कीच लती देखकर मुझे आँसू आ गए, क्योंकि चक्की के दो पाटों के बीच जो भी पड़ जाता है, वह नष्ट हो जाता है। कबीर के साथियों में उनका बेटा भी था। वह कबीर को रोते देखकर हँसने लगा। उसने कहा कि जो दो पाटों के बीच पड़ जाता है, वह नष्ट तो हो ही जाता है, लेकिन आपने खयाल नहीं किया कि चक्की की कील के पास जो गेहूँ के दाने पहुँच जाते हैं, जो कील का सहारा ले लेते हैं, उन्हें चक्की के पाट पीस नहीं पाते, और वे बच जाते हैं। जिन्दगी बहुत अनूठी है। वहाँ पिस जाने की सुविधा भी है और बच जाने का मार्ग भी है। जिन्दगी के दो पाट हैं, लेकिन जिन्दगी में एक कील भी

है, जो उसका सहारा ले लेता है उसका नष्ट होना असम्भव है। चक्की को चलते आपने भी देखा होगा। न आप रोए होंगे और न हँसे होंगे, क्योंकि आपको दिखाई भी नहीं पड़ा होगा कि जिन्दगी एक बड़ी चक्की भी है। यह खयाल भी नहीं आया होगा कि आप जीवन भर दो बड़ी पाटों के बीच पिसते हैं। बहुत कम सौभाग्यशाली लोग हैं, जो उस कील का सहारा ले लेते हैं, जहाँ पिसना बंद हो जाता है और पहुँचना शुरू हो जाता है, जहाँ मौत समाप्त हो जाती है और अमृत के द्वार खुल जाते हैं।

मैंने कबीर की चक्की से अपनी बात शुरू करनी चाही है। पहली तो यह कि जिन्दगी एक विरोध, एक पहेली है। जिन्दगी उलटी चीजों से बनी हुई है। आकाश की तरफ जाता है वृक्ष। लेकिन हमें खयाल भी नहीं होता कि आकाश की तरफ जाते हुए वृक्ष के प्राण उन जड़ों में छिपे हुए हैं, जो पाताल की तरफ जा रही हैं। वृक्ष उनके ऊपर जीता है, जो उलटी तरफ जा रही हैं। वृक्ष खोज रहा है आकाश को और जड़ें खोज रही हैं पाताल को। जितना ऊँचा वृक्ष होगा, उतने ही नीचे जड़ें होंगी। ऊँचे वृक्ष के लिए जड़ों का नीचे चला जाना जरूरी है। वृक्ष दिखाई पड़ता है और जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं। वृक्ष फैलता है, प्रकट होता है; जड़ें छिपती हैं, अप्रकट रहती हैं। अप्रकट जड़ों पर प्रकट वृक्ष रहता है। बड़ी उलटी दुनिया है! रास्ते पर चलते हम देखते हैं बैलगाड़ी को। चाक घूमता है जोर से, कील खड़ी रहती है, जरा भी नहीं घूमती। लेकिन उस खड़ी कील पर ही चाक के घूमने का अस्तित्व निर्भर है। अगर कील भी घूम जाय तो चाक का घूमना उसी वक्त बंद हो जायगा। चाक गिर जायगा। कील खड़ी है, इसलिए चाक घूमता है। चाक घूम सके, इसलिए कील को घूमना नहीं पड़ता है। बड़ी उलटी दुनिया है! नहीं घूमती हुई कील पर घूमते हुए चाक का सब कुछ निर्भर है। जीवन को जितना ही हम खोजेंगे, पायेंगे जीवन एक रहस्य है। एक पहेली है, एक विरोध है। वहाँ उलटी चीजों में खिचाव है और तनाव है। पुरुष, स्त्री से आकर्पित है क्योंकि पुरुष स्त्री नहीं है। स्त्री, पुरुष के पीछे दीवानी है, क्योंकि स्त्री, पुरुष नहीं है। वे जो विद्युत् को जानते हैं वे कहते हैं कि उनके नकारात्मक विधायक छोर एक दूसरे को खींचते हैं। जीवन एक बड़ी अजीब कहानी है। एक छोर जन्म, दूसरा छोर उसकी मृत्यु है। जन्म हुआ और मृत्यु आनी शुरू हो जाती है। बड़ी उलटी है यह बात! आदमी पैदा हुआ और मरना शुरू हो गया। जिस क्षण हम पैदा

होते हैं, हम मरने की यात्रा में हैं। जन्म का दिन भी मृत्यु का दिन है। एक साँस बाहर जाती है और बाहर जा भी नहीं पाती कि दूसरी भीतर आना शुरू हो जाती है। दिन भर हम जागते हैं और रात को सो जाते हैं। अगर एक दिन न सो सकें तो जागना भी मुश्किल हो जाता है। और हम दिन भर जागे न रहें तो रात में सोना भी असम्भव है। श्रम करते हैं दिन भर, इसलिए विश्राम कर सकते हैं। श्रम और विश्राम बड़े उलटे हैं। लेकिन जो विश्राम कर लेता है, वह श्रम करने की शक्ति को बढ़ा लेता है। जो श्रम ही करता रहेगा, वह टूट जायगा, नष्ट हो जायगा। विश्राम करना भी जरूरी है। जो विश्राम ही न करेगा, वह मर जायगा। जीवन बड़ी उलटी चीजों पर खड़ा हुआ है ! आती हुई साँस और जाती हुई साँस, दोनों जुड़ी हैं। जन्म और मौत जुड़े हैं। दिन उजाले से भरा है क्योंकि रात अँधेरी है। रात अँधेरी न हो तो दिन में रोशनी न रह जायगी। इसलिए जो जानते हैं, वे कहते हैं कि जब रात बहुत अँधेरी होती है तो समझ लेना कि सुबह करीब आ गई है। रात और दिन तो उलटे हैं। रात और दिन का क्या सम्बन्ध है ? दीए की ज्योति जोर से जलने लगे तो समझ लेना कि बुझने का वक्त आ गया है। जब कोई पहाड़ की ऊँची से ऊँची चोटी पर पहुँच जाता है, तब खाई में गिरने का क्षण करीब आ जाता है। जवानी पूरे जोश में होती है तब बुढ़ापे की यात्रा शुरू हो जाती है। बड़ी अजीब है यह बात ! जो चढ़ते हैं, उनका गिरना शुरू हो जाता है। ये सारा का सारा जीवन उलटी चीजों से मिलकर बना है। जीवन की कला यह है कि हम उलटी चीजों को सम्हालने में समर्थ हो जायें। जो जीवन की कला है, वह एक ही बात पर निर्भर है, एक ही सूत्र में कि "हम उलटी चीजों को सम्हालने में समर्थ हो जायँ।"

बुद्ध का एक शिष्य था—श्रोण। वह एक बड़ा राजकुमार था। वह संन्यासी हो गया। उसने बहुत भोग भोगा था। उसके पास बड़े महल थे। फिर जब वह संन्यासी हो गया, तब बुद्ध के भिक्षु पूछने लगे कि जिसके पास सब था, उसने सब क्यों छोड़ दिया ? बुद्ध ने कहा—"तुमको पता नहीं जिन्दगी उलटी है। जिनके पास सब होता है, वे छोड़ने को उत्सुक हो जाते हैं। जिनके पास कुछ नहीं होता, वे इकट्ठा करने में पीड़ित हो जाते हैं। गरीब, अमीर होना चाहता है और अमीर, अमीर होने के बाद समझ पाता है कि गरीब होने का मजा कुछ और ही है। धनवान, धन से भागने लगते हैं और निर्धन, धन पाने

की यात्रा करते हैं। अज्ञानी सोचते हैं कि ज्ञान मिल जायगा तो न मालूम क्या मिल जायगा और जो ज्ञानी हैं, वे ज्ञान छोड़कर अज्ञानी हो जाते हैं और कहते हैं–हम कुछ भी नहीं जानते! इस आदमी के पास बहुत था, इसलिए सब छोड़कर यह भाग रहा है।" बुद्ध के भिक्षु कहने लगे—"लेकिन हमने सुना है कि यह तो फूलों के रास्तों पर चलता था और अब नंगे पैर काँटों के रास्ते पर चलना बहुत दुखद होगा।" बुद्ध ने कहा—"तुमको कुछ भी पता नहीं। तुम तो काँटों से बचते हो, वह तो काँटों की तलाश करेगा।" और यही हुआ। वह जो बहुत सुन्दर राजकुमार था, वस्त्र भी छोड़ दिए उसने। वह नंगा ही रहने लगा। दूसरे भिक्षु राजपथों पर चलते थे, वह पगडंडियों पर चलता, जिन पर काँटे और पत्थर होते। तीन महीने के भीतर उसके पैर पर घाव बन गए। दूसरे भिक्षु छाया में बैठते, श्रोण धूप में खड़ा रहता। दूसरे भिक्षु रोज भोजन करते, श्रोण दो-दो, तीन-तीन दिन बाद भोजन करता। दूसरे भिक्षु रात भर सोते, श्रोण ने सोना भी छोड़ दिया। उसकी सुन्दर देह कुँभला गई। उसकी फूल-सी आँखें मुर्झा गईं। उसके शरीर को पहचानना मुश्किल हो गया। छह महीने बाद बुद्ध, श्रोण के पास आए। उन्होंने श्रोण को कहा—"जब तुम राजकुमार थे, तब वीणा बजाने में बहुत कुशल थे। तेरी वीणा की बड़ी कीर्ति था। दूर-दूर के लोग तेरी वीणा सुनने के लिए बाहर खड़े रहते थे। दीवाल के पास भीड़ खड़ी रहती थी। एक बार मैं भी तेरी वीणा के स्वर सुनकर दो क्षण रुक गया था। श्रोण ने कहा–"हाँ याद आता है। पर किसलिए मेरी स्मृति को छेड़ते हैं?" बुद्ध ने कहा—"मैं यह पूछने आया हूँ कि वीणा के तार अगर बहुत ढीले हों, तो क्या संगीत पैदा होता है? श्रोण हँसने लगा—"कैसी बात करते हैं आप! तार ढीले होंगे तो संगीत कैसे पैदा होगा? ढीले तार से कहीं संगीत पैदा हुआ है? संगीत पैदा कर लेना तो बहुत आसान है। लेकिन तार को उस जगह ले आना चाहिए, जहाँ से संगीत पैदा होता है। उस्ताद और कला-गुरु ही उसे जानते हैं। वीणा को उस हालत में ला देना, जहाँ से वीणा बजती है, बड़ी कला की बात है। तार ढीले नहीं होने चाहिए।" बुद्ध ने कहा—"अगर तार बहुत कसे हों तब?" श्रोण कहने लगा—"तब तार टूट जाते हैं। तब संगीत पैदा नहीं होता।" तो बुद्ध ने कहा–"तो तार कैसे होने चाहिए?" श्रोण ने कहा–"उलझन में डाल दिया आपने। बड़ी कठिन बात है, उसे कहना मुश्किल है। तार ऐसे होने चाहिए—जो न कसे हों, न ढीले हों। तारों की एक अवस्था है—न जब

वे कसे होते हैं और न ढीले होते हैं, बीच में होते हैं। उस बीच को साध लेना ही कला है। फिर संगीत पैदा होता है।" बुद्ध ने कहा—"मैं चला। मैं कहने आया था कि जिस तरह वीणा के मध्य में संगीत पैदा होता है, उसी तरह जीवन की वीणा के तार वैसे होने चाहिए, जो न बहुत कसे हों, न ढीले। बहुत ढीले तार थे तेरी जीवन-वीणा के। अब तूने अपनी जीवन-वीणा के तार बहुत कस लिये। त्याग ही तेरा लक्ष्य हो गया है। जीवन-वीणा के तार ऐसे होने चाहिए कि न ढीले हों, न कसे। बीच में तारों की एक अवस्था है। वहीं से जीवन का संगीत पैदा होता है। जीवन की कला का एक ही सूत्र है। दो विरोधों के बीच में अविरोध। दो तनाओं के बीच में तनाव-मुक्ति। दो अतियों के बीच संतुलन।"

व्यक्ति को चाहिए शांति और समाज को क्रांति— यह भी दो अतियों के बीच संतुलन को साधने की बात है। दोनों में से एक को साध लेना बिलकुल आसान है। तारों को ढीला छोड़ देने में कोई कलाकार होने की जरूरत नहीं है। और तारों को कस देना कोई भी मूर्ख कर सकता है। लेकिन तारों को उस बीच में लाना हो तो अति कठिन हो जाता है। व्यक्ति का शांत हो जाना भी बहुत कठिन नहीं है। अगर व्यक्ति बाहर से आँख बन्द कर ले तो समाज से तत्क्षण शांत हो सकता है। वे जो जंगल में भाग गए लोग हैं वे इसी तरह के हैं जिन्होंने समाज से आँख बंद कर ली और शांत हो गए। **समाज से आँख बंदकर शांत हो जाना, मरने की शांति है।** आदमी मर जाता है और शांत हो जाता है। एक आदमी शराब पी लेता है और शांत हो जाता है। एक आदमी बेहोश हो जाता है, दुनियाँ का उसे पता नहीं है। सब ठीक है और शांत हो गया। हवाएँ न चलती हों तो झील को शांत होने में कोई कठिनाई है? तूफान न आते हों, बादल न गरजते हों, तो झील को शांत हो जाने में कोई कठिनाई है? और हवाएँ न आती हों, आँधियाँ न आती हों झील की छाती पर, बादल न गरजते हों, और झील अशांत होना चाहे तो कैसे अशांत हो सकती है? अगर तूफान न आते हों तो झील का शांत होना जरा भी कठिन नहीं है, अशांत होना ही मुश्किल हो जायगा। लेकिन झील पर तूफान आते हों, बादल गरजते हों और झील शांत हो सके तब जरा कला की बात है, तब जरा साधना की बात है। तब जरा जीवन के सूत्रों को समझने की बात है। समाज से आँखें बंद कर शांत हो जाने में बहुत कठिनाई नहीं है। हजारों लोग समाज

से आंखें बंदकर शांत होते रहे हैं लेकिन वह शांति मुर्दा है जो आंख बंद करके उपलब्ध होती है। पूर्व के मुल्कों ने इस तरह की शांति खोजी, इसलिए पूर्व के समाज धीरे-धीरे मरते चले गए, सड़ गए और समाप्त हो गए। भारत पूर्व के मुल्कों का अग्रणी मुल्क है। भारत के लोगों ने इस तरह की शांति खोजी, इसलिए भारत दीन हुआ, दरिद्र हुआ, गुलाम हुआ, और आज भी किसी बेहतर हालत में नहीं है। अगर पुरानी आदत से छुटकारा पाने की हम कोशिश नहीं करते तो कल भी नहीं हो सकेगा। आदमी का शांत हो जाना बहुत कठिन नहीं है। भाग जाओ जिन्दगी से और शांत हो जाओ। युद्ध के मैदान में लड़ते हुए शांत रहने में अर्थ है।

एक मुसलमान खलीफा था—उमर। सात वर्षों सेएक दुश्मन के साथ उसकी लड़ाई चलती रही। यह संघर्ष बहुत भयंकर हो गया था। किसी के जीतने की कोई उम्मीद नहीं मालूम पड़ती थी। ऐसा नहीं लगता था कि कोई निर्णायिक फैसला हो सकेगा। लेकिन सातवें वर्ष में निर्णायिक फैसला होने के करीब आ गया। हाथ में आ गया वह क्षण जब निर्णय हो सकता था। उमर ने दुश्मन को गिरा दिया युद्ध के मैदान में और उसकी छाती पर सवार हो गया। वह कंधे में बंधे हुए भाले को निकाल कर दुश्मन की छाती पर भोंकने को है कि नीचे पड़े दुश्मन ने उमर के मुंह पर थूक दिया। मरता भी तो कुछ कर सकता है। आखरी अपमान तो वह कर ही सकता था। उमर एक क्षण रुक गया और अपने भाले को वापिस रख लिया और रूमाल से मुंह पोंछ लिया। उसने नीचे पड़े दुश्मन से कहा—"दोस्त, अब लड़ाई कल सुबह फिर शुरू होगी।" लेकिन नीचे पड़ा हुआ दुश्मन कहने लगा—"पागल हो गए हो? इस मौके की तलाश में तुम सात वर्षों से थे, आज तुम्हारे पैरों के नीचे पड़ा हूं। तुम छाती पर सवार हो, मैं निहत्था हूं। मेरा हथियार छूट गया है। मेरा घोड़ा मर गया है। इस मौके को मत छोड़ो। यह मौका दुबारा आयगा, इसकी कोई उम्मीद न करो। भाले को उठा लो और मेरी छाती में भोंक दो। तुमने तो भाला उठा लिया था, फिर रोक क्यों लिया? तुम तो मारने के करीब थे।" उमर ने कहा—"मेरी जिन्दगी में हमेशा एक खयाल रहा—लड़ूंगा जरूर, लेकिन अशांत होकर नहीं। तुमने थूका और मैं अशांत हो गया। सात वर्षों से लड़ाई शांति से चल रही थी। मैं शांत था। लड़ाई बाहर की थी, भीतर की नहीं थी। एक क्षण को भी तुम्हारे प्रति मेरे मन में क्रोध न था। लड़ना

एक सिद्धान्त का था, लड़ाई एक तल पर थी, लेकिन मैं लड़ाई के बाहर था। लड़ रहा था सात वर्षों से युद्ध के मैदान में, लेकिन मैं युद्ध के मैदान में होते हुए भी युद्ध के बाहर था। मुँह पर थूक कर तुमने युद्ध के बीच मुझे खींच लिया है। मेरी भीतर की शांति डवाँडोल हो गई, मेरा निर्णय चूक गया। नहीं, अब मैं भाला नहीं उठा सकता। कल सुबह मैं शांत होकर आ सकूँगा।" लेकिन फिर दूसरे दिन लड़ाई नहीं हुई। क्योंकि ऐसे आदमी से लड़ना मुश्किल है। दुश्मन उमर के पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा—"मुझको भी तुम्हारी आँखों को देखकर ऐसा लगता था कि तुम लड़ते तो जरूर थे लेकिन तुम्हारी आँखें कहती हैं कि कोई लड़ाई नहीं है। हाँ, परीक्षा के लिए थूक कर देखा था कि आज तुम्हारी आँखें बदलती हैं या नहीं। और तुम्हारे भाले पर रुक जाना याद दिला गया कि ऐसे लोग भी हो सकते हैं जो युद्ध के मैदान में हों और युद्ध में न हों!" भागकर अशांत हो जाना आसान है। जीवन से भागकर शांत हो जाना बहुत आसान है, क्योंकि जीवन में मौके हैं जब आदमी अशांत होता है। जिन्दगी में अवसर है, जहाँ तूफान चलते हैं और आँधियाँ चलती हैं। हम भागे हुए लोगों की पूजा बहुत कर चुके। पलायनवादियों की बहुत पूजा हो चुकी। जो लड़ रहे थे, उन्होंने उनके चरण छुये जो भाग गए थे। धर्म के नाम पर भगोड़ों की पूजा हुई और जो युद्ध के मैदान में खड़े थे, अपमानित रहे। भारत में ऐसा ही हुआ। हमने शांति को भागने का पर्याय बना लिया। इसलिए हमारी जिन्दगी धीरे-धीरे युद्धों के मैदान से भागती चली गई। हम सब तरह से भाग गए, हार गए, टूट गए। इस भाग जाने, हार जाने, टूट जाने के पीछे एक बुनियादी भूल थी और वह भूल यह थी कि आदमी शांत हो सकता है जिन्दगी से भागकर। जिन्दगी से भागकर आदमी मर सकता है, शांत नहीं हो सकता। मरा हुआ आदमी भी शांत होता है लेकिन मरे हुए को कोई शांत नहीं कहता। मरा हुआ आदमी बीमार नहीं पड़ता, यह तो आपको पता होगा, लेकिन मरे हुए आदमी को कोई स्वस्थ नहीं कहता। भागा हुआ आदमी शांत होता है, लेकिन वह शांति धोखा है, वह शांति नकारात्मक है। अशांति के अवसर का न होना, शांति नहीं है। अशांति के अवसर का पूरी तरह होना और वहाँ शांत होना ही शांति है।

अब तक यह बात सारी दुनियाँ में जाहिर रही है कि शांत होना हो तो भाग जाओ। यह बात गलत है। यह बुनियादी रूप से गलत है। इसी प्रकार

यह कहना कि दुनियाँ में खड़े रहना है तो अशांत रहना पड़ेगा, गलत है। जिन्दगी को अगर बदलना है, अच्छा बनाना है तो अशांत रहना पड़ेगा। जिन्दगी को अगर नया करना है, सुन्दर करना है, सुखद करना है, समृद्ध करना है, तो अशांत रहना पड़ेगा। वह बात भी गलत है। पश्चिम ने वही बात चुन ली। उन्होंने व्यक्ति की शांति की कोई फिक्र नहीं की। उन्होंने समाज की क्रांति की निरंतर फिक्र की। इसलिए समाज विकसित होता चला गया, शक्तिशाली होता चला गया, समृद्धशाली होता चला गया। लेकिन व्यक्ति? व्यक्ति बिलकुल खो गया। पश्चिम में व्यक्ति समाप्त हो गया, पूर्व में समाज समाप्त हो गया। पूर्व की बाहर की दुनियाँ दीन-हीन हो गई, पश्चिम की भीतर की दुनियाँ समाप्त हो गई। पश्चिम में भीतर का आदमी बचा ही नहीं। पूर्व में कुछ भी नहीं है सिवा गरीबी के, बीमारी के, दरिद्रता के, दुख के, हीनताके, अकाल के। बाहर कुछ भी नहीं है। समाज को तो निरंतर क्रांति चाहिए। क्रांति का अर्थ है— परिवर्तन, क्रान्ति का अर्थ है—गति, क्रांति का अर्थ है—शांति की खोज, क्रांति का अर्थ है—समृद्ध होने की चेष्टा, क्रांति का अर्थ है—शक्ति की आराधना, क्रांति का अर्थ है—जीवन की प्यास, जीवन का आनंद। समाज को निरंतर क्रांति चाहिए। अगर व्यक्ति शांत हो जाय, तो समाज की क्रांति रुक जाती है। पूर्व में कोई क्रांति नहीं हुई। अगर हम ५००० वर्षों का इतिहास उठाकर देखें तो पायँगे कि हम किसी क्रांति से कभी नहीं गुजरे। हमने कभी कुछ नहीं बदला। और जो बदलाहट हो गई है, वह मजबूरी में हो गई है। दूसरों ने बदल दिया है। हमने रोते-रोते बदलाहट की है। हम अब भी बैलगाड़ी लिये बैठे होते, अब भी हमने चर्खा काता होता। यह तो दूसरे लोगों ने आकर हमको परेशान कर दिए। हमको बदलना पड़ा। हम कभी नहीं बदले! हम बाहर की जिन्दगी में कभी बदलना ही नहीं चाहते। हम तो कहते हैं, बाहर तो सब सपना है, सब झूठ है, सब माया है। गरीब रहो तो भी माया है, बीमार रहो तो भी माया है, स्वस्थ रहो तो भी माया है। तो फिर क्या जरूरत है कि हम बाहर की जिन्दगी को बदलने की कोशिश करें? झोपड़े को महल बनायें। गरीब को स्वस्थ करें। मरते हुए बच्चों को बुढ़ापे तक जिलाने की कोशिश करें। क्या फायदा है? क्या अर्थ है बाहर? शांति भीतर है। देश के सारे साधु-संन्यासी और शास्त्र कहते हैं—शांति भीतर है, बाहर से आँख मोड़ लो। पश्चिम में वे उलटी बात कहते हैं। वे

कहते हैं—शक्ति बाहर है, भीतर की फिक्र छोड़ो, शक्ति की आराधना करो। समृद्धि बाहर है। इसलिए पूर्व में धर्म विकसित हुआ और पश्चिम में विज्ञान। विज्ञान बाहर के जीवन पर काबू पाने की चेष्टा है, धर्म भीतर के जीवन पर काबू पाने की चेष्टा है। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि अगर बाहर की जिन्दगी में ही कोई रह जाय तो शक्ति तो आती है, लेकिन जिनके हाथों में शक्ति आती है, वे खुद खो जाते हैं। धन आ जाता है और मालिक खो जाता है।

स्वामी रामतीर्थ टोकियो गए थे। वहाँ एक बड़े भवन में आग लग गई थी। उस भवन के बाहर हजारों लोग इकट्ठे थे। रामतीर्थ भी खड़े होकर देखने लगे। भवन का मालिक खड़ा था। उसकी आँखें पथरा गई थीं। वह देख रहा था, लेकिन उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। जिन्दगी भर जो बनाया था, वह जल रहा था। नौकर-चाकर, आसपास के पड़ोस के मित्र सामान लेकर बाहर आ रहे थे। तिजोरियाँ निकाली जा रही थीं, हीरे-जवाहरात निकाले जा रहे थे। कीमती वस्त्र निकाले जा रहे थे। अमूल्य चीजें थीं उस धनपति के पास। वे सब बाहर निकाली जा रही थीं। फिर लोगों ने मालिक से कहा कि एक बार और भीतर जाया जा सकता है। अगर कोई जरूरी चीजें रह गई हों, तो हम भीतर से ले आयें। उस आदमी ने कहा—"मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या हो रहा है, क्या आ गया है, क्या छूट गया है? मुझे कुछ भी पता नहीं है। तुम ऐसे ही जाकर देख लो, जो दिखाई पड़े, ले आओ। जिसका सब जल रहा हो उसे क्या दिखाई पड़ सकता है? जिसका सब जल रहा हो, वह क्या हिसाब रख सकता है कि क्या छूट गया, क्या बच गया? ये सब फुरसत की बातें हैं, आराम की बातें हैं। सब जलता हो तो ये सब हिसाब-किताब काम नहीं पड़ते।" वे लोग भीतर वापिस गए और छाती पीटते बाहर आए। हर बार तो वे खुशी से आते थे कि वे कुछ लेकर आए हैं। इस बार भी कुछ लेकर आए थे लेकिन रोते हुए। सारी भीड़ इकट्ठी हो गई कि रोते क्यों हो? उन्होंने कहा—"बड़ी भूल हो गई। हमारे मालिक का एक ही बेटा था। उस बेटे को हम बचाना भूल गए। वह भीतर सो रहा था। वह जल गया, चल बसा। हम सामान बचाते रहे। सामान तो सब बच गया, लेकिन मकान का मालिक, होने वाला मालिक जल गया।" स्वामी रामतीर्थ ने उस दिन अपनी डायरी में

यह कहना कि दुनियाँ में खड़े रहना है तो अशांत रहना पड़ेगा, गलत है। जिन्दगी को अगर बदलना है, अच्छा बनाना है तो अशांत रहना पड़ेगा। जिन्दगी को अगर नया करना है, सुन्दर करना है, सुखद करना है, समृद्ध करना है, तो अशांत रहना पड़ेगा। वह बात भी गलत है। पश्चिम ने वही बात चुन ली। उन्होंने व्यक्ति की शांति की कोई फिक्र नहीं की। उन्होंने समाज की क्रांति की निरंतर फिक्र की। इसलिए समाज विकसित होता चला गया, शक्तिशाली होता चला गया, समृद्धशाली होता चला गया। लेकिन व्यक्ति? व्यक्ति बिलकुल खो गया। पश्चिम में व्यक्ति समाप्त हो गया, पूर्व में समाज समाप्त हो गया। पूर्व की बाहर की दुनियाँ दीन-हीन हो गई, पश्चिम की भीतर की दुनियाँ समाप्त हो गई। पश्चिम में भीतर का आदमी बचा ही नहीं। पूर्व में कुछ भी नहीं है सिवा गरीबी के, बीमारी के, दरिद्रता के, दुख के, हीनताके, अकाल के। बाहर कुछ भी नहीं है। समाज को तो निरंतर क्रांति चाहिए। क्रांति का अर्थ है— परिवर्तन, क्रान्ति का अर्थ है—गति, क्रांति का अर्थ है—शांति की खोज, क्रांति का अर्थ है—समृद्ध होने की चेष्टा, क्रांति का अर्थ है—शक्ति की आराधना, क्रांति का अर्थ है—जीवन की प्यास, जीवन का आनंद। समाज को निरंतर क्रांति चाहिए। अगर व्यक्ति शांत हो जाय, तो समाज की क्रांति रुक जाती है। पूर्व में कोई क्रांति नहीं हुई। अगर हम ५००० वर्षों का इतिहास उठाकर देखें तो पायेंगे कि हम किसी क्रांति से कभी नहीं गुजरे। हमने कभी कुछ नहीं बदला। और जो बदलाहट हो गई है, वह मजबूरी में हो गई है। दूसरों ने बदल दिया है। हमने रोते-रोते बदलाहट की है। हम अब भी बैलगाड़ी लिये बैठे होते, अब भी हमने चर्खा काता होता। यह तो दूसरे लोगों ने आकर हमको परेशान कर दिए। हमको बदलना पड़ा। हम कभी नहीं बदले! हम बाहर की जिन्दगी में कभी बदलना ही नहीं चाहते। हम तो कहते हैं, बाहर तो सब सपना है, सब झूठ है, सब माया है। गरीब रहो तो भी माया है, बीमार रहो तो भी माया है, स्वस्थ रहो तो भी माया है। तो फिर क्या जरूरत है कि हम बाहर की जिन्दगी को बदलने की कोशिश करें? झोपड़े को महल बनायें। गरीब को स्वस्थ करें। मरते हुए बच्चों को बुढ़ापे तक जिलाने की कोशिश करें। क्या फायदा है? क्या अर्थ है बाहर? शांति भीतर है। देश के सारे साधु-संन्यासी और शास्त्र कहते हैं—शांति भीतर है, बाहर से आँख मोड़ लो। पश्चिम में वे उलटी बात कहते हैं। वे

कहते हैं—शक्ति बाहर है, भीतर की फिक्र छोड़ो, शक्ति की आराधना करो। समृद्धि बाहर है। इसलिए पूर्व में धर्म विकसित हुआ और पश्चिम में विज्ञान। विज्ञान बाहर के जीवन पर काबू पाने की चेष्टा है, धर्म भीतर के जीवन पर काबू पाने की चेष्टा है। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि अगर बाहर की जिन्दगी में ही कोई रह जाय तो शक्ति तो आती है, लेकिन जिनके हाथों में शक्ति आती है, वे खुद खो जाते हैं। धन आ जाता है और मालिक खो जाता है।

स्वामी रामतीर्थ टोकियो गए थे। वहाँ एक बड़े भवन में आग लग गई थी। उस भवन के बाहर हजारों लोग इकट्ठे थे। रामतीर्थ भी खड़े होकर देखने लगे। भवन का मालिक खड़ा था। उसकी आँखें पथरा गई थीं। वह देख रहा था, लेकिन उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। जिन्दगी भर जो बनाया था, वह जल रहा था। नौकर-चाकर, आसपास के पड़ोस के मित्र सामान लेकर बाहर आ रहे थे। तिजोरियाँ निकाली जा रही थीं, हीरे-जवाहरात निकाले जा रहे थे। कीमती वस्त्र निकाले जा रहे थे। अमूल्य चीजें थीं उस धनपति के पास। वे सब बाहर निकाली जा रही थीं। फिर लोगों ने मालिक से कहा कि एक बार और भीतर जाया जा सक्ता है। अगर कोई जरूरी चीजें रह गई हों, तो हम भीतर से ले आयें। उस आदमी ने कहा—"मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या हो रहा है, क्या आ गया है, क्या छूट गया है? मुझे कुछ भी पता नहीं है। तुम ऐसे ही जाकर देख लो, जो दिखाई पड़े, ले आओ। जिसका सब जल रहा हो उसे क्या दिखाई पड़ सकता है? जिसका सब जल रहा हो, वह क्या हिसाब रख सकता है कि क्या छूट गया, क्या बच गया? ये सब फुरसत की बातें हैं, आराम की बातें हैं। सब जलता हो तो ये सब हिसाब-किताब काम नहीं पड़ते।" वे लोग भीतर वापिस गए और छाती पीटते बाहर आए। हर बार तो वे खुशी से आते थे कि वे कुछ लेकर आए हैं। इस बार भी कुछ लेकर आए थे लेकिन रोते हुए। सारी भीड़ इकट्ठी हो गई कि रोते क्यों हो? उन्होंने कहा—"बड़ी भूल हो गई। हमारे मालिक का एक ही बेटा था। उस बेटे को हम बचाना भूल गए। वह भीतर सो रहा था। वह जल गया, चल बसा। हम सामान बचाते रहे। सामान तो सब बच गया, लेकिन मकान का मालिक, होने वाला मालिक जल गया।" स्वामी रामतीर्थ ने उस दिन अपनी डायरी में

लिखा—"यही तो सारी दुनियाँ में होता है । आदमी मर गया है और सामान बच गया है । असली मालिक खो गया और सामान बच गया । सामान बहुत है, बहुत ढेर है । अम्बार है उसका, लेकिन सामान में खोजने जाओ तो सामान के मालिक का कहीं कोई पता नहीं मिलता । मालिक कहाँ है ? बैंक बैलैन्स है बहुत, लेकिन किसका है ? उसका कोई पता नहीं चलता कि वह कौन है भीतर ! जिसकी यह शक्ति है, वह कहाँ है ? उसका पता शांति में ही चलता है। उसका पता अशांति में कभी नहीं चलता । पश्चिम ने खो दिया व्यक्ति को, आदमी को और पूर्व ने खो दिया समाज को । क्या दोनों बातों के बीच कोई जोड़, कोई सम्मिलन, कोई संतुलन नहीं हो सकता ? क्या यही होगा कि कील अकेली ठहरी रहेगी तो उस चाक के बने रहने का मतलब क्या है ? प्रयोजन क्या है ? नहीं, जिन्दगी एक जोड़ है, दो विरोधों के बीच एक संतुलन । दो विरोधों के बीच एक अविरोध । दो उलटी चीजों के बीच एक तीसरी खोज ।"
और इसलिए मैं कहता हूँ—व्यक्ति को चाहिए शांति और समाज को चाहिए सतत क्रांति ।

प्रेम नगर के पथ पर

प्रेम के गीत आदमी हजारों वर्षों से गाता रहा है। सुनने में वे आनन्दपूर्ण होते हैं। उनमें भरा हुआ भाव और संगीत भी हृदय को छूता है लेकिन यह बात स्मरण रहे कि आदमी ने अब तक प्रेम के गीत ही गाए हैं। प्रेम को नहीं जाना, और प्रेम के गीत के कारण यह भूल भी बहुत लोगों को पैदा हो गई कि मनुष्य के हृदय में प्रेम है और हम एक दूसरे को प्रेम करते हैं। अभी तक प्रेम का नगर बस नहीं सका है। गीत सुन्दर हैं लेकिन गीत सच्चे नहीं हैं! अभी प्रेम के नगर को बसने में देर है। यह सत्य कितना ही कटु मालूम हो लेकिन इस सत्य को सोच लेना जरूरी है कि गीतों में हम जो गाते रहे हैं कहीं वे झूठ तो नहीं हैं? कहीं वे मन को समझा लेने की बात तो नहीं हैं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि जीवन में जो नहीं है उसे गाकर हम पूर्ति कर लेते हैं?

सच्चाई यही है कि गीत और हमारी जिन्दगी में बड़ा फर्क है। अगर कोई हमारे गीतों को सुनेगा तो भ्रम में पड़ जायगा। शायद गीत खबर दे कि हम सच में ही प्रेम के नगर में रह रहे हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि अब तक का मनुष्य का पूरा इतिहास घृणा के नगर में रहने का इतिहास है, प्रेम के नगर में रहने का नहीं। प्रेम के गीत बहुत सुन्दर हैं, लेकिन यह मत भूल जाना कि वह केवल सपना है सच्चाई नहीं है। एक दिन सपने को पूरा करना है। वह सपना अभी पूरा नहीं हुआ। वस्तुतः हम घृणा, और हिंसा में जीते हैं। मैं चाहता हूँ कि कभी एक नगर बसे जो प्रेम का हो, कभी एक पृथ्वी बसे जो प्रेम की हो। और जब मैं यह कह रहा हूँ कि अभी यह नगर बसा नहीं है तो इस स्वप्न को बहुत समझ लेने की जरूरत है कि ऐसा क्यों हो रहा है?

पिछले तीन हजार वर्षों में १५ हजार युद्ध पूरी पृथ्वी पर हुए। क्या प्रेम करनेवाले लोग, क्या प्रेम से भरे हृदय निरंतर हत्या को, हिंसा को उत्सुक होते हैं? एक वर्ष में पाँच युद्ध प्रेम की खबर नहीं है। ये कोई छोटे-मोटे युद्ध नहीं थे, बहुत बड़े थे जिन्होंने जीवन को पूरी तरह नष्ट किया है, प्राणों को बहुत आघात पहुँचाए हैं, सब तरह की बरबादी और विनाश लाए हैं। पिछले महायुद्ध में पाँच करोड़ लोगों की हत्या हुई। उससे पहले प्रथम महायुद्ध में साढ़े तीन करोड़ लोगों की हत्या हुई, और अब हम एक ऐसे युद्ध की तैयारी कर रहे हैं जिसमें संख्या का सवाल नहीं होगा, सब की हत्या होगी। तीसरे महायुद्ध की तैयारियाँ इतनी आत्मघाती हैं कि विश्वास करने में भी नहीं आता कि या तो मनुष्य पागल है या परमात्मा की फिर अब मर्जी नहीं है कि आगे दुनियाँ रहे। सारी जमीन पर अब तक हम अपनी शक्तियों का आधा हिस्सा युद्ध में लगाते रहे। दुनियाँ में इतनी गरीबी है, इतनी परेशानी है, इतने लोग नंगे और भूखे हैं, लेकिन जिनके पास धन है वे उस धन का उपयोग रोटी बाँटने में नहीं, अणुबम बनाने में कर रहे हैं। इस समय कुल ५० हजार उद्जन बम हैं। इतने ज्यादा हैं, इतनी जरूरत से ज्यादा है जिसका कोई हिसाब नहीं। जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं—ऐसी सात पृथ्वियों को अगर नष्ट करना हो तो ये बम काफी हैं। हमने युद्ध की इतनी सामग्री तैयार की है कि वे कम से कम ५० अरब लोगों की हत्या करने के लिए काफी हैं। एक वैज्ञानिक ने अभी-अभी कहा कि हम एक आदमी को सात बार मारने में समर्थ हैं। हालांकि एक आदमी एक ही बार में मर जाता है, दुबारा मारने की

आज तक जरूरत नहीं पड़ी। लेकिन फिर भी भूल-चूक के लिए इन्तजाम कर लेना काफी है। कोई आदमी एक बार में बच जाय तो दुबारा मार सकें, दुबारा बच जाय तो तीसरी बार, पर सात बार में बहुत कम संभव है कि कोई आदमी बच जाय। हमने मृत्यु का अतिरिक्त इन्तजाम कर रखा है। कैसे प्रेम करनेवाले लोग होंगे ये? किसलिए इन्तजाम? और इन्तजाम इतना घातक है जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। २५ सौ डिग्री पर लोहा भाप बनकर उड़ता है और इस १० करोड़ डिग्री के एक उद्‌जन बम का कितनी दूर तक प्रचार-क्षेत्र होगा? चालीस हजार वर्ग मील की सीमा के भीतर १० करोड़ डिग्री गरमी का उत्ताप पैदा कर देगा। वहाँ सब जल कर राख हो जायगा। ऐसे हमने ५० हजार उद्‌जन बम तैयार कर रखे हैं। और हम प्रतीक्षा में हैं कि कब उनका प्रयोग करें। क्या ये प्रेम से रहनेवाले लोगों के लक्षण हैं? क्या प्रेम ये सब ईजाद करेगा? क्या इससे खबर मिलती है कि आदमी का हृदय प्रेमपूर्ण है? और तुम यह मत सोचना कि ये दूसरे मुल्कों की बात है। सारी पृथ्वी पर राजनीतिज्ञों का मन बहुत हिंसा से भरा हुआ है। राजनीतिज्ञ सारी पृथ्वी पर एक जैसे हैं। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे किस मुल्क के हैं। उन सब की तैयारी अपनी-अपनी सीमाओं में यही है, यद्यपि वे बातें दूसरी करते हैं। वे यह नहीं कहते कि वे आक्रमण के लिए तैयारी करते हैं। वे कहते हैं कि हम रक्षा के लिए तैयारी करते हैं। तुम्हें पता होगा दुनियाँ में किसी मुल्क का भी युद्ध का विभाग रक्षा का विभाग कहलाता है। यह बात बिलकुल झूठी है। अगर दुनियाँ के सब युद्ध-विभाग रक्षा के विभाग हैं, तो आक्रमण कौन करता है? अब तक जमीन पर आक्रमण कौन करता रहा? ये सब रक्षा करते हैं, तो क्या आक्रमण कोई आसमान से, चाँद-तारों से करने आता है? आज तक दुनियाँ के किसी मुल्क ने यह नहीं माना है कि मैंने आक्रमण किया है। हर मुल्क यह कहता है कि हम अपनी रक्षा करते हैं। रक्षा के नाम पर की गई तैयारी अंत में हिंसा और युद्ध की तैयारी सिद्ध होती रही है। हमेशा घृणा को प्रेम के नाम पर फैलाने की कोशिश की जाती है, ताकि दिखाई न पड़े। सारी दुनियाँ में कहा जाता है, अपने देश को प्रेम करो, राष्ट्र को प्रेम करो, मातृभूमि को प्रेम करो। पर ये प्रेम नहीं हैं। यह दूसरे मुल्कों को घृणा करने का पाठ है। जब कोई कहता है, 'अपने देश को प्रेम करो' उसकी बुनियाद में 'दूसरे देशों को घृणा करो', यह भाव

सच्चाई यही है कि गीत और हमारी जिन्दगी में बड़ा फर्क है। अगर कोई हमारे गीतों को सुनेगा तो भ्रम में पड़ जायगा। शायद गीत खबर दे कि हम सच में ही प्रेम के नगर में रह रहे हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि अब तक का मनुष्य का पूरा इतिहास घृणा के नगर में रहने का इतिहास है, प्रेम के नगर में रहने का नहीं। प्रेम के गीत बहुत सुन्दर हैं, लेकिन यह मत भूल जाना कि वह केवल सपना है सच्चाई नहीं है। एक दिन सपने को पूरा करना है। वह सपना अभी पूरा नहीं हुआ। वस्तुतः हम घृणा, और हिंसा में जीते हैं। मैं चाहता हूँ कि कभी एक नगर बसे जो प्रेम का हो,कभी एक पृथ्वी बसे जो प्रेम की हो। और जब मैं यह कह रहा हूँ कि अभी यह नगर बसा नहीं है तो इस स्वप्न को बहुत समझ लेने की जरूरत है कि ऐसा क्यों हो रहा है?

पिछले तीन हजार वर्षों में १५ हजार युद्ध पूरी पृथ्वी पर हुए। क्या प्रेम करनेवाले लोग, क्या प्रेम से भरे हृदय निरंतर हत्या को, हिंसा को उत्सुक होते हैं? एक वर्ष में पाँच युद्ध प्रेम की खबर नहीं है। ये कोई छोटे-मोटे युद्ध नहीं थे, बहुत बड़े थे जिन्होंने जीवन को पूरी तरह नष्ट किया है, प्राणों को बहुत आघात पहुँचाए हैं, सब तरह की बरबादी और विनाश लाए हैं। पिछले महायुद्ध में पाँच करोड़ लोगों की हत्या हुई। उससे पहले प्रथम महायुद्ध में साढ़े तीन करोड़ लोगों की हत्या हुई, और अब हम एक ऐसे युद्ध की तैयारी कर रहे हैं जिसमें संख्या का सवाल नहीं होगा, सब की हत्या होगी। तीसरे महायुद्ध की तैयारियाँ इतनी आत्मघाती हैं कि विश्वास करने में भी नहीं आता कि या तो मनुष्य पागल है या परमात्मा की फिर अब मर्जी नहीं है कि आगे दुनियाँ रहे। सारी जमीन पर अब तक हम अपनी शक्तियों का आधा हिस्सा युद्ध में लगाते रहे। दुनियाँ में इतनी गरीबी है, इतनी परेशानी है, इतने लोग नंगे और भूखे हैं, लेकिन जिनके पास धन है वे उस धन का उपयोग रोटी बाँटने में नहीं, अणुबम बनाने में कर रहे हैं। इस समय कुल ५० हजार उद्‌जन बम हैं। इतने ज्यादा हैं, इतनी जरूरत से ज्यादा है जिसका कोई हिसाब नहीं। जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं—ऐसी सात पृथ्वियों को अगर नष्ट करना हो तो ये बम काफी हैं। हमने युद्ध की इतनी सामग्री तैयार की है कि वे कम से कम ५० अरब लोगों की हत्या करने के लिए काफी हैं। एक वैज्ञानिक ने अभी-अभी कहा कि हम एक आदमी को सात बार मारने में समर्थ हैं। हालांकि एक आदमी एक ही बार में मर जाता है, दुबारा मारने की

आज तक जरूरत नहीं पड़ी। लेकिन फिर भी भूल-चूक के लिए इन्तजाम कर लेना काफी है। कोई आदमी एक बार में बच जाय तो दुबारा मार सकें, दुबारा बच जाय तो तीसरी बार, पर सात बार में बहुत कम संभव है कि कोई आदमी बच जाय। हमने मृत्यु का अतिरिक्त इन्तजाम कर रखा है। कैसे प्रेम करनेवाले लोग होंगे ये? किसलिए इन्तजाम? और इन्तजाम इतना घातक है जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। २५ सौ डिग्री पर लोहा भाप बनकर उड़ता है और इस १० करोड़ डिग्री के एक उद्जन बम का कितनी दूर तक प्रचार-क्षेत्र होगा? चालीस हजार वर्ग मील की सीमा के भीतर १० करोड़ डिग्री गरमी का उत्ताप पैदा कर देगा। वहाँ सब जल कर राख हो जायगा। ऐसे हमने ५० हजार उद्जन बम तैयार कर रखे हैं। और हम प्रतीक्षा में हैं कि कब उनका प्रयोग करें। क्या ये प्रेम से रहनेवाले लोगों के लक्षण हैं? क्या प्रेम ये सब ईजाद करेगा? क्या इससे खबर मिलती है कि आदमी का हृदय प्रेमपूर्ण है? और तुम यह मत सोचना कि ये दूसरे मुल्कों की बात है। सारी पृथ्वी पर राजनीतिज्ञों का मन बहुत हिंसा से भरा हुआ है। राजनीतिज्ञ सारी पृथ्वी पर एक जैसे हैं। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे किस मुल्क के हैं। उन सब की तैयारी अपनी-अपनी सीमाओं में यही है, यद्यपि वे बातें दूसरी करते हैं। वे यह नहीं कहते कि वे आक्रमण के लिए तैयारी करते हैं। वे कहते हैं कि हम रक्षा के लिए तैयारी करते हैं। तुम्हें पता होगा दुनियाँ में किसी मुल्क का भी युद्ध का विभाग रक्षा का विभाग कहलाता है। यह बात बिलकुल झूठी है। अगर दुनियाँ के सब युद्ध-विभाग रक्षा के विभाग हैं, तो आक्रमण कौन करता है? अब तक जमीन पर आक्रमण कौन करता रहा? ये सब रक्षा करते हैं, तो क्या आक्रमण कोई आसमान से, चाँद-तारों से करने आता है? आज तक दुनियाँ के किसी मुल्क ने यह नहीं माना है कि मैंने आक्रमण किया है। हर मुल्क यह कहता है कि हम अपनी रक्षा करते हैं। रक्षा के नाम पर की गई तैयारी अंत में हिंसा और युद्ध की तैयारी सिद्ध होती रही है। हमेशा घृणा को प्रेम के नाम पर फैलाने की कोशिश की जाती है, ताकि दिखाई न पड़े। सारी दुनियाँ में कहा जाता है अपने देश को प्रेम करो, राष्ट्र को प्रेम करो, मातृभूमि को प्रेम करो। पर ये प्रेम नहीं हैं। यह दूसरे मुल्कों को घृणा करने का पाठ है। जब कोई कहता है, 'अपने देश को प्रेम करो' उसकी बुनियाद में 'दूसरे देशों को घृणा करो', यह भाव

छिपा है। जब कोई कहता है, "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्ताँ हमारा", तो यह आदमी खतरनाक है, यह आदमी अच्छा नहीं है। जो कोई यह कहता है सारे जहाँ से हमारा हिन्दुस्ताँ अच्छा है वह आदमी घृणा का जहर फैला रहा है। जिसका हमें कोई पता नहीं। हमें तो यही लगेगा कि यह अपने मुल्क से प्रेम करता है, इसलिए ऐसी बातें कह रहा है। एक मुल्क को प्रेम की बात सिखाना, एक धर्म को प्रेम की बात सिखाना, एक खास तरह की चमड़ी के रंगवालों को प्रेम की बात सिखाना, प्रेम के लिए सीमा बाँधना, हमेशा घृणा सिखाने का उपाय रहा है। जब कोई कहता है, "सब इकट्ठे हो जाओ, हिन्दुस्तानी इकट्ठे हो जाओ, प्रेम से सब इकट्ठे हो जाओ" तो तुम इस भूल में मत पड़ जाना कि यह प्रेम की शिक्षा दी जा रही है। आदमी आज तक प्रेम के लिए कभी इकट्ठे नहीं हुए हैं। हमेशा किसी को घृणा करने के लिए, किसी का अंत करने के लिए, किसी को समाप्त करने के लिए इकट्ठे होते हैं। वे कहते यह हैं कि हम आपस में प्रेम करते हैं, इसलिए संगठित हो रहे हैं लेकिन असलियत यह होती है कि वे किसी को घृणा करते हैं, इसलिए संगठित होते हैं। हिन्दुस्तान पर कुछ वर्ष पहले हमला हो गया, तो हिन्दुस्तान में एकता की लहर दौड़ गई। एक बहुत बड़े राजनीतिज्ञ ने कहा, "यह तो बड़े स्वागत की बात है। देखिए, सारा हिन्दुस्तान कैसा इकट्ठा हो गया? कितनी प्रेमपूर्ण खबर है?" मैंने उनसे कहा, "इस धोखे में मत पड़ जाना कि यह प्रेम है। यह शिर्फ दुश्मन के प्रति घृणा है। घृणा में आदमी इकट्ठा हो जाता है। जब दुश्मन चला जायगा, आदमी फिर स्थिर हो जायगा। फिर सारी एकता समाप्त हो जायगी"। अगर गुजरातियों और महाराष्ट्रीयों में झगड़ा हो तो गुजराती इकट्ठा हो सकता है, महाराष्ट्रीय इकट्ठा हो सकता है। अगर हिन्दी बोलनेवालों और गैर-हिन्दी बोलनेवालों में झगड़ा हो तो वे इकट्ठे हो सकते हैं, हिन्दू इकट्ठा हो सकता है मुसलमान के खिलाफ, मुसलमान इकट्ठा हो सकता है हिन्दू के खिलाफ। लेकिन अब तक जमीन पर प्रेम का संगठन नहीं रहा है। सब संगठन मूलतः घृणा के संगठन रहे हैं। जब भी कोई बुरा काम करना हो तो नारा हमेशा अच्छा देना पड़ा है। अच्छे नारे की आड़ में बुरे काम किए जा सकते हैं। बुरा काम सीधा नहीं किया जा सकता, इसलिए घृणा फैलानी हो तो प्रेम का नारा देना पड़ता है। हिटलर ने जर्मनी में कहा कि जर्मनी के लोग इकट्ठे हो जाओ, एक दूसरे को प्रेम करो।

किसी को पता नहीं था कि यह आदमी जर्मन कौम को प्रेम के नाम पर इकट्ठा कर रहा है। कल सारी जमीन को रूंध डालेगा। किसी को कल्पना नहीं थी कि यह होने वाला है। यह हुआ। आदमी के भीतर बड़ा धोखा है; वह जो बातें कहता है वही सच्ची नहीं होती हैं। भीतर कुछ ठीक उलटा छिपा होता है और उस उलटे को हम कभी नहीं पहचान पाते, क्योंकि ऊपर शब्द बहुत अच्छे हैं।

एक बहुत पुरानी कथा है। परमात्मा ने सारी दुनियाँ बनाई। फिर उसने एक सौन्दर्य की देवी बनाई और एक कुरूप की देवी भी। उन दोनों को पृथ्वी पर भेजा। आकाश से जमीन पर आते-आते उनके कपड़े मैले हो गए। रास्ते की धूल जम गई। वे जमीन पर उतरीं तब सुबह सूर्य निकलने के करीब था। थोड़ी देर थी, भोर हो गई थी, पक्षी गीत गाते थे। वे सरोवर के किनारे आकर उतरीं और उन्होंने सोचा कि इसके पहले कि हम पृथ्वी की यात्रा पर जायँ, उचित होगा कि हम स्नान कर लें। वे दोनों देवियाँ कपड़े उतारकर सरोवर में स्नान करने को उतरीं। सौंदर्य की देवी तैरती हुई आगे चली गई, उसे कुछ भी पता न था कि पीछे कोई धोखा हो जाने को है। कुरूपता की देवी किनारे पर वापस आई और सौंदर्य की देवी के कपड़े पहन कर भाग खड़ी हुई। जब लौटकर सौंदर्य की देवी ने देखा, तो वह हैरान हो गई। वह नग्न थी, सुबह होने के करीब था। सूर्य निकलने को था। गाँव के लोग जागने लगे थे। उसके कपड़े कुरूपता की देवी पहनकर भाग चुकी थी। कुरूपता के कपड़े पहनकर वह उसका पीछा करे, इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं था। वह किनारे गई, मजबूरी में उसने कुरूपता के कपड़े पहने और भागी अपने कपड़े वापस लेने को। लेकिन कथा कहती है कि वह अब तक भी पकड़ नहीं पाई। कुरूपता अब भी सौंदर्य के कपड़े पहने घूम रही है। सौंदर्य की देवी उसका पीछा कर रही है, पर अभी तक पकड़ में नहीं आई। हमेशा कुरूपता सौंदर्य के वस्त्र पहन लेना पसंद करती है चूंकि तब उसे गति मिल जाती है, तब उसका सिक्का चल पड़ता है। घृणा प्रेम के वस्त्र पहन लेती है, असत्य सत्य के वस्त्र पहन लेता है, इसलिए वस्त्रों से सावधान हो जाने की जरूरत है। वस्त्रों को देखकर यह मत सोच लेना कि प्रेम का नगर बस गया है और हम उसके निवासी हैं। वस्त्र प्रेम के हैं पर भीतर आदमी पूरी तरह से घृणा से भरा हुआ है और घृणा हजार तरह की है। चूंकि प्रेम के शब्दों में छिपा

लिया गया है, हम पहचान भी नहीं पाते कि यह घृणा है और जब तक उसे न पहचानें तब तक उससे छुटकारा भी कैसे हो सकता है ?/ मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान हो, तुम ईसाई हो, तुम जैन हो, तुम बौद्ध हो—ये सब घृणा के रूपान्तर हैं। तुम समझ लो कि जब मैं मनुष्यता के साथ इसी तरह का भेद अपने मन में रखता हूँ, तो मैं कोई दीवाल खड़ी करता हूँ। जब मैं यह कहता हूँ कि मैं हिन्दू हूँ तब मैं यह कहता हूँ कि मैं सारे लोगों से पृथक और भिन्न हूँ। जब मैं कहता हूँ कि मैं मुसलमान हूँ तब भी यही कहता हूँ। जब हम कहते हैं "हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई" और "अल्लाह ईश्वर तेरे नाम" तब ये बातें सत्य नहीं हैं क्योंकि यदि यह समझ में आ गया हो कि अल्लाह और ईश्वर एक ही शक्ति के नाम हैं तो यह भी समझ में आ जायगा कि सिर्फ इस बात को कहने का भी कोई अर्थ नहीं कि अल्लाह ईश्वर एक के ही नाम हैं, उसको दुहराने की भी जरूरत नहीं है।

हेनरी थोरो अमेरिका का एक बहुत बड़ा विचारक था। वह मरने के करीब था। वह कभी चर्च में नहीं गया था। उसे कभी किसी ने प्रार्थना करते नहीं देखा था। मरने का वक्त था, तो उसके गाँव का पादरी उससे मिलने गया। उसने सोचा यह मौका अच्छा है, मौत के वक्त आदमी घबड़ा जाता है। मौत के वक्त डर पैदा हो जाता है, क्योंकि अनजाना रास्ता है मृत्यु का। न मालूम क्या होगा ? उस वक्त भयभीत आदमी कुछ भी स्वीकार कर सकता है। मौत का शोषण धर्मगुरु बहुत दिनों से करते रहे हैं। इसलिए तो मंदिरों, मस्जिदों में बूढ़े लोग दिखाई पड़ते हैं। पादरी ने हेनरीथोरो से जाकर कहा, "क्या तुमने अपने और परमात्मा के बीच शांति स्थापित कर ली है ? क्या तुम दोनों एक दूसरे के प्रति प्रेम से भर गए हो ?" हेनरीथोरो मरने के करीब था। उसने आँखें खोलीं और कहा, "महाशय, मुझे याद नहीं पड़ता है कि मैं उससे कभी लड़ा भी हूँ। मेरा उससे कभी झगड़ा नहीं हुआ तो उसके साथ शान्ति स्थापित करने का सवाल कहाँ है ? जाओ, तुम शांति स्थापित करो, क्योंकि जिन्दगी में तुम उससे लड़ते रहे हो। मुझे तो उसकी प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। मेरी जिन्दगी ही प्रार्थना थी।" कोई मरता हुआ आदमी ऐसा कहेगा, इसकी हम कल्पना नहीं कर सकते, लेकिन बड़ी सच्ची बात उसने यह कही कि अगर मैं उससे लड़ा होता, अगर एक पल को मेरे और उसके बीच कोई शत्रुता खड़ी हुई होती तो फिर मैं शान्ति स्थापित करने की कोशिश करता। लेकिन

नहीं, वह तो कभी हुआ नहीं है। किसके बीच, कैसी शांति, कैसे स्थापित करूँ? अगर अल्लाह, परमात्मा और भगवान एक के ही नाम हैं तो इन दोनों को मिलाने की कोशिश नहीं हो सकती। कोई मिलाने की कोशिश नहीं हो सकती। कोई मिलाने का सवाल नहीं है। उन दोनों में कोई भिन्न बातें नहीं हैं लेकिन हम मिलाने की कोशिश कर रहे हैं। उस मिलाने की कोशिश के पीछे भेद है, वह भेद खड़ा हुआ है। उस भेद को हम गीत गाकर छिपाना चाहें तो वह छिपनेवाला नहीं है। ज्यादा से ज्यादा इतना होता है कि उसको हम सहने लगते हैं। तुम मुसलमान हो, यह ठीक है, हम हिन्दू हैं, यह ठीक है। हम एक-दूसरे को सहते हैं लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हमारे बीच प्रेम पैदा हो गया है। प्रेम पृथकता को जानता ही नहीं; और जहाँ पृथकता हो वहाँ समझ लेना प्रेम की बातें हैं, पर भीतर घृणा मौजूद है। प्रेम ने कभी पृथकता को नहीं जाना। प्रेम कभी फासले नहीं जानता, दूरी नहीं जानता। लेकिन हम तो हर तरह से दीवालों में बँधे रहे हैं न मालूम कितने तरह की दीवालें हमने खड़ी कर रखीं हैं और ये दीवालें भी बढ़ाते चले जाते हैं। अगर प्रेम हमारे भीतर पैदा हुआ है या होने का है, उसके अंकुरित होने की शुरूआत हुई है, तो गिरा दो उन दीवालों को जो तुम्हें किसी भी मनुष्य से दूर करती हों। उन शब्दों को अलग कर दो जो तुम्हारे और दूसरे मनुष्य के बीच फासला पैदा करते हों और स्मरण रखो कि किसी भी तरह की सीमा-रेखा मूलतः हिंसात्मक मन का लक्षण है।

हमारा पुराना शब्द है संग्राम। शायद तुम्हें खयाल भी न हो, शब्दकोश में पढ़ने जाओगे तो पता चलेगा—संग्राम का अर्थ है 'युद्ध' लेकिन और गहरी खोज करोगे तो तुम्हें पता चलेगा संग्राम का मतलब होता है; दो गाँवों की सीमा, दो गाँवों को अलग करनेवाली रेखा। कब यह शब्द युद्ध का पर्यायवाची बन गया? कुछ पता नहीं है लेकिन यह बड़ा अर्थपूर्ण है। जहाँ दो गाँवों के बीच सीमा है, वहाँ युद्ध भी है। जहाँ सीमा है वहाँ युद्ध भी है। जहाँ दो आदमियों के बीच सीमाएँ हैं वहाँ भी युद्ध है। प्रेम की दुनियाँ तो उस दिन बन सकेगी, जिस दिन राष्ट्र की कोई सीमाएँ न हों। भारत की, पाकिस्तान की, चीन की और जापान की कोई सीमाएँ न हों। सीमाएँ हैं तो प्रेम की दुनियाँ नहीं बन सकती। हिन्दू और मुसलमान, जैन और बुद्ध की कोई सीमा न हो, उस दिन कोई दुनियाँ बन सकेगी जो प्रेम की हो। स्त्री और पुरुष की कोई

सीमा न हो, दरिद्र और अमीर की कोई सीमा न हो, तो उस दिन कोई जगत बन सकेगा जो प्रेम का हो। लेकिन इतनी सीमाओंवाला जगत प्रेम का कैसे हो सकता है ? कण-कण पर सीमाएँ हैं। इंच-इंच पर सीमाएँ हैं। हजारों सीमाओं में आदमी विभाजित है, और फिर हम बैठ कर प्रेम का गीत गा लेते हैं; अच्छे लगते हैं वे गीत, लेकिन वे गीत सच्चे नहीं हैं।

सबसे पहले निश्चित ही प्रेम की एक दुनियाँ बनानी है। आनेवाले नए बच्चे ही उसे बनायँगे। पुराने लोग उसे नहीं बना सके। असफल हो गए। अगर तुमने भी पुराने लोगों का अनुकरण किया तो तुम भी नहीं बना सकोगे। तुम भी अगर अपने शिक्षक, अपने गुरु, अपने पिता, अपनी माता की दुनियाँ के अनुकरण करनेवाले बने, तो तुम भी प्रेम की दुनियाँ नहीं बना सकते। उन्होंने जो बनाया है वह घृणा का जाल है और उनका ही अगर तुमने पीछा किया तो तुम समझ रखना कि तुम फिर एक ऐसी ही दुनियाँ बना लोगे जिसमें घृणा होगी, हिंसा होगी। हाँ, प्रेम के गीत होंगे, जो हमेशा से हैं, हजारों साल से हैं। कितने प्रेम के गीत, और कैसी दुनियाँ ? दुनियाँ बिलकुल उलटी है। गीत बिलकुल अलग हैं। गीत से दुनियाँ का वास्ता नहीं है।

पिछली पीढ़ियों ने घृणा का संसार बसाया था, इस तथ्य को जान लेना चाहिए। पिछली पीढ़ियों से तुम्हारी पीढ़ी में कोई चीज टूट जानी चाहिए, जिसका कोई सम्बन्ध न रह जाय। एक खाई पैदा हो जानी चाहिए तुम में और तुम्हारे माँ-बाप की दुनियाँ में। तुम्हारे माँ-बाप की दुनियाँ और तुम्हारे बीच कोई शृंखला खंडित हो जानी चाहिए। कोई नई कड़ी निर्मित होनी चाहिए और उस नई कड़ी का पहला सूत्र होगा "जीवन में जहाँ-जहाँ तुम्हें सीमा मालूम पड़े वहाँ–वहाँ अपने को सीमा से मुक्त करने की कोशिश करना।" जहाँ–जहाँ सीमा मालूम पड़े— जहाँ-जहाँ आ जाय दीवाल, तुम्हारे और दूसरे मनुष्य के बीच—वहाँ–वहाँ स्मरण रखना कि दीवाल को हटा देना है और आत्मा को वहाँ तक फैलाना है जहाँ फिर कोई दीवाल न रह जाय। फिर चाहे वह दीवाल धर्म की हो, चाहे धन की हो, चाहे प्रतिष्ठा की हो, चाहे राष्ट्र, की हो, चाहे कोई भी हो—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दीवाल को पहचानने की कोशिश करना।

जिस चीज ने प्रेम के संसार को नहीं बसने दिया है, वह और भी गहरी है। वह हमारे भीतर है। वह और भी गहरी है। मनुष्य के चित्त में इतनी घृणा,

इतनी ईर्ष्या इतना द्वेष क्यों पैदा होता है ? मनुष्य के भीतर से इतना अप्रेम क्यों निकलता है ? हम एक बात पर अगर ध्यान न देंगे तो फिर प्रेम नहीं निकल सकता। वह बात है "महत्वाकांक्षा"। जिस आदमी का चित्त महत्वाकांक्षी है वह आदमी प्रेमपूर्ण नहीं हो सकता, क्योंकि महत्वाकांक्षा हमेशा दूसरे से संघर्ष करने को कहती है। और प्रेम ? प्रेम दूसरे के लिए छोड़ने को कहता है, महत्वाकांक्षा दूसरे से छीनने को कहती है। अगर तुम एक कक्षा में हो तो बचपन से जहर पिलाना शुरू किया जाता है कि तुम हमेशा आगे होना, पीछे मत। पहले नंबर आना, और जो बच्चे पहले नम्बर आते हैं वे पुरस्कृत होते हैं। पीछे छूट जाते हैं वे अपमानित होते हैं। क्या तुम्हें पता है कि पहले आने का रोग तुम्हारे जीवन से प्रेम को हमेशा के लिए छीन लेगा ? शायद तुम्हें खयाल भी न होगा। शायद तुम कहोगे कि इससे और प्रेम से क्या संबंध ? लेकिन इससे प्रेम का इतना संबंध है जितना और किसी बात से नहीं। जब हम किसी को पीछे करते हैं और आगे आने में सुख पाते हैं तो सुख में दूसरे का दुख छिपा हुआ होता है। जब मैं आगे आता हूँ और मुझे खुशी होती है तो मुझे जानना चाहिए कि जो पीछे छूट गया है वह दुखी होता है। तो मेरे आगे आने का सुख दूसरे को दुख देने पर निर्भर है, और अगर मुझे बचपन से ही यह आदत हो गई कि मेरा सुख दूसरे को दुख देने पर निर्भर हो जाय तो क्या मेरे जीवन में कभी प्रेम हो सकेगा ? प्रेम का अर्थ है : मेरा सुख दूसरे को सुख देने पर निर्भर हो। घृणा का अर्थ है : मेरा सुख दूसरे को दुःख देने पर निर्भर हो। घृणा का अर्थ है मेरा सुख दूसरे को दुख देने पर निर्भर है, लेकिन तुम कहोगे हम तो पहले आने की कोशिश करते हैं, हमें किसी से क्या प्रयोजन ! लेकिन क्या तुम नहीं कह सकोगे यह बात कि तुम्हारी आगे आने की कोशिश में ही दूसरे का पीछे छूट जाना अनिवार्य रूप से निहित नहीं है ?

एक गांव में एक मेरे मित्र थे। उन्होंने एक बड़ा मकान बनाया था। वे बहुत खुश थे। उनका मकान बहुत बड़ा था, बहुत सुन्दर था। उस गाँव में वैसा कोई मकान नहीं था। वे कहने लगे, "मैं बहुत प्रसन्न हूँ। सब सुविधा है मकान में। सब अच्छा है।" मैंने उनसे कहा, "शायद तुम्हारी प्रसन्नता इस कारण से भी हो कि इस गाँव में ऐसा कोई दूसरा मकान नहीं है।" उन्होंने कहा, "नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है। मुझे दूसरे से क्या लेना-देना ? मकान मेरा सुविधापूर्ण है, इससे मैं खुश हूँ। दूसरे से इसका कोई संबंध नहीं।" फिर

भाग्य की बात वह घड़ी आ गई। उन्हें पीछे लौटकर जाना पड़ा अपने शब्दों से। तीन-चार वर्ष बाद मैं उनके घर फिर मेहमान हुआ। फिर उस मकान की बात चली। इस बार वे उदास थे, क्योंकि बगल में एक बड़ा मकान खड़ा हो गया था। वे कहने लगे, "आपने शायद ठीक ही कहा था। बगल के बड़े मकान ने मेरे चित्त को एकदम दुखी कर दिया। अब मैं समझ पाता हूँ कि वह प्रसन्नता मेरे मकान के कारण न थी, वह शायद बगल में जो छोटे-छोटे झोपड़े थे उनके कारण ही थी।" बड़े मकान, बड़े मकान का मजा नहीं, किसी के झोपड़े होने का मजा है। धन का मजा, धन है, इसका नहीं; दूसरे निर्धन हैं, इसका मजा है। अच्छे वस्त्र पहन लेने का मजा इतना ही नहीं कि मेरे पास अच्छे वस्त्र हैं; बल्कि इसका मजा है कि दूसरे लोग नंगे खड़े हैं। अगर महत्वाकांक्षा यह पाठ सिखाती है तो क्या दुनियाँ कभी प्रेम की बन सकती है? पूछो अपने मन से। क्या यह संभव है? अगर महत्वाकांक्षा से भरा हुआ मन एक ही सुख को जानता हो कि दूसरों को कैसे पीछे छोड़ दूँ; मैं कैसे आगे हो जाऊँ, मकान में, पद में, प्रतिष्ठा में, यश में, तो वह किसी को प्रेम कर सकेगा? कैसे करेगा प्रेम? क्योंकि प्रेम कहता है हट जाओ। महत्वाकांक्षी चित्त कहता है हटाओ। क्राइस्ट ने एक वचन कहा है। वह बहुत अद्भुत है। मनुष्य जाति के इतिहास में बहुत अद्भुत वचन क्राइस्ट ने कहा है, "धन्य हैं वे लोग जो पीछे खड़े होने में समर्थ हैं।" क्राइस्ट ने धन्यता मानी है इस बात की कि जो पीछे खड़े होने में समर्थ हैं, वे धन्य हैं। लेकिन हम सब तो प्रथम खड़े होने के लिए विक्षिप्त हुए जा रहे हैं, पागल हुए जा रहे हैं। यह मत सोचना कि आगे होने की दौड़ एक ही दिशा में चलती है। यह सब दिशाओं में चलती है। एक आदमी धन की दिशा में जाता है, तो आगे होना चाहता है। एक आदमी सेवा करता है समाज में, तो वह आगे होना चाहता है। वह भी चाहता है कि इस गाँव में कोई और सेवक न रह जाय। वह चाहता है कि इस नगर में मुझसे बड़ा कोई सेवा करनेवाला नहीं हो। मैं सेवक, मुझसे आगे कोई भी नहीं। अगर सेवा में आगे होने का खयाल हो सकता है तब तो सेवा भी एक महत्वाकांक्षा होगी। और ऐसी महत्वाकांक्षा कितना दुख, कितना दारिद्रय पैदा करती है? कितनी दीनता पैदा करवाती है? यदि सभी लोग इस दौड़ में हों तो समाज एक युद्ध का स्थल न बन जायगा तो क्या होगा? लेकिन यह हमें सिखाया जा रहा है हजारों साल से। शिक्षा का केन्द्र महत्वाकांक्षा है। जो जितना महत्वाकांक्षी होता है

वह उतना ही सफल हो जाता है। वह विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक लेकर निकलता है। सम्मानित होकर निकलता है। फिर वह जिन्दगी में दूसरी दौड़ में लग जाता है। चौबीस घंटे वह लोगों को हटा रहा है, हटो, मुझे रास्ता दो। यह माँग घृणा की ही माँग है, प्रेम की माँग नहीं है। इसलिए बाहर सीमाएँ मिटानी हैं और भीतर महत्वाकांक्षा को विदा देनी है। जिनको हम साधु और संत कहते हैं उनमें एक बड़ी दौड़ है कि कौन महा साधु है? कौन परम संत है! उनका मन भी ईर्ष्याग्रस्त हो जाता है कोई कह दे आप कुछ भी नहीं, आपसे बड़ा अमुक आदमी है तो चित्त में वही ईर्ष्या और जलन काम करने लगती है। वे भी इस दौड़ में पड़े हुए हैं कि मोक्ष में ऐसा न हो कि हम पीछे रह जायँ। अगर किसी ने दो कपड़े छोड़े हैं तो वे सारे कपड़े छोड़ कर नग्न खड़े हो जाते हैं कि कहीं हम पीछे न रह जायँ। पीछे रह जाने को कोई भी राजी नहीं है। सभी आगे जाने को उत्सुक हैं। धर्म के नाम पर वही उत्सुकता है। सेवा के नाम पर भी वही उत्सुकता है क्योंकि मनुष्य का चित्त महत्वाकांक्षी है। इस चित्त को हम न बदलें तो हम जो भी करेंगे उससे दुनियाँ में शरारत पैदा होगी। उससे दुनियाँ में दुख पैदा होगा। उससे दुनियाँ में परेशानी पैदा होगी। महत्वाकांक्षी अंधा हो जाता है, उसे एक ही धुन रह जाती है।

सेवक भी ऐसा ही कुछ करता रहा है इसलिए दुनियाँ अच्छी नहीं हो पाई। उसे सेवा करनी है। उसे सेवा में आगे जाना है। उसे कोई फिक्र नहीं है कि वह क्या कर रहा है। दो सेवकों में नहीं बनती है, कभी दो समाज-सुधारकों में नहीं बनती है। सबको आगे हो जाना है। सेवा और समाज-सुधार भी उनके लिए महत्वाकांक्षा के ही सूत्र हैं। उसमें कोई भेद नहीं है। एक आदमी दुकान खोल रहा है, एक सेवा की दुकान खोल देता है लेकिन महत्वाकांक्षी अगर पीछे है तो तुम जान लेना यह सेवा जहर है। उससे खतरे होंगे। उससे लाभ नहीं होनेवाला है।

करें क्या? चित्त तो महत्वाकांक्षी है ही। इस महत्वाकांक्षा को हम क्या करें? चित्त तो आगे होना चाहता है, लेकिन शायद कोई भूल हो रही है। रवीन्द्रनाथ ने गीत लिखे। मरने के कोई आठ दिन पहले किसी मित्र ने आकर पूछा कि आपने ये गीत क्यों लिखे? किससे आप आगे होना चाहते थे? रवीन्द्रनाथ ने कहा कि गीत मैंने इसलिए लिखे कि गीत मेरे आनन्द थे। किसी से आगे और पीछे का सवाल न था। गीत मेरी खुशी थे। मेरा हृदय उनको गा कर आनन्दित

भाग्य की बात वह घड़ी आ गई। उन्हें पीछे लौटकर जाना पड़ा अपने शब्दों से। तीन-चार वर्ष बाद मैं उनके घर फिर मेहमान हुआ। फिर उस मकान की बात चली। इस बार वे उदास थे, क्योंकि बगल में एक बड़ा मकान खड़ा हो गया था। वे कहने लगे, "आपने शायद ठीक ही कहा था। बगल के बड़े मकान ने मेरे चित्त को एकदम दुखी कर दिया। अब मैं समझ पाता हूँ कि वह प्रसन्नता मेरे मकान के कारण न थी, वह शायद बगल में जो छोटे-छोटे झोपड़े थे उनके कारण ही थी।" बड़े मकान, बड़े मकान का मजा नहीं, किसी के झोपड़े होने का मजा है। धन का मजा, धन है, इसका नहीं; दूसरे निर्धन हैं, इसका मजा है। अच्छे वस्त्र पहन लेने का मजा इतना ही नहीं कि मेरे पास अच्छे वस्त्र हैं; वल्कि इसका मजा है कि दूसरे लोग नंगे खड़े हैं। अगर महत्वाकांक्षा यह पाठ सिखाती है तो क्या दुनियाँ कभी प्रेम की बन सकती है? पूछो अपने मन से। क्या यह संभव है? अगर महत्वाकाँक्षा से भरा हुआ मन एक ही सुख को जानता हो कि दूसरों को कैसे पीछे छोड़ दूँ; मैं कैसे आगे हो जाऊँ, मकान में, पद में, प्रतिष्ठा में, यश में, तो वह किसी को प्रेम कर सकेगा? कैसे करेगा प्रेम? क्योंकि प्रेम कहता है हट जाओ। महत्वाकाँक्षी चित्त कहता है हटाओ। क्राइस्ट ने एक वचन कहा है। वह बहुत अद्भुत है। मनुष्य जाति के इतिहास में बहुत अद्भुत वचन क्राइस्ट ने कहा है, "धन्य हैं वे लोग जो पीछे खड़े होने में समर्थ हैं।" क्राइस्ट ने धन्यता मानी है इस बात की कि जो पीछे खड़े होने में समर्थ हैं, वे धन्य हैं। लेकिन हम सब तो प्रथम खड़े होने के लिए विक्षिप्त हुए जा रहे हैं, पागल हुए जा रहे हैं। यह मत सोचना कि आगे होने की दौड़ एक ही दिशा में चलती है। यह सब दिशाओं में चलती है। एक आदमी धन की दिशा में जाता है, तो आगे होना चाहता है। एक आदमी सेवा करता है समाज में, तो वह आगे होना चाहता है। वह भी चाहता है कि इस गाँव में कोई और सेवक न रह जाय। वह चाहता है कि इस नगर में मुझसे बड़ा कोई सेवा करनेवाला नहीं हो। मैं सेवक, मुझसे आगे कोई भी नहीं। अगर सेवा में आगे होने का खयाल हो सकता है तब तो सेवा भी एक महत्वाकांक्षा होगी। और ऐसी महत्वाकांक्षा कितना दुख, कितना दारिद्रय पैदा करती है? कितनी दीनता पैदा करवाती है? यदि सभी लोग इस दौड़ में हों तो समाज एक युद्ध का स्थल न बन जायगा तो क्या होगा? लेकिन यह हमें सिखाया जा रहा है हजारों साल से। शिक्षा का केन्द्र महत्वाकांक्षा है। जो जितना महत्वाकांक्षी होता है

वह उतना ही सफल हो जाता है। वह विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक लेकर निकलता है। सम्मानित होकर निकलता है। फिर वह जिन्दगी में दूसरी दौड़ में लग जाता है। चौबीस घंटे वह लोगों को हटा रहा है, हटो, मुझे रास्ता दो। यह माँग घृणा की ही माँग है, प्रेम की माँग नहीं है। इसलिए बाहर सीमाएँ मिटानी हैं और भीतर महत्वाकांक्षा को विदा देनी है। जिनको हम साधु और संत कहते हैं उनमें एक बड़ी दौड़ है कि कौन महा साधु हैं ? कौन परम संत है ! उनका मन भी ईर्ष्याग्रस्त हो जाता है कोई कह दे आप कुछ भी नहीं, आपसे बड़ा अमुक आदमी है तो चित्त में वही ईर्ष्या और जलन काम करने लगती है। वे भी इस दौड़ में पड़े हुए हैं कि मोक्ष में ऐसा न हो कि हम पीछे रह जायँ। अगर किसी ने दो कपड़े छोड़े हैं तो वे सारे कपड़े छोड़ कर नग्न खड़े हो जाते हैं कि कहीं हम पीछे न रह जायँ। पीछे रह जाने को कोई भी राजी नहीं है। सभी आगे जाने को उत्सुक हैं। धर्म के नाम पर वही उत्सुकता है। सेवा के नाम पर भी वही उत्सुकता है क्योंकि मनुष्य का चित्त महत्वाकांक्षी है। इस चित्त को हम न बदलें तो हम जो भी करेंगे उससे दुनियाँ में शरारत पैदा होगी। उससे दुनियाँ में दुख पैदा होगा। उससे दुनियाँ में परेशानी पैदा होगी। महत्वाकांक्षी अंधा हो जाता है, उसे एक ही धुन रह जाती है।

सेवक भी ऐसा ही कुछ करता रहा है इसलिए दुनियाँ अच्छी नहीं हो पाई। उसे सेवा करनी है। उसे सेवा में आगे जाना है। उसे कोई फिक्र नहीं है कि वह क्या कर रहा है। दो सेवकों में नहीं बनती है, कभी दो समाज-सुधारकों में नहीं बनती है। सबको आगे हो जाना है। सेवा और समाज-सुधार भी उनके लिए महत्वाकांक्षा के ही सूत्र हैं। उसमें कोई भेद नहीं है। एक आदमी दुकान खोल रहा है, एक सेवा की दुकान खोल देता है लेकिन महत्वाकांक्षी अगर पीछे है तो तुम जान लेना यह सेवा जहर है। उससे खतरे होंगे। उससे लाभ नहीं होनेवाला है।

करें क्या ? चित्त तो महत्वाकांक्षी है ही। इस महत्वाकांक्षा को हम क्या करें ? चित्त तो आगे होना चाहता है, लेकिन शायद कोई भूल हो रही है। रवीन्द्रनाथ ने गीत लिखे। मरने के कोई आठ दिन पहले किसी मित्र ने आकर पूछा कि आपने ये गीत क्यों लिखे ? किससे आप आगे होना चाहते थे ? रवीन्द्रनाथ ने कहा कि गीत मैंने इसलिए लिखे कि गीत मेरे आनन्द थे। किसी से आगे और पीछे का सवाल न था। गीत मेरी खुशी थे। मेरा हृदय उनको गा कर आनन्दित

हुआ था। आगे और पीछे होने का सवाल न था। किसी से न आगे होना था, न किसी से पीछे। 'वानगाग' एक डच पेंटर था। किसी ने उससे पूछा, "क्यों तुमने ये चित्र बनाए? क्यों किया पेंट? क्यों इतनी मेहनत की? क्यों अपना जीवन लगाया?" वानगाग ने कहा कि और किसी कारण से नहीं। मेरा हृदय चित्रों को बनाकर परमानंद को उपलब्ध हुआ है।

महत्वाकांक्षा दूसरे से प्रतिस्पर्धा है, दूसरे से आगे होना है। लेकिन सच्ची शिक्षा मनुष्य को वह रहस्य सिखायगी जिससे वह खुद से आगे होने में समर्थ हो जाय, रोज-रोज खुद से आगे, दूसरे से नहीं। कल साँझ को सूर्य जहाँ मुझे छोड़े, आज सुबह सूर्य उगते मुझे वहाँ न पाये। मैं अपने भीतर और गहरा चला जाऊँ। जिस काम को मैंने चाहा है, उसमें मेरे पैर और दस सीढ़ियाँ नीचे उतर जायँ, जिस पहाड़ को मैंने चढ़ना चाहा है, मैं और दस कदम आगे चला जाऊँ। किसी दूसरे से नहीं, अपने से। कल मैं जहाँ था, साँझ मुझे आगे पाये, तो मैं जीवित हूँ। मुझे अपने को पार कर जाना है। लेकिन अब तक जो शिक्षा दी गई है वह, दूसरे को पार कर जाने की शिक्षा है। इसलिए दुनियाँ में घृणा है, इसलिए दुनियाँ में प्रेम नहीं है। एक ऐसी शिक्षा को जन्म देना है, जो व्यक्ति को खुद अपना अतिक्रमण सिखाये। आदमी अपने को पार करे, दूसरे को नहीं। दूसरे से क्या प्रयोजन है? दूसरे से क्या सम्बन्ध है? मेरी खुशी रोज गहरी होती चली जाय। मेरे जीवन की बगिया में रोज नए-नए फूल खिलते चले जायँ। मैं रोज उस नई ताजी जिन्दगी के अनुभव करता चला जाऊँ। मुझ से कुछ सृजन होता चला जाय। दूसरे से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। एक-एक व्यक्ति ऐसा जिये जैसे जमीन पर अकेला होता, तो जीता। तभी शायद हम मनुष्य को प्रेम पैदा करने में सफल बना सकेंगे। क्योंकि मनुष्य जब अपने को प्यार करता है तो रोज-रोज उसके पास बाँटने को, लुटाने को, बहुत-कुछ इकट्ठा हो जाता है, रोज बाँटता है फिर भी पाता है। भीतर और इकट्ठा होता चला जा रहा है, क्योंकि वह रोज अपने को प्यार करता जा रहा है, क्योंकि वह रोज अपने जीवन के नए शिखरों को स्पर्श करता जा रहा है। वह नए आकाश को छू रहा है। नए क्षितिज को पार कर रहा है। उसके पास बहुत इकट्ठा हो जाता है। उसे वह क्या करे? उसे वह बाँटता है। जो अपने को पार करने में लगता है उसका जीवन एक बाँटना ही हो जाता है। उसकी खुशी फिर बाँटना हो जाती है और महत्वाकांक्षी की खुशी होती है

संग्रह करने में। सबसे छीन लेना है और अपने पास इकट्ठा कर लेना है। जो व्यक्ति अपने को पार होने में समर्थ होता है उसकी खुशी हो आती है बाँट देना, लुटा देना और हमेशा उसे ऐसा लगता है कि जितना मैं दे सकता था उससे मैं कम दे पाया। रवीन्द्रनाथ के मरने के पहले किसी ने उनको कहा कि तुमने तो इतने गीत गाए, कहते हैं दुनिया में किसी ने न गाए। छह हजार गीत, और एक-एक गीत ऐसा जो संगीत में बाँधा जा सके। तुम तो महाकवि हो। कोई ऐसा नहीं हुआ अब तक, जिसने छह हजार गीत गाए होंगे जो संगीत में बँध जायँ। रवीन्द्रनाथ की आँखों में आँसू आ गए। पूछनेवाले ने समझा कि वे प्रशंसा से प्रभावित हो गए हैं लेकिन रवीन्द्रनाथ ने कहा, "मैं रो रहा हूँ दुःख से। तुम कहते हो मैंने गीत गाए और इधर मैं, मौत करीब आते देख आँख बंद करके परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि हे परमात्मा, अभी तो मैं केवल साज बिठा पाया था, अभी गीत गाया कहाँ? अभी तो तैयारी चलती थी। अभी तो मैं सितार ठोक-पीट कर तैयार कर पाया था। अब गाता और यह विदा का क्षण आ गया। मुझे एक मौका और देना कि जो मैंने इकट्ठा किया था उसे बाँट सकूँ। अभी तो बहुत-कुछ इकट्ठा था। मेरा हृदय एक बादल की तरह था जिसमें पानी भरा था और धरती प्यासी थी और मेरे विदा का वक्त आ गया और बदली ऐसी चली जायगी भरी-भरी, और अब लुटा नहीं सकेगी जो उसके पास था। मैं तो उस फूल की तरह था जो अभी कली था और जिसमें सुगन्ध बन्द थी। अभी मैं खुलता और सुगंध बाँटता। लोग कहते हैं मैंने गीत गाए, मैं तो अभी साज बिठा पाया था और यह विदा का वक्त आ गया।" जो आदमी लुटा देगा, जो बाँटेगा निरंतर, वह अनुभव करेगा कि उससे ज्यादा उसके भीतर बहुत घनीभूत हो आया था जो और लुट जाना चाहता था। ऐसे व्यक्ति का जीवन प्रेम का जीवन है। आत्मदान प्रेम है। लेकिन बाँटेगा कौन? जो छीनने को उत्सुक नहीं है वही। दूसरे को देगा कौन? जो दूसरे से आगे निकल जाने को आतुर नहीं है वही, दूसरे के लिए जीयेगा कौन? जो दूसरे के जीवन को पीछे नहीं हटा देता। लेकिन हमारा सारा सम्मान तो उनके लिए जाता है जो दूसरे को हटा देते हैं। राधाकृष्णन् के पहले जन्म दिन पर सारे मुल्क में शिक्षक दिवस मनाया गया। मैं भी एक नगर में था। भूल से मुझे भी कोई उस शिक्षक-दिवस पर ले गया। बड़ा गुणगान था इस बात का कि एक

शिक्षक राष्ट्रपति हो गया है । मैं बहुत हैरान था । मैंने कहा कि यह शिक्षक का सम्मान नहीं है कि एक शिक्षक राष्ट्रपति हो गया । हाँ, एक राष्ट्रपति अगर शिक्षक हो जाता तो शिक्षक का सम्मान था । लेकिन शिक्षक राजनीतिक हो जाय, एक पद पर पहुँच जाय, यह तो कोई शिक्षक का सम्मान नहीं है । एक राष्ट्रपति अगर कहे कि मैं छोड़ता हूँ यह राष्ट्रपति का पद, और जाकर गाँव में शिक्षक हो जाना चाहता हूँ, तो उस दिन शिक्षक-दिन मनाना चाहिए । अभी शिक्षक–दिन मनाने का कौन–सा वक्त आ गया है ? अभी तो एक शिक्षक ने कहा है कि छोड़ता हूँ शिक्षक होना और जाता हूँ राजनीति के रास्ते पर, जहाँ सबको अलग करके मैं आगे निकल जाऊँ । यह महत्वकांक्षा की स्वीकृति और सम्मान है । शिक्षक की तो स्वीकृति और सम्मान इसमें नहीं है । दीन–हीन शिक्षक का इससे क्या सम्बन्ध ? पागल है शिक्षक अगर सोचता हो कि उसका सम्मान है । और गलती में है वह क्योंकि इसका मतलब एक ही होगा कि बाकी शिक्षकों को भी यह नशा चढ़े कि हम भी निकलें आगे और पहुँच जायें कहीं ।

! हम आगे निकलने वाले को बहुत सम्मान दे चुके । पीछे जो खड़े हैं उनका भी सम्मान हमारे मन में होना चाहिए । अगर हमारा हृदय प्रेम-पूर्ण हो तो उनके प्रति हमारा सम्मान होगा । जो पीछे खड़े रह जाते हैं, जिन्हें शायद कोई कभी जानता भी नहीं, पहचानता भी नहीं, कोई अखबार जिनकी खबर नहीं छापते, कोई जिनको फूल-माला नहीं पहनाते, कोई सिंहासन जिनके चरणों के बोझ से बोझिल नहीं होता हैं, वे जो दूर खड़े रह जाते हैं, जहाँ सबके पद की धूल उड़ती है, वे जो पीछे खड़े रह जाते हैं, जहाँ सूर्य की रोशनी नहीं पहुँचती है, जहाँ अंधेरा है, वे जो छाया में छिपे रह जाते हैं, लेकिन प्रतीक्षा करते है और प्रेम करते हैं, अपने को चाहते हैं, किस दिन होगा वह सौभाग्य का दिन जब उनका भी सम्मान होगा ? जिस दिन उनका सम्मान हमारे मन में होगा उस दिन प्रेम का नगर बस सकेगा । लेकिन उस सम्मान को कौन लायगा ? हम जो महत्वाकाँक्षा से भरे हैं ?/ हम तो नहीं ला सकेंगे। लेकिन हम भी अगर अंतिम पंक्ति में खड़े होने के आनन्द को, दूसरे से प्रतिस्पर्धा छोड़ पुलक को अनुभव कर सकें, हम भी अगर दूसरे की प्रतियोगिता और दूसरे की देने की तुलना को विदा कर सकें तो शायद हम द्वार बन जायेंगे उनके सम्मान का जो कभी सम्मानित नहीं रहे ।" लेकिन अमेरिका का राष्ट्रपति हुआ । उसका

बाप एक गरीब चमार था। कौन सोचता था कि चमार के घर एक लड़का पैदा होगा, जो मुल्क में आगे खड़ा हो जायगा ? लेकिन अनेक लोगों के मन को चोट पहुँची। एक चमार का लड़का राष्ट्रपति बन जाय ! दूसरे जो धनी थे और सौभाग्यशाली घरों में पैदा हुए थे, वे पिछड़ रहे थे। जिस दिन सीनेट में पहला दिन लिंकन बोलने को खड़ा हुआ, तो किसी एक प्रतिस्पर्धी ने, किसी एक महत्वाकांक्षी ने, जिसका क्रोध प्रबल होगा, जो सह नहीं सका होगा, वह खड़ा हो गया। उसने कहा "सुनो लिंकन, यह मत भूल जाना कि तुम राष्ट्रपति हो गए तो तुम एक चमार के लड़के नहीं हो। नशे में मत आ जाना। तुम्हारा बाप एक चमार था, यह खयाल रखना।" सारे लोग हँसे, लोगों ने खिल्ली उड़ाई, लोगों को आनन्द आया कि चमार का लड़का राष्ट्रपति हो गया था। चमार का लड़का कह कर उन्होंने उसकी प्रतिभा छीन ली। फिर नीचे खड़ा कर दिया। लेकिन लिंकन की आँखें खुशी के आँसुओं से भर गईं। उसने हाथ जोड़ कर कहा कि मेरे स्वर्गीय पिता की तुमने स्मृति दिला दी, यह बहुत अच्छा किया। इस क्षण में मुझे खुद उनकी याद आनी चाहिए थी। लेकिन मैं तुमसे कहूँ, मैं उतना अच्छा राष्ट्रपति कभी न हो सकूँगा, जितने अच्छे चमार मेरे बाप थे। वे जितने आनन्द से जूते बनाते थे, शायद मैं उतने आनन्द से इस पद पर नहीं बैठ सकूँगा। वे अद्‌भुत व्यक्ति थे। मैंने उन्हें जूते बनाते और गीत गाते देखा था। मैंने उन्हें दरिद्रता में और झोंपड़े में आनन्द से मग्न देखा था। मेरी वह क्षमता नहीं, मेरी वह प्रतिभा नहीं। वे बड़े अद्‌भुत थे, बहुत अलौकिक थे। मैं उनके समक्ष कुछ भी नहीं हूँ।

यह जो लिंकन कह सका, एक दरिद्र वृद्ध चमार के बावत, जिसने गीत गा कर जूते बनाए थे और जो आनंदित था और जो अपने जीवन से तृप्त था। उसे उसने स्वीकार किया था। जीवन में जो उसे मिला था, उसके अनुग्रह से वह भरा था। उसके प्राण निस्पंद थे। वह किसी की प्रतिस्पर्धा में न था। वह किसी की दौड़ में न था। वह अपनी जिंदगी के आनन्द में मग्न था।

क्या तुम भी अपने जीवन में आनन्द में मग्न होने के खयाल को जन्म दे सकोगे ? क्या प्रतिस्पर्धा को छोड़कर अपने में, निज में, निजता में, कोई खुशी का कारण खोज सकोगे ? दूसरे के सुख में नहीं, अपने आनंद में क्या तुम कोई द्वार खोज सकोगे ? अगर खोज सको तो एक दुनियाँ बन सकती है, जो प्रेम की नगरी है। अन्यथा नहीं।

मैंने एक-दो छोटी-सी बातें कहीं। सीमाएँ तोड़ देनी हैं अपने बाहर, और भीतर प्रतिस्पर्धा और महत्वाकांक्षा छोड़ देनी है। यह मत सोचना कि महत्वाकाँक्षा छोड़ देंगे तो विकास रुक जायगा क्योंकि हमारा सारा विकास यही है कि आगे निकलो, । एक बुखार चढ़ा हुआ है, दूसरे से आगे निकलना है। उसमें हम दौड़-धूप कर लेते हैं। अगर हम किसी से आगे निकलने का खयाल छोड़ देंगे फिर गति कहाँ होगी ? विकास कहाँ होगा ? यह मत सोचना, । इस दौड़ में, इस ज्वर में कोई गति नहीं होती है। केवल हम दौड़ते दिखाई पड़ते हैं। गति कोई भी नहीं है इसमें। क्योंकि हमारी सारी शक्ति संघर्ष में लीन हो जाती है। सारी शक्ति लग जाती है लड़ने में। लेकिन जो आदमी किसी से लड़ने नहीं जा रहा है उसके प्राण बच जाते है, उसके भीतर बच रहता है शक्ति का अथाह सागर। वह शक्ति अपने आप काम शुरू करती है, क्योंकि शक्ति निष्क्रिय नहीं बैठी रह सकती। शक्ति की अपनी सक्रियता है। उस शक्ति की अपनी गति है। एक नदी में, धारा में, पानी है। पर्वत पर बहुत पानी गिरा है और नदी भरी हुई है। तो तुम सोचते हो वह आया हुआ पानी अपना मार्ग नहीं बना लेगा। वह चीर लेगा पहाड़ों को, तोड़ देगा मैदानों को, अपनी राह सागर तक खोज लेगा। मगर, नदी में ताकत होनी चाहिए। नदी किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं कर रही है। कोई दूसरी नदी से आगे निकल जाने का सवाल नहीं है। किसी दूसरी नदी का शायद उसे पता भी नहीं है कि कोई और नदी भी जमीन पर है, लेकिन उसकी शक्ति उसे सागर की तरफ ले जाती है।

क्या तुम भी एक ऐसी सरिता बनोगे जिसकी अपनी शक्ति उसे सागर तक ले जाय ? जिसकी अपनी आत्मा, ऊर्जा उसे परमात्मा के सागर तक पहुँचा दे। लेकिन हम तो विक्षिप्त और बीमार लोग हैं। हम तो किसी से लड़ कर आगे निकलना चाहते हैं। पर लड़ने में हम वहीं रह जायेंगे, जहाँ हम थे और खो देंगे वह शक्ति जो कहीं ले जा सकती थी। महावीर का किससे द्वन्द्व है ? बुद्ध का किससे संघर्ष है ? किससे प्रतियोगिता है ? किसके मुकाबिले वे खड़े हैं ? किससे आगे निकलना है ? किसी से भी नहीं। कोई नहीं है वहाँ। अकेले हैं वे। अपनी ऊर्जा से गतिमान, अपनी ही शक्ति से प्रवाहित, अपनी ही शक्ति के वेग से उनके चरण बढ़े चले जा रहे हैं। ऐसा ही जब कोई बढ़ता है तो उसका जीवन आनन्दपूर्ण होता है। जब कली फूल बनती है तो आनन्द से भर जाती है, जब बीज वृक्ष बनता है तब आनन्द से भर जाता है। उसके आनन्द

की खबर ही उसके फूल और कली से प्रकट होती है। जब कोई व्यक्ति अपनी आत्म ऊर्जा में जीता है और परिपूर्ण विकसित होता है तब खुशी से उसके प्राण भर जाते हैं। आनन्द का लक्षण है बाँटना। दुःख सिकुड़ना चाहता है, आनन्द बँट जाना चाहता है। तुमने खुद देखा होगा। जब तुम दुखी हो जाओगे, तब एक कोने में बंद हो जाने का मन होगा। कोई न बोले। कोई बात न करे। कोई छेड़े न। अगर बहुत दुःख में होगे तो चाहोगे कि मर ही जायँ, ताकि कोई बीच में न आए। दुःख सिकोड़ता है, और आनन्द बँट जाना चाहता है। अगर आनन्द फलित होगा, तो द्वार खुल जायँगे। घर से भाग पड़ोगे तुम उस जगह, जहाँ सब हैं और वहाँ जहाँ बाँटने का अवसर है। जिस दिन तुम्हारे प्राण फूल की तरह खिलें, उस दिन तुम्हारा आनन्द होगा, उस दिन आनन्द बँटेगा। उस दिन वह बँट जाना ही तुम्हारी प्रार्थना है, वही परमात्मा के चरणों में तुम्हारा समर्पण है। वे ही फूल हैं जो कोई मनुष्य परमात्मा के पैरों में रख कर अपनी कृतज्ञता का प्रमाण दे सकता है। वे ही फूल हैं तुम्हारे आनन्द के, जो तुम बाँट दोगे। वही सुगन्ध है जो तुमसे बिखर जायगी। और उस दिन तुम्हें लगेगा कि जरूर प्रेम के नगर के तुम वासी हो गए हो।

कभी भगवान करे वह दुनिया बने जो प्रेम की हो। हमें सिर्फ प्रेम के गीत न गाने पड़ें, सारी जिंदगी प्रेम का एक गीत हो जाय।

जीवन—एक स्वप्न

कबीर एक दिन कह रहे हैं : आकाश में बादल घिरे हैं। उनका घनघोर नाद सुनाई पड़ रहा है। साधुओं ने आकाश की तरफ देखा। वहाँ न कोई बादल है, न कोई घनघोर नाद है। उन्होंने बहुत हैरान होकर कबीर की ओर देखा। लेकिन, कबीर की आँखें बंद हैं, और वे किसी भीतरी आकाश की ओर किन्हीं उन बादलों की बात कर रहे हैं, जो मनुष्य की अंतरात्मा में घिरते और बरसते हैं। फिर कबीर ने कहा : साधुओ, अमृत की वर्षा हो रही है। फिर उन सारे घिरे लोगों ने बाहर की तरफ देखा। उसी आकाश की तरफ जिससे हम परिचित हैं। लेकिन, वहाँ कोई वर्षा नहीं हो रही है। अमृत तो दूर, पानी की बूंद भी नहीं पड़ रही है। उन्होंने चौंक कर फिर कबीर की तरफ देखा। लेकिन उनकी आँखें बंद हैं और वह वही कहे जा रहे हैं कि सुने नहीं, पीओ,

अमृत बरस रहा है, खाली मत रह जाओ और वे सब पूछते हैं कबीर से, कहाँ बरस रहा है ? कहाँ है बादल ? कहाँ है आकाश ? कहाँ है अमृत ? सोए हुए आदमी सिर्फ बाहर की दुनियाँ से परिचित होते हैं। जागे हुए आदमी एक और नई दुनिया को जान पाते हैं जो भीतर की दुनियाँ है। जो आदमी सोया हुआ है वह आदमी भीतर कभी प्रवेश नहीं कर पाता है। सोए हुए आदमी की पहली पहचान है, उसकी भीतरी दुनियाँ–जैसी कोई दुनियाँ नहीं होती, उसका सब बाहर होता है। उसका धन बाहर होता है, उसके मित्र बाहर होते हैं, उसका यश बाहर होता है, यहाँ तक कि उसका परमात्मा भी बाहर होता है, उसका सब बाहर होता है। उसके भीतर कुछ होता ही नहीं। वह भीतर खाली और रिक्त अंधकार से भरा होता है। जो आदमी सोया है, उसकी जिंदगी एक सपने से ज्यादा नहीं हो सकती। जिंदगी सत्य बनती है जागने से।

मीरा नाच रही है एक गाँव की सड़कों पर। गाँव के लोग कह रहे हैं पागल है, क्योंकि उनकी समझ में नहीं आता, किसकी माँग पर नाच रही है ! मीरा जिसके सामने नाच रही है, वह उसके भीतर है। वह उन्हें दिखाई नहीं पड़ता है। जिन्हें भीतर दिखाई नहीं पड़ता, उन्हें दूसरे के भीतर का तो दिखाई पड़ ही नहीं सकता। गाँव के लोग पूछते हैं—पागल हो गई हो ? बावरी हो गई हो ? मीरा कहती है—तुम भी नाचो। पग में घूँघरू बाँधो और नाचो, बड़ा आनन्द है। गाँव के लोग कहते हैं—पागल हो गई हो ? जीवन में सुख ही नहीं मिल रहा है, दुःख ही दुःख है, आनन्द का क्या अर्थ ? यह शब्द हम सुनते हैं, पर इसका हमें पता नहीं है। सोए हुए आदमी का दूसरा लक्षण है, वह सुख जानता है, दुःख जानता है, आनन्द नहीं जानता है। शायद हम सोचते हैं कि आनन्द भी सुख का ही कोई बड़ा रूप होगा तो हम गलत सोचते हैं। सुख और दुःख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सुख भी एक तनाव है, दुःख भी एक तनाव है। इसलिए सुख से भी मन थक जाता है और ऊब जाता है। दुःख से तो ऊबता ही है, सुख से भी ऊब जाता है। सुख भी एक उत्तेजना है और दुःख भी एक उत्तेजना है, इसलिए दुःख की उत्तेजना में भी मृत्यु हो सकती है, सुख की उत्तेजना में भी मृत्यु हो सकती है। दोनों ही उत्तेजित अवस्थाएँ हैं। और जहाँ उत्तेजना है; वहाँ आनन्द कहाँ है ? आनन्द तो वहाँ है, जहाँ कोई उत्तेजना नहीं है, जहाँ कोई तनाव नहीं है, जहाँ कोई अशान्ति नहीं है। सोया हुआ

आदमी आनन्द से अपरिचित होता है और जो आनन्द से अपरिचित है, उसकी जिंदगी एक सपना है। जैसे कोई एक सिनेमा-गृह में बैठा हो, वहाँ पर्दे पर बहुत तरह की तस्वीरें आती हैं, दुख के क्षण आते हैं, दुखद घटनाएँ आती हैं, सुख के क्षण आते हैं, सुखद घटनाएँ आती हैं, पर्दे पर सब आता है। वह जो देखनेवाला बैठा है, उसको छोड़कर पर्दे पर सब आता है। वह पर्दे के बाहर रह जाता है। सपने की जिन्दगी का अर्थ है कि हम जीवन को एक पर्दे की तरह ले रहे हैं और उस पर्दे पर घटनाएँ हैं, सुख की भी हैं, दु:ख की भी हैं, बीमारी है, स्वास्थ्य है, यश है, अपयश है, सिर्फ एक आदमी छूट जाता है 'मैं'। उस पर्दे पर मैं कभी नहीं आता। इसलिए सोए हुए आदमी का तीसरा लक्षण है, वह स्वयं से अपरिचित होता है। स्वप्न में कोई स्वयं से परिचित हो भी नहीं सकता है। दूसरा लक्षण मैंने कहा : आनन्द का उसे कोई पता नहीं होता। मीरा कहती है, आनन्द में नाच रही हूँ। गाँव के लोग पूछते हैं, आनन्द क्या है? हम भी पूछेंगे आनन्द क्या है? जानते हुए सुख को हम कहेंगे बहुत घना सुख, बहुत बहुत प्रगाढ़, तीव्र। सुख का ही नाम आनन्द है या बहुत लम्बे सुख का, अनन्त सुख का, शाश्वत सुख का जो कभी खत्म न हो, ऐसे सुख का नाम आनन्द है? नहीं। ऐसा कोई सुख नहीं जो कभी खत्म न हो, क्योंकि ऐसी कोई उत्तेजना नहीं हो सकती जो शाश्वत रह सके। दु:ख भी खत्म हो जाते हैं, सुख भी खत्म हो जाते हैं। लेकिन जिस दिन कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति को अनुभव कर लेता है जहाँ न सुख है, न दु:ख है, वहाँ आनन्द की यात्रा शुरू होती है। यह जानकर आपको हैरानी होगी, आनन्द का उलटा कोई शब्द हमारे पास नहीं है। सुख के विपरीत दु:ख है, अशांति के विपरीत शांति है। अँधेरे के विपरीत प्रकाश है। जीवन के विपरीत मृत्यु है, लेकिन आनन्द के विपरीत हमारे पास कोई शब्द नहीं है। आनन्द अकेला शब्द है, जो एक है, जिसका उलटा शब्द हमारे पास नहीं है। उससे उलटी स्थिति होती ही नहीं है। सुख और दुख जहाँ दोनों न रह जायँ वहीं आनन्द है, लेकिन हम इन दो में ही खोजते रहते हैं घड़ी के पेन्डुलम की भाँति, सुख से दु:ख में, दु:ख से सुख में। सुख की तरफ जो आदमी जा रहा है, वह दु:ख की तैयारी कर रहा है, यह दिखाई नहीं पड़ता। थोड़ी ही देर में सुख दु:ख की तरफ जाना शुरू हो जायगा। हमारा मन सुख और दु:ख के बीच पेन्डुलम की तरह डोलता रहता है। कभी बंद घड़ी देखी है? पेन्डुलम कभी बीच में ठहर जाता है, न बायीं

तरफ जाता है, न दायीं तरफ। अगर किसी दिन हमारा मन भी ऐसा ठहर जाय घड़ी के बंद पेन्डुलम की तरह तो जीवन में पहली बार 'आनन्द का बोध शुरू होता है। लेकिन मन चंचल है। वह बायाँ जायेगा या दायाँ, वह ठहरेगा नहीं। इसलिए जो मन में जीता है, वह नींद में ही जीयेगा, वह कभी जाग नहीं सकता। मन की जिन्दगी का नाम है सपना। हम सपने में ही जीते हैं। हम सभी सपने में ही जीते हैं, इसलिए कभी पता नहीं चलता। क्योंकि हम सभी एक–से सोये हुए लोग हैं इसलिए कठिनाई नहीं होती है। कठिनाई तो तब कभी होती है, जब कोई एक आदमी सपने से 'बाहर निकल जाता है। कभी कोई एक जीसस बाहर निकल जाय तो हम सूली पर लटका देते हैं। कभी कोई एक महावीर बाहर निकल जाय तो हम पत्थरों की वर्षा करते हैं। कभी कोई एक सुकरात जाग जाय तो हम जहर पिलाकर मार डालते हैं। सोए हुए लोगों की भीड़ बड़ी नाराज हो जाती है उस आदमी से, जो जाग गया है। क्यों? क्योंकि जागा हुआ आदमी हमारी नींद की खबर देने लगता है। जागा हुआ आदमी हमारे लिए तीर की तरह चुभने लगता है कि हम सोए हुए हैं। या तो हम जागें या इसे मिटा दें। खुद जागना कठिन मालूम पड़ता है इसलिए हम उसे ही मिटा डालते हैं।

जीसस को जिस रात सूली लगी, साँझ को खबर मिल गई कि आज रात दुश्मन पकड़ लेंगे। जीसस के मित्रों ने कहा कि भाग क्यों न जायें, दुश्मन पकड़ने आ रहा है। जीसस ने कहा कि जिसे हम भगा कर बचायेंगे, उसे कितने दिन तक बचायेंगे? वह बच नहीं सकता। उन मित्रों ने कहा कि भाग जायें, इन बातों में समय खोने की जरूरत नहीं। जीसस ने कहा: जिसे भगा कर तुम बचाओगे मेरे शरीर को, उसे कितने दिन तक बचा सकोगे? सपने कितनी देर तक खींचे जा सकते हैं? टूट ही जायेंगे। लेकिन वे सोए हुए मित्र न समझे। जीसस ने कहा कि जिसे वे सोच रहे हैं, मार डालेंगे वे भूल में हैं, उसे वे मार न पायेंगे क्योंकि सत्य की कोई हत्या नहीं हो सकती। सिर्फ सपने ही तोड़े जा सकते हैं, सत्य को तोड़ना असंभव है। इसलिए उन्हें आने दो, जो मरनेवाला है वह मर जायगा और जो नहीं मरनेवाला है, वह नहीं मरेगा। लेकिन वे मित्र नहीं समझे। सोए हुए आदमी, जागे हुए आदमी की भाषा नहीं समझ पाते हैं। इस मनुष्य–जाति के इतिहास में सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि सोए हुए आदमी की भाषा को जागे हुए आदमी तक

पहुँचाना मुश्किल, जागे हुए आदमी की बात को सोए हुए आदमी तक पहुँचाना मुश्किल, वे दो दुनियाँ में रहने लगते हैं। जीसस को भागते न देखकर कुछ मित्र तो भाग गए अपनी जान बचाने को। लेकिन एक साथी ने कहा कि मैं कभी साथ न छोड़ूँगा। जीसस हँसने लगे और उन्होंने कहा कि सुबह होने के पहले, मुर्गा बाँग दे इनके पहले तू तीन दफे मुझे छोड़ चुका होगा। उसने कहा, मैं कसम खाता हूँ, मैं जिन्दगी भर न छोड़ूँगा। जीसस हँसने लगे। उन्होंने कहा कि सोए हुए आदमी के वचन का कोई भरोसा नहीं। फिर दुश्मन आ गए और उनको पकड़कर ले जाने लगे। वह साथी भी छिपे–छिपे साथ होने लगा। डरने तो लगा, क्योंकि मौत करीब थी और कहीं फँस न जाय। लेकिन फिर भी उसने सोचा कि अभी मैंने वादा किया है कि मैं छोड़ूँगा कभी नहीं। वह साथ चलने लगा। दुश्मन ने देखा कि कोई एक अपरिचित आदमी है हमारे बीच में, तो उन्होंने उसे पकड़ लिया और पूछा कि तुम कौन हो? उसने कहा कि मैं एक अजनबी हूँ, मैं दूसरे गाँव से आ रहा हूँ। उन्होंने पूछा कि तुम जीसस को पहचानते हो? उसने कहा नहीं, बिलकुल नहीं। कौन जीसस? जीसस सामने ही बँधे हुए थे, घसीटे जा रहे थे। उन्होंने कहा: मित्र अभी सुबह भी नहीं हुई, अभी मुर्गे ने बाँग नहीं दी और तू एक बार मुझे छोड़ चुका। असल में सोए हुए आदमी के पास कोई संकल्प नहीं है, कोई आत्मा नहीं है। सोए हुए आदमी के पास सपनों का डावाँडोल दृश्यपथ, सोए हुए आदमी के पास आकांक्षाओं का एक जाल, वासनाओं का एक फैलाव है। सोए हुए आदमी के पास बदलते हुए सपने हैं लेकिन, कोई स्थिर सत्य नहीं है और हम सब ऐसे ही सोए हुए लोग हैं जन्म से लेकर मृत्यु तक। लेकिन हमें बड़ी भूल होती है। हम रोज सुबह उठ आते हैं तो हम समझते हैं कि हम जाग गए। हम दो तरह के सपने देखते हैं। एक जो आँख बन्द करने पर होता है और एक जो आँख खुले होने पर होता है। एक सपना जो हम रात को देखते हैं और एक सपना जो हम दिन में देखते हैं। इस दिन के सपने को हम जागरण कहते हैं, वह बड़ी भूल है। क्यों? इसे क्यों सपना न कहें, इसे क्यों सत्य कहें?

एक राजा का लड़का मर रहा है। मरण-शय्या पर पड़ा है। चिकित्सकों ने कहा कि वह बचेगा नहीं। सम्राट् तीन रातों से जाग रहा है, आज चौथी रात है। लड़का बेहोश है, करीब-करीब मरने को पड़ा हुआ है। सम्राट् थक गया है तीन दिन से, कोई चार बजे रात उसकी नींद लग गई है। वहीं

कुर्सी पर बैठे-बैठे वह सो गया है। नींद लगी और उसे एक सपना आया। उस सपने में उसने देखा कि वह सारी पृथ्वी का सम्राट् हो गया है। उसके पास स्वर्ण-महल है और उसके बारह पुत्र हैं, ऐसे सुन्दर, जिनकी कल्पना न की जा सके। ऐसे स्वस्थ, ऐसे बुद्धिमान, ऐसे शक्तिशाली, जिनके सिर्फ सपने ही देखे जा सकते हैं। अब सम्राट् बहुत आनंद में है। सब कुछ है उसके पास और तभी अचानक वह बाहर जो बेटा है उसका, दूसरे सपने का, आँख खुली सपने का, वह मर जाता है। पत्नी छाती पीट कर रोती है। सम्राट् की आँखें खुल जाती हैं, सपना टूट जाता है, बारह लड़के जो अभी थे, विलीन हो जाते हैं, महल स्वर्ण के खो जाते हैं। पृथ्वी का राज्य हवा हो जाता है। लेकिन वह सम्राट् बड़ी मुश्किल में पड़ गया। सामने लड़का मरा हुआ पड़ा है। एक ही लड़का था, लेकिन उसकी आँखों में आँसू नहीं आ रहे हैं। उसकी पत्नी उसे हिलाती है और कहती है कि आप समझे नहीं शायद! बेटा जा चुका है। सम्राट् ने कहा : मैं समझ गया। लेकिन मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। मैं यह सोच रहा हूँ कि अभी मेरे बारह बेटे थे, उनके लिए रोऊँ या इस एक बेटे के लिए रोऊँ? उसकी पत्नी ने पूछा : कैसे बारह बेटे? उसने कहा कि उनका तुझे पता नहीं क्योंकि, और रानियाँ थीं, जिनसे वह पैदा हुए थे। उस रानी ने पूछा—कौन-सी रानियाँ! उस सम्राट् ने कहा—तू घबड़ा मत, आँख बन्द करके जो दुनियां होती है, उसमें देखे गए बेटे थे। लेकिन मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ कि सच कौन है! क्योंकि जब मेरी आँख बन्द हो गई थी, तो इस बेटे को मैं भूल गया था और तू भी मुझे भूल गई थी और यह महल भी मैं भूल गया था। इनकी मुझे कोई याद न रही थी। मैं एक दूसरी दुनियाँ में खो गया था। और अब जब वह दुनियाँ टूट गई है तो वे सब बेटे खो गए, वे महल, वे रानियाँ खो गईं। अब तू है, और यह बेटा। सच कौन है? उस रानी ने कहा-आप कैसी बातें कर रहे हैं! वह राजा कहने लगा—मैं किसके लिए रोऊँ? उस राजा ने चीन में हुए एक बहुत अद्भूत फकीर च्वांगत्से की एक छोटी-सी कहानी अपनी पत्नी से कही। उसने कहा कि मैं कभी नहीं समझ पाया था इस कहानी को, आज समझा हूँ। च्वांगत्से ने कहा है कि मैं एक रात सोया और मैंने सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूँ, हवाएँ हैं, खुला आकाश है, मुक्त तितली उड़ रही है। सुबह च्वांगत्से उठा और रोने लगा। उसके मित्रों ने पूछा कि क्या हो गया? तो उसने कहा मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। रात

मैंने एक सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूँ, और फूल-फूल डोल रहा हूँ। तो मित्रों ने कहा सपने हम सभी देखते हैं, इसमें परेशानी की क्या बात है? च्वांगत्से ने कहा कि नहीं, मैं परेशान इसलिए हो गया हूँ कि अगर च्वांगत्से नाम का आदमी रात सपने में तितली हो सकता है तो यह भी हो सकता है, तितली अब सपना देख रही हो कि वह च्वाँगत्से नाम का आदमी हो गई है। जब आदमी तितली बन सकता है सपने में तो क्या तितली सपने में आदमी नहीं बन सकती? च्वांगत्से फिर कहने लगा; मैं इस मुश्किल में पड़ गया हूँ कि मैं च्वाँगत्से हूँ, जिसने सपने में तितली का सपना देखा है या मैं हकीकत में एक तितली हूँ, जो अब च्वाँगत्से का सपना देख रही है! सम्राट् ने कहा कि मैं इस कहानी को कभी नहीं समझ सका था। आज यह पहली दफे मेरे खयाल में आई है कि जो सपना अभी मैंने आँखें बन्द करके देखा था, क्या वह सच था, ? अगर वह सच था तो फिर यह जो सामने दिखाई पड़ रहा है, वह क्या है? और अगर जो सामने दिखाई पड़ रहा है, वह सच है तो अभी जो आँख बन्द करके देखा था वह क्या था? असल में हम दो तरह के सपने देखते हैं। वह सम्राट् मुझे मिल जाता तो उससे मैं कहता, कि हम दो तरह के सपने देखते हैं। न तो च्वाँगत्से सपने में तितली बनता है और न तितली च्वाँगत्से बनती है। एक अनजान शक्ति दो तरह के सपने देखती है। वह रात में तितली बन जाती है, दिन में च्वाँगत्से बन जाती है। वह सम्राट् रात में देखता है बारह बेटों का सपना, दिन में देखता है एक बेटे का सपना, लेकिन सब सपने टूट जाते हैं। असल में जो टूट जाता है, उसी का नाम सपना है। जिसे हम जिन्दगी कहते हैं, वह जिन्दगी है या एक स्वप्न! अगर वह जिन्दगी है तो फिर स्वप्न और जिन्दगी में कोई फर्क नहीं है। और अगर वह स्वप्न है तो फिर जिन्दगी की तलाश हमें करनी होगी कि फिर जिन्दगी कहाँ है! और इस डर से कि कहीं हमें जिन्दगी खोजने का श्रम न उठाना पड़े, हम सपने को ही जिन्दगी मान कर चुपचाप जी लेते हैं और मर जाते हैं। हम असुविधापूर्ण सवाल नहीं उठाना चाहते जो हमारी जिन्दगी को मुश्किल में डालें। इसलिए बड़े मजे की बात है, कोई आदमी कभी नहीं पूछता कि मैं कौन हूँ क्योंकि यह बहुत ही कठिन सवाल है और जिन्दगी को मुश्किल में डाल देनेवाला है। और जो जिन्दगी हमने सपने के ईंटों से बना ली है उसके गिर जाने का डर है। इसलिए हम ऐसे बुनियादी सवाल नहीं उठाते। जिसे हम जिन्दगी कहते हैं क्या वह

जिन्दगी है ? या वह भी एक सपना है ? वह हमें जिन्दगी मालूम पड़ती है क्योंकि हम सब उसको देखते हैं। वह असल में हम सबका सामूहिक सपना है, इसलिए सच्चा मालूम पड़ता है। लेकिन सामूहिक हो जाने से भी कोई सपना सत्य नहीं हो जाता है।

फिल्म के पर्दे पर जो आप देखते हैं, उसमें सच कुछ भी नहीं होता है, सिर्फ प्रकाश की किरणों का जाल होता है। लेकिन वह प्रकाश की किरणों का जाल घड़ी दो घड़ी को भुला देता है कि जो हम देख रहे हैं वह कोरा पर्दा है और उस पर सिवा चित्रों के और कुछ भी नहीं है। हॉल में अगर पाँच–छह हजार आदमी बैठे हैं या हजार आदमी बैठे हैं तो उनके लिए एक समान सपना शुरू हो जाता है। क्या जिन्दगी पर भी हम इस तरह का सपना नहीं देखते हैं जो सामान्य है, जिसमें हम सब देखनेवाले एक साथ सम्मिलित हैं ? रात में जो सपना हम देखते हैं, वह प्राइवेट है, वह निजी है, उसमें हम दूसरे आदमी को भागीदार नहीं बना सकते हैं। बस इतना ही फर्क है। रात में जो देखते हैं, वह मैं अकेला देखता हूँ इसलिए मैं सुबह आपसे नहीं कह सकता कि जो मैंने देखा वह सच है। क्योंकि मैं आपके लिए गवाही कहाँ से लाऊँ ! मैं उसमें अकेला ही मौजूद होता हूँ। दिन में जो हम देखते हैं, उसमें हम सब सम्मिलित हैं, सहयोगी हैं। इसलिए गवाही मिल जायगी। लेकिन गवाही मिलने से क्या झूठ सच हो जाता है ? गवाही मिलने से क्या चित्र सत्य बन जाते हैं ? तो सत्य की और स्वप्न की थोड़ी परिभाषा समझ लें तो आसान हो जाय। सत्य वह है जो सदा एक जैसा है। सत्य वह है जो अपरिचित है। सत्य वह है जो बदलता नहीं है। सत्य वह है जो कभी मरता नहीं है। सत्य वह है जो जैसा था, वैसा ही है, वैसा ही होगा। सत्य का मतलब ही यह है कि जो शाश्वत है, जिसमें कोई रूपांतरण नहीं होता। सपने का मतलब है, जो प्रतिपल बदल रहा है। हक्युंलिस यूनान में हुआ। उसने कहा है कि आप एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते हैं। मुश्किल है एक नदी में दुबारा उतरना। असल में एक बार ही उतरना बहुत मुश्किल है। जब आप नदी में पैर डालते हैं तो जैसे ही पैर आपका पानी को छूता है, वह पानी गया। जब आपका पैर जरा और नीचे गया तब तक दूसरा पानी आ गया है। जरा नीचे गया वह पानी भी गया। एक ही नदी में एक ही बार उतरना मुश्किल है, दुबारा तो उतरना बिलकुल असम्भव है, क्योंकि पानी भागा जा रहा है। लेकिन हमने

नाम रख लिया है नदी। कहते हैं गंगा, तो हम सोचते हैं, वही गंगा है जहाँ कल हम आए थे। गंगा प्रतिपल बहती जा रही है। गंगा एक बहाव है। हम सब भी बहाव हैं। अगर कभी आप कल्पना करें कि आप अपनी माँ के पेट में एक छोटे-से अणु थे तो आप विश्वास भी न कर सकेंगे कि आप और एक छोटे से अणु जो नंगी आँखों से देखा भी न जा सकता, जिसके लिए देखने को बड़े यंत्र चाहिए, वह छोटा-सा अणु अगर आपके सामने रख दिया जाय तो आप मानने को राजी न होंगे कि यह मैं हूँ। लेकिन आप एक दिन वही थे। फिर एक छोटा-सा बच्चा बने। फिर आप जवान हो गए। फिर आप बूढ़े हो जायेंगे। अगर एक आदमी की जिन्दगी भर की तस्वीरें रखी जायँ तो पता चलेगा कि आदमी भी एक बहाव है, जैसे गंगा एक बहाव है। अगर हम एक आदमी के दस हजार चित्र खींच सकें, जन्म से लेकर मरने तक, तो हमें कहना पड़ेगा आदमी भी एक नदी है। इसमें कौन-सा चित्र सच्चा है? इसमें कौन-सा चित्र उस अदमी का अपना है?

जापान में फकीर एक सवाल पूछते हैं कि आपका असली चेहरा कौन सा है? बड़ी मुश्किल है उनका जवाब देना। क्योंकि जब तक आप अपने चेहरे को आइने में बतायें, वह बदल चुका है, वह जा चुका है। नदी ही केवल नदी नहीं है, आदमी भी एक नदी है। सुबह आप कुछ होते हैं, साँझ कुछ हो जाते हैं। एक आदमी बुद्ध के पास आया और उनके मुँह पर थूक गया। वह बहुत नाराज था। बुद्ध ने चादर से थूक पोंछ लिया और उस आदमी से कहा—और कुछ कहना है? वह आदमी हतप्रभ हो गया। क्योंकि उसने नहीं सोचा था कि थूके जाने पर बुद्ध पूछेगा कि और कुछ कहना है। बुद्ध ने कहा—घबराओ मत, मेरे ऊपर पाप मत लगाओ कि मैंने तुम्हें घबड़ा दिया। और कुछ कहना है तो कह दो। क्योंकि मैं समझता हूँ कि तुम्हें कुछ कहना था, जो तुम शब्दों में न कह सके और तुमने थूक कर कहा है। अब तुम्हें कुछ और कहना हो तो कह दो। बुद्ध का एक भिक्षु पास ही था, वह नाराज हो गया। उसने बुद्ध से कहा— यह बेहद हो गई। वह आदमी थूक रहा है और आप यह क्या कह रहे हैं? हम क्रोध से भर गए हैं। बुद्ध ने कहा: वह आदमी कुछ कह न सका। इसलिए थूक सका। अब तुम भी थूकने की तैयारी कर रहे

उस आदमी ने जो किया वही तुम भी करोगे तो फिर तुममें और उस आदमी में फर्क क्या है? वह आदमी चला गया। जब वह घर आया तो रात

भर सो न सका। दूसरे दिन आकर पैर पर सिर रख दिया और रोने लगा। उसके आँसू बुद्ध के पैरों पर गिरे। बुद्ध ने फिर पूछा—और कुछ कहना है? क्योंकि आँसू गिराकर तुमने कुछ तो कह दिया जो तुम कह न सकोगे। अब और कुछ कहना है? उस आदमी ने कहा कि आप भी कैसे आदमी हैं! मैं कल की माफी माँगने आया हूँ। बुद्ध ने कहा—पागल! जिसके ऊपर तुम कल थूक गए थे, वह थूक कब का बह गया और जो थूक गया था वह भी अब कहाँ है? और थूक कहाँ है? दोनों ही नहीं हैं। सपने के लिए क्यों परेशान हो रहे हो? सपने का अर्थ है जो प्रतिपल बदलता जा रहा है, जिसे हम क्षण भर ठहरा नहीं सकते। अगर आपका मन सुख में हो तो क्या आप क्षण भर को उस सुख को ठहरा सकते हैं? नहीं ठहरा सकते हैं। जब आप ठहराने की कोशिश कर रहे हैं, तभी बात बदल गई, नदी बह गई है। जब आप किसी के प्रेम में भरे हैं तो क्या आप उस प्रेम को ठहरा सकते हैं? जब आप प्रेम को ठहराने लगे तब जानना कि वह जा चुका है क्योंकि जब वह जा चुका होता है, तभी ठहराने का खयाल आता है। नहीं, इस जिन्दगी में न हमारे मन के भीतर, न हमारे मन के बाहर, कुछ भी ठहराव है।

एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक हुआ है एडीसन। उसने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि मैंने मनुष्यों की सारी भाषाएँ देखीं और एक शब्द मुझे झूठ लगता है जो सभी भाषाओं में है। वह बिलकुल झूठ है। वह शब्द है ठहराव। उसने लिखा है कि ठहरी हुई कोई भी चीज नहीं हैं। सब चीजें हो रही हैं। इसलिए बुद्ध कहते थे कि किसी आदमी को यह मत कहना कि वह जवान है, कहना कि वह जवान हो रहा है। किसी आदमी को मत कहना कि वह आदमी बूढ़ा है, कहना कि बूढ़ा हो रहा है। किसी आदमी को मत कहना कि वह क्रोध से भर है, इतना ही कहना कि क्रोध से भर रहा है या खाली हो रहा है। कोई चीज 'है' कि स्थिति में नहीं है। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। सब चीजें भागी जा रही हैं और सब चीजें बदलती जा रही हैं, लेकिन सपने में दिखाई नहीं पड़ता। आपने सपने में खयाल किया होगा कि आप एक घोड़े को देख रहे हैं। वह एक पल में आदमी हो गया। लेकिन सपने में शक भी नहीं आता। यह घोड़ा एकदम से आदमी कैसे हो गया! हाँ, सुबह जाग कर हो सकता है। लेकिन रात सोते में शक नहीं होता कि अभी जिसको हम थे वह अचानक आदमी कैसे हो गया! वृक्ष था, वह बोलने लगा,

नाम रख लिया है नदी। कहते हैं गंगा, तो हम सोचते हैं, वही गंगा है जहाँ कल हम आए थे। गंगा प्रतिपल बहती जा रही है। गंगा एक बहाव है। हम सब भी बहाव हैं। अगर कभी आप कल्पना करें कि आप अपनी माँ के पेट में एक छोटे-से अणु थे तो आप विश्वास भी न कर सकेंगे कि आप और एक छोटे से अणु जो नंगी आँखों से देखा भी न जा सकता, जिसके लिए देखने को बड़े यंत्र चाहिए, वह छोटा-सा अणु अगर आपके सामने रख दिया जाय तो आप मानने को राजी न होंगे कि यह मैं हूँ। लेकिन आप एक दिन वही थे। फिर एक छोटा-सा बच्चा बने। फिर आप जवान हो गए। फिर आप बूढ़े हो जायेंगे। अगर एक आदमी की जिन्दगी भर की तस्वीरें रखी जायँ तो पता चलेगा कि आदमी भी एक बहाव है, जैसे गंगा एक बहाव है! अगर हम एक आदमी के दस हजार चित्र खींच सकें, जन्म से लेकर मरने तक, तो हमें कहना पड़ेगा आदमी भी एक नदी है। इसमें कौन-सा चित्र सच्चा है? इसमें कौन-सा चित्र उस अदमी का अपना है?

जापान में फकीर एक सवाल पूछते हैं कि आपका असली चेहरा कौन सा है? बड़ी मुश्किल है उनका जवाब देना। क्योंकि जब तक आप अपने चेहरे को आइने में बतायें, वह बदल चुका है, वह जा चुका है। नदी ही केवल नदी नहीं है, आदमी भी एक नदी है। सुबह आप कुछ होते हैं, साँझ कुछ हो जाते हैं। एक आदमी बुद्ध के पास आया और उनके मुँह पर थूक गया। वह बहुत नाराज था। बुद्ध ने चादर से थूक पोंछ लिया और उस आदमी से कहा—और कुछ कहना है? वह आदमी हतप्रभ हो गया। क्योंकि उसने नहीं सोचा था कि थूके जाने पर बुद्ध पूछेगा कि और कुछ कहना है। बुद्ध ने कहा—घबराओ मत, मेरे ऊपर पाप मत लगाओ कि मैंने तुम्हें घबड़ा दिया। और कुछ कहना है तो कह दो। क्योंकि मैं समझता हूँ कि तुम्हें कुछ कहना था, जो तुम शब्दों में न कह सके और तुमने थूक कर कहा है। अब तुम्हें कुछ और कहना हो तो कह दो। बुद्ध का एक भिक्षु पास ही था, वह नाराज हो गया। उसने बुद्ध से कहा—यह बेहद हो गई। वह आदमी थूक रहा है और आप यह क्या कह रहे हैं? हम क्रोध से भर गए हैं। बुद्ध ने कहा: वह आदमी कुछ कह न सका। इसलिए थूक सका। अब तुम भी थूकने की तैयारी कर रहे

उस आदमी ने जो किया वही तुम भी करोगे तो फिर तुममें और उस आदमी में फर्क क्या है? वह आदमी चला गया। जब वह घर आया तो रात

भर सो न सका। दूसरे दिन आकर पैर पर सिर रख दिया और रोने लगा। उसके आँसू बुद्ध के पैरों पर गिरे। बुद्ध ने फिर पूछा—और कुछ कहना है ? क्योंकि आँसू गिराकर तुमने कुछ तो कह दिया जो तुम कह न सकोगे। अब और कुछ कहना है ? उस आदमी ने कहा कि आप भी कैसे आदमी हैं ! मैं कल की माफी माँगने आया हूँ। बुद्ध ने कहा—पागल ! जिसके ऊपर तुम कल थूक गए थे, वह थूक कब का बह गया और जो थूक गया था वह भी अब कहाँ है ? और थूक कहाँ है ? दोनों ही नहीं हैं। सपने के लिए क्यों परेशान हो रहे हो ? सपने का अर्थ है जो प्रतिपल बदलता जा रहा है, जिसे हम क्षण भर ठहरा नहीं सकते। अगर आपका मन सुख में हो तो क्या आप क्षण भर को उस सुख को ठहरा सकते हैं ? नहीं ठहरा सकते हैं। जब आप ठहराने की कोशिश कर रहे हैं, तभी बात बदल गई, नदी बह गई है। जब आप किसी के प्रेम में भरे हैं तो क्या आप उस प्रेम को ठहरा सकते हैं ? जब आप प्रेम को ठहराने लगे तब जानना कि वह जा चुका है क्योंकि जब वह जा चुका होता है, तभी ठहराने का खयाल आता है। नहीं, इस जिन्दगी में न हमारे मन के भीतर, न हमारे मन के बाहर, कुछ भी ठहराव है।

एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक हुआ है एडीसन। उसने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि मैंने मनुष्यों की सारी भाषाएँ देखीं और एक शब्द मुझे झूठ लगता है जो सभी भाषाओं में है। वह बिलकुल झूठ है। वह शब्द है ठहराव। उसने लिखा है कि ठहरी हुई कोई भी चीज नहीं हैं। सब चीजें हो रही हैं। इसलिए बुद्ध कहते थे कि किसी आदमी को यह मत कहना कि वह जवान है, कहना कि वह जवान हो रहा है। किसी आदमी को मत कहना कि वह आदमी बूढ़ा है, कहना कि बूढ़ा हो रहा है। किसी आदमी को मत कहना कि वह क्रोध से भर है, इतना ही कहना कि क्रोध से भर रहा है या खाली हो रहा है। कोई चीज 'है' कि स्थिति में नहीं है। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। सब चीजें भागी जा रही हैं और सब चीजें बदलती जा रही हैं, लेकिन सपने में दिखाई नहीं पड़ता। आपने सपने में खयाल किया होगा कि आप एक घोड़े को देख रहे हैं। वह एक पल में आदमी हो गया। लेकिन सपने में शक भी नहीं आता। यह घोड़ा एकदम से आदमी कैसे हो गया ! हाँ, सुबह जाग कर शक हो सकता है। लेकिन रात सोते में शक नहीं होता कि अभी जिसको हम घोड़ा देख रहे थे वह अचानक आदमी कैसे हो गया ! वृक्ष था, वह बोलने लगा,

कोई शक नहीं होता। घोड़ा है, आकाश में उड़ने लगा, कोई सन्देह पैदा नहीं होता। सपने में सब तरह की बदलाहट स्वीकृत कर ली जाती है। जो जवान था, वह बूढ़ा हो गया, फिर भी हम कहते हैं यह वही हैं। जो बच्चा था वह जवान हो गया है, फिर भी हम कहते हैं, यह वही है। जो प्रेमी था वह पति हो गया और हम कहते हैं, अब भी यह वही है। सब बदल गया है। जिन्दगी एक क्षण को वही नहीं है, जो थी। सब भाग रहा है। शायद हमारी देखने की क्षमता बहुत कम है, इसलिए बदलाहट दिखाई नहीं पड़ती है । या हम एक ही चीज को देखने के इस भाँति आदी हो जाते हैं और बदलाहट इतने आहिस्ता हो रही है कि हमें खयाल नहीं आता कि बदलाहट हो गई है।

जब मैं कहता हूँ कि जिन्दगी एक सपना है तो मेरा मतलब है, जिन्दगी में कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। जिन्दगी एक नदी की तरह बदल रही है, और जहाँ बदलाहट हो वहाँ मकान मत बनाना। नदी पर जो मकान बनायगा वह पागल है। नदी तो बहेगी ही, मकान भी बह जायगा। लेकिन इस जिन्दगी में हम मकान बनाते हैं। मजबूत पत्थरों का बनाते हैं। लेकिन, हमें पता नहीं है कि मजबूत पत्थर भी बहती हुई नदियाँ हैं। जरा धीरे बह रही हैं । पानी जरा तेजी से बह रहा है। आज जो मजबूत पत्थर है कल वह रेत होगा। आज जो मजबूत पत्थर है, कल वह रेत था। आज जिसकी शिला बहुत मजबूती से आपने रखी है, कल वह राख हो जायगी। सब चीजें बह रही हैं। बहती हुई इस जिन्दगी को घर मत बनाना। धर्म का एक ही सूत्र है और धर्म का एक ही राज है और धर्म की गहरी से गहरी जो खोज है वह यह है कि बहाव पर घर मत बनाना। क्योंकि बहाव के साथ घर भी बह जायगा और हाथ में कुछ भी नहीं बचेगा। घर वहाँ बनाना जहाँ कुछ ठहरा हुआ हो। घर वहाँ बनाना जहाँ कोई चीज है, हो रही है वहाँ घर मत बनाना। अधार्मिक व्यक्ति वे है जो नदियों पर घर बनाते हैं। धार्मिक व्यक्ति अस्तित्व पर, सत्य पर, घर बनाता है। धार्मिक आदमी बुद्धिमान आदमी है। अधार्मिक आदमी बुद्धिहीन आदमी है। पापी नहीं कह रहा हूँ। वह विवेकहीन, सोया हुआ, सपनों में डूबा हुआ जी रहा है। हम जो अपने चारों तरफ देखते हैं, वह बह रहा है, सपने का एक लक्षण है। दूसरा लक्षण कि जो हम देखते हैं, वह वही नहीं है, जो है, हम वही देख लेते हैं, जो हम सपना देखना चाहते हैं।

मजनू को उसके गाँव के राजा ने पकड़वा लिया था। गांव भर में चर्चा

थी कि वह पागल हो गया है लैला के लिए। उसने बार-बार लैला को देखने की कोशिश की। बड़ी मुश्किल में पड़ा। लैला बहुत साधारण लड़की थी फिर भी मजनू पागल क्यों हो गया। राजा ने मजनू को बुलाया और कहा, तू पागल तो नहीं है! लैला बड़ी साधारण लड़की है। मैंने बहुत सुन्दर लड़कियाँ तेरे लिए बुला कर रखी हैं, उनको देख और जो तुझे पसन्द हो उसके साथ तेरा विवाह कर दें लेकिन लैला को भूल जा। लैला बड़ी साधारण लड़की है। मजनू हँसने लगा। उसने राजा से कहा कि शायद आपको पता नहीं, लैला को देखने के लिए मजनू की आँख चाहिए। मेरी आँख है आपके पास? राजा ने कहा—तेरी आँख मेरे पास कैसे हो सकती है! तो उसने कहा: फिर छोड़िए खयाल, आप लैला को न देख पायेंगे। लैला को मजनू देख सकता है। मजनू की आँख ही लैला को देख सकती है। मुझे तमाम लैला दिखाई पड़ेगी। और मजनू ठीक कह रहा है। वह एक बड़े सत्य की ओर इंगित कर रहा है, शायद उसे पता नहीं ऐसे सत्य का। हम वही देख लेते हैं, जो हम देखना चाहते हैं। यहाँ जो बाहर है या भीतर, वह हम नहीं देखते हैं। जो हम देखना चाहते हैं उसे हम आरोपित कर लेते हैं। सपने का मतलब है एक आरोपण, इम्पोजीशन। किसी को आप मित्र आरोपित कर रहे हैं। बड़ा आश्चर्य! जो कल तक मित्र था, वह आज शत्रु हो गया है। जो शत्रु था, वह आज मित्र हो गया है। शायद जो था वह आप देख नहीं पाए थे। आपने कुछ मान रखा था। हम सब मानकर जी रहे हैं। सुनी है मैंने एक कहानी। रामदास हजारों-हजारों साल बाद राम की कथा लिखते थे। राम की कथा लिख रहे हैं हजारों साल बाद। यह खबर हनुमान तक पहुँच गई है। और यह खबर ऐसी पहुँची है कि लोगों ने कहा कि, रामदास जैसी राम की कथा लिख रहे हैं, ऐसी कभी नहीं लिखी गई है। और रोज लिखते हैं और सुना देते हैं। हजारों लोग इकट्ठे होते हैं। तो हनुमान भी छिपकर वहाँ जाने लगे। एक दिन गए तो उन्हें बहुत रस मिला। सच में ही अद्भुत ढंग से वे कहानी कह रहे थे। हनुमान को भी रस मिला, जो कहानी का एक साक्षी था। फिर वह घटना आती है कहानी में, जबकि हनुमान सीता को खोजते हुए अशोक वाटिका में गए। तो रामदास ने कहा कि जब हनुमान अशोक वाटिका में गए तो वहाँ सफेद फूल चाँदनी रात में पूरे बगीचे में ढके हुए थे। पूरा बगीचा ढका हुआ था। हनुमान के बरदाश्त के बाहर हो गया।

उन्होंने खड़े होकर कहा कि माफ कीजिए शायद आपसे कुछ भूल हो गई, फूल लाल रंग के थे, बदलाहट कर लें। लेकिन रामदास ने कहा, नासमझ चुपचाप बैठ, फूल सफेद थे। हनुमान तो छिपे हुए वेश में थे, बड़ी मुश्किल हो गई, लेकिन क्रोध भी चढ़ गया। उन्होंने अपना असली रूप प्रकट कर कहा कि शायद आपको पता न हो, मैं खुद हनुमान हूँ, मैं खुद गया था। अब आप देख लें मुझे और सुधार कर लें। रामदास ने कहा, होगे तुम हनुमान लेकिन सुधार नहीं होगा। फूल सफेद ही थे। झगड़ा बहुत उपद्रव का हो गया। हजारों साल बाद जो आदमी कहानी लिखता है, वह यह कह रहा है उस आदमी से जो गया था। तो कथा है कि हनुमान उन्हें पकड़ कर राम के पास ले गए कि इसके सिवा कोई निपटारा नहीं है। हनुमान ने राम से कहा कि देखते हो इस आदमी की हठ ! यह आदमी कहता है कि फूल सफेद थे और मैं गया था अशोक वाटिका में। राम ने कहा—कुछ मत कहो हनुमान, फूल सफेद ही थे लेकिन तुम क्रोध से भरे थे, आँखें खून से भरी थीं इसलिए लाल दिखाई पड़े होंगे। सफेद फूल भी लाल दिखाई पड़ सकते हैं। असल में जो हमें दिखाई पड़ता है, वह वही नहीं होता है जो है। वह होता है जो हमारी आँखें प्रोजेक्ट करती हैं, जो हमारी आँखें इम्पोज करती हैं, जो हमारी आँखें आरोपित करती हैं। एक जर्मन कवि हुआ है हीर। जंगल में भटक गया था, भूल गया रास्ता। बहुत कविताएँ लिखी हैं। उसने चाँद में प्रेयसी को अनेक बार देखा है। पूर्णिमा की रात आ गई थी। तीन दिन से भटक रहा है। पूर्णिमा की रात है, सुनसान जंगल है। लेकिन उस चांद में उसे प्रेयसी की तस्वीर नहीं दिखाई पड़ती। बल्कि एक डबल रोटी तैरती हुई दिखाई पड़ती है। तीन दिन से भूखा है। भूखे आदमी को चाँद में कहीं प्रेयसी दिखाई पड़ेगी ? बिलकुल नहीं दिखाई पड़ेगी। चाँद में स्त्री दिखाई पड़ने के लिए पेट भरा होना पहली शर्त है। बल्कि थोड़ा ज्यादा पेट भरा होना जरूरी है। भूखे आदमी को रोटी दिखाई पड़ती है, आकाश में तैरती हुई। हीर ने लिखा है "मैं बड़ा हैरान हुआ। अब तक किसी कवि को यह क्यों नहीं सूझा कि चाँद नहीं है आकाश में, एक सफेद रोटी तैर रही है। यह भूखे आदमी का इम्पोजीशन है, आरोपण है। असल में चाँद हमने देखा नहीं, किसी ने भी नहीं देखा। हम सब को जो देखना है, वह देख लेते हैं। किसी की प्रेयसी खो गई है, किसी की पत्नी खो गई है, किसी का बेटा मर गया है। जब

वह चाँद की तरफ देखता है तो बड़ा उदास मालूम पड़ता है। उसी रात, गाँव में, उसी के मकान के दूसरी तरफ कोई अपने प्रेमी के पास बैठा है, किसी का खजाना उसे मिल गया है। उसे चाँद बहुत आनंदित और हँसता हुआ मालूम पड़ता है। चाँद एक है। चाँद से तो कोई पूछने नहीं जाता कि तुम उदास हो कि प्रसन्न हो। अपनी प्रसन्नता और अपनी उदासी हम उस पर आरोपित कर देते हैं। हम चौबीस घंटे अपने चारों ओर प्रोजेक्शन कर रहे हैं। प्रोजेक्शन मशीन होती है सिनेमा के पीछे, जिससे पर्दे पर चित्र फेंके जाते हैं। हर आदमी एक-एक प्रोजेक्टर है; जो जिंदगी भर चारों तरफ से चित्र फेंक रहा है और अपना-अपना चित्र देख रहा है।

मेरे एक प्रोफेसर थे। उनसे मैंने यह बात कही एक दिन। मैंने उनसे कहा कि हम वही देख लेते हैं, बल्कि वही हो जाता है जो हमारी कामना प्रोजेक्ट करती है, जो हमारी कामना प्रक्षेप करती है। उन्होंने कहा कि नहीं ऐसा नहीं है। ऐसा कैसे हो सकता है? पन्द्रह दिन बाद मैं उनके घर गया और मैंने सुबह ही जाकर उनकी पत्नी से पूछा कि आपके श्रीमान् की तबियत तो ठीक है न? उन्होंने कहा तबियत बिलकुल ठीक है। कोई गड़बड़ नहीं। आप कैसे पूछने आए? मैंने कहाकि मैं कुछ प्रयोग कर रहा हूँ। कृपा करके मेरी तरफ से सुबह जब वे उठें तो इतना कह दीजिएगा उनसे कि क्या बात है आपकी तबियत कुछ खराब मालूम होती है? आँखें लाल हैं! शरीर कुछ कुम्हलाया मालूम पड़ता है। उनकी पत्नी ने कहा: लेकिन उनकी तबियत बिलकुल ठीक है। मैंने कहा: वह सवाल नहीं है, आप इतना मेरी तरफ से दोहरा देंगी, मैं कुछ प्रयोग कर रहा हूँ। यह कागज दे जा रहा हूँ। वे जो कहें, ठीक वे ही शब्द इस कागज पर लिख दीजिएगा। पड़ोस में एक पोस्ट मास्टर रहते थे, उनसे मैंने कहा कि सुबह आप भी जब वे सज्जन निकलें तो उनसे नमस्कार करके यही पूछ लेना कि क्या बात है, तबियत कुछ खराब है आपकी? चेहरा पीला-पीला मालूम पड़ता है और वे जो भी कहें लिख लेंगे। नंबर तीन पर एक और प्रोफेसर रहते थे, उनके घर भी मैं कह आया, नंबर चार पर भी कह आया। नंबर पाँच वाले आदमी को मैंने कहा कि जब वे यहाँ से निकलें तो आप उनसे यह पूछ लेना कि आपके हाथ पैर डगमगाते-से मालूम पड़ते हैं, क्या बात है? मैं कोई बीस लोगों को कागज दे आया। पत्नी ने उनसे सुबह उठते ही पूछा कि क्या बात है, आँखें लाल मालूम होती हैं, चेहरा उदास मालूम होता है,

उन्होंने खड़े होकर कहा कि माफ कीजिए शायद आपसे कुछ भूल हो गई, फूल लाल रंग के थे, बदलाहट कर लें। लेकिन रामदास ने कहा, नासमझ चुपचाप बैठ, फूल सफेद थे। हनुमान तो छिपे हुए वेश में थे, बड़ी मुश्किल हो गई, लेकिन क्रोध भी चढ़ गया। उन्होंने अपना असली रूप प्रकट कर कहा कि शायद आपको पता न हो, मैं खुद हनुमान हूँ, मैं खुद गया था। अब आप देख लें मुझे और सुधार कर लें। रामदास ने कहा, होगे तुम हनुमान लेकिन सुधार नहीं होगा। फूल सफेद ही थे। झगड़ा बहुत उपद्रव का हो गया। हजारों साल बाद जो आदमी कहानी लिखता है, वह यह कह रहा है उस आदमी से जो गया था। तो कथा है कि हनुमान उन्हें पकड़ कर राम के पास ले गए कि इसके सिवा कोई निपटारा नहीं है। हनुमान ने राम से कहा कि देखते हो इस आदमी की हठ ! यह आदमी कहता है कि फूल सफेद थे और मैं गया था अशोक वाटिका में। राम ने कहा—कुछ मत कहो हनुमान, फूल सफेद ही थे लेकिन तुम क्रोध से भरे थे, आँखें खून से भरी थीं इसलिए लाल दिखाई पड़े होंगे। सफेद फूल भी लाल दिखाई पड़ सकते हैं। असल में जो हमें दिखाई पड़ता है, वह वही नहीं होता है जो है। वह होता है जो हमारी आँखें प्रोजेक्ट करती हैं, जो हमारी आँखें इम्पोज करती हैं, जो हमारी आँखें आरोपित करती हैं। एक जर्मन कवि हुआ है हीर। जंगल में भटक गया था, भूल गया रास्ता। बहुत कविताएँ लिखी हैं। उसने चाँद में प्रेयसी को अनेक बार देखा है। पूर्णिमा की रात आ गई थी। तीन दिन से भटक रहा है। पूर्णिमा की रात है, सुनसान जंगल है। लेकिन उस चाँद में उसे प्रेयसी की तस्वीर नहीं दिखाई पड़ती। बल्कि एक डबल रोटी तैरती हुई दिखाई पड़ती है। तीन दिन से भूखा है। भूखे आदमी को चाँद में कहीं प्रेयसी दिखाई पड़ेगी ? बिलकुल नहीं दिखाई पड़ेगी। चाँद में स्त्री दिखाई पड़ने के लिए पेट भरा होना पहली शर्त है। बल्कि थोड़ा ज्यादा पेट भरा होना जरूरी है। भूखे आदमी को रोटी दिखाई पड़ती है, आकाश में तैरती हुई। हीर ने लिखा है "मैं बड़ा हैरान हुआ। अब तक किसी कवि को यह क्यों नहीं सूझा कि चाँद नहीं है आकाश में, एक सफेद रोटी तैर रही है। यह भूखे आदमी का इम्पोजीशन है, आरोपण है। असल में चाँद हमने देखा नहीं, किसी ने भी नहीं देखा। हम सब को जो देखना है, वह देख लेते हैं। किसी की प्रेयसी खो गई है, किसी की पत्नी खो गई है, किसी का बेटा मर गया है। जब

वह चाँद की तरफ देखता है तो बड़ा उदास मालूम पड़ता है। उसी रात, गाँव में, उसी के मकान के दूसरी तरफ कोई अपने प्रेमी के पास बैठा है, किसी का खजाना उसे मिल गया है। उसे चाँद बहुत आनंदित और हँसता हुआ मालूम पड़ता है। चाँद एक है। चाँद से तो कोई पूछने नहीं जाता कि तुम उदास हो कि प्रसन्न हो। अपनी प्रसन्नता और अपनी उदासी हम उस पर आरोपित कर देते हैं। हम चौबीस घंटे अपने चारों ओर प्रोजेक्शन कर रहे हैं। प्रोजेक्शन मशीन होती है सिनेमा के पीछे, जिससे पर्दे पर चित्र फेंके जाते हैं। हर आदमी एक-एक प्रोजेक्टर है; जो जिंदगी भर चारों तरफ से चित्र फेंक रहा है और अपना-अपना चित्र देख रहा है।

मेरे एक प्रोफेसर थे। उनसे मैंने यह बात कही एक दिन। मैंने उनसे कहा कि हम वही देख लेते हैं, बल्कि वही हो जाता है जो हमारी कामना प्रोजेक्ट करती है, जो हमारी कामना प्रक्षेप करती है। उन्होंने कहा कि नहीं ऐसा नहीं है। ऐसा कैसे हो सकता है? पन्द्रह दिन बाद मैं उनके घर गया और मैंने सुबह ही जाकर उनकी पत्नी से पूछा कि आपके श्रीमान् की तबियत तो ठीक है न? उन्होंने कहा तबियत बिलकुल ठीक है। कोई गड़बड़ नहीं। आप कैसे पूछने आए? मैंने कहा कि मैं कुछ प्रयोग कर रहा हूँ। कृपा करके मेरी तरफ से सुबह जब वे उठें तो इतना कह दीजिएगा उनसे कि क्या बात है आपकी तबियत कुछ खराब मालूम होती है? आँखें लाल हैं! शरीर कुछ कुम्हलाया मालूम पड़ता है। उनकी पत्नी ने कहा : लेकिन उनकी तबियत बिलकुल ठीक है। मैंने कहा : वह सवाल नहीं है, आप उतना मेरी तरफ से दोहरा देंगी, मैं कुछ प्रयोग कर रहा हूँ। यह कागज दे जा रहा हूँ। वे जो कहें, ठीक वे ही शब्द इस कागज पर लिख दीजिएगा। पड़ोस में एक पोस्ट मास्टर रहते थे, उनसे मैंने कहा कि सुबह आप भी जब वे सज्जन निकलें तो उनसे नमस्कार करके यही पूछ लेना कि क्या बात है, तबियत कुछ खराब है आपकी? चेहरा पीला-पीला मालूम पड़ता है और वे जो भी कहें लिख लेंगे। नंबर तीन पर एक और प्रोफेसर रहते थे, उनके घर भी मैं कह आया, नंबर चार पर भी कह आया। नंबर पांच वाले आदमी को मैंने कहा कि जब वे यहाँ से निकलें तो आप उनसे यह पूछ लेना कि आपके हाथ पैर डगमगाते-से मालूम पड़ते हैं, क्या बात है? मैं कोई बीस लोगों को कागज दे आया। पत्नी ने उनसे सुबह उठते ही पूछा कि क्या बात है, आँखें लाल मालूम होती हैं, चेहरा उदास मालूम होता है,

तबियत तो ठीक है न ? उन्होंने कहा : तबियत बिलकुल ठीक है, कोई गड़बड़ी नहीं है। पड़ोस के पोस्ट मास्टर ने जब उनसे पूछा कि आपकी तबियत खराब मालूम होती है, तो उन्होंने कहा . नहीं नहीं, तबियत तो खराब नहीं, जरा रात नींद ठीक नही हुई। जब तीसरे आदमी ने उनसे पूछा कि क्या बात है आपका स्वास्थ्य कुछ ! ......वह इतना ही कह पाया था कि उन्होंने कहा : रात से ही कुछ हरारत-सी मालूम पड़ती है। आठवें आदमी ने उनसे पूछा ही नहीं कि आपकी तबियत कैसी है। उन्होंने खुद ही कहा कि आज युनिवर्सिटी जाने की हिम्मत नहीं है। बुखार है रात से। यदि आप जा रहे हों तो मैं आपकी कार में चलूं, क्योंकि आज मैं पैदल न जा सकूंगा। वे कार में ही बैठ गए। दरवाजे पर जो डिपार्टमेन्ट का चपरासी था, उसने उनको सम्हाला। वे बराबर कँपती हुई हालत में थे। और जब अन्दर डिपार्टमेन्ट में मैंने उनसे कहा कि क्या हो गया आपको, तबियत बहुत खराब है ? तो एक दम बैठकर आँखें उन्होंने बन्द कर लीं, जवाब ही नहीं दिया। थोड़ी देर बाद बोले कि तबियत मेरी बहुत खराब है, घर पर खबर कर दो, कोई आ जाय और मुझे ले जाय। शाम को जब मैं उनके घर गया तो थर्मामीटर लेकर गया था। उनको एक सौ डिग्री बुखार था। उन बीस पुर्जों को भी साथ ले गया था। थर्मामीटर लगा कर बुखार नापकर मैंने बीसों पुर्जे उनके हाथ में दे दिए और कहा : कृपाकर पहले पुर्जे से बीस तक पढ़ जायें। यह सुबह के आपके दिए हुए जवाब हैं। यह बुखार आपका सपना है कि सच है ? यह बुखार प्रोजेक्शन हो गया। यह बुखार उन्होंने अपने पर आरोपित कर लिया। हम अपने पर भी आरोपित करते हैं। "जो है" वह हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है, न भीतर, न बाहर। जो नहीं है, उसे हम थोप रहे हैं और देख रहे हैं। सम्राट् एक तरह के सपने देखता है, भिखारी दूसरे तरह के देखता है। जीता हुआ एक तरह का देखता है, हारा हुआ दूसरी तरह का देखता है, लेकिन हम सब सपने ही देखते हैं। सपने के बाहर तो वही आदमी हो सकता है, जो अपनी तरफ से सत्य के ऊपर, यथार्थ के ऊपर, कुछ भी थोपने से इनकार कर दे, जो कहे कि मैं अपनी आँख से तो कोई भी चित्र फेंकूंगा। जो अपनी आँख शून्य कर ले, खाली कर ले, जो निपट खाली हो जाय और जिसका प्रोजेक्टर भीतर से बंद हो जाय और जो कहे कि मैं कोई विचार के माध्यम से जगत को न देखूंगा, न निर्विचार के माध्यम से देखूंगा, तो सत्य को पा सकता

है। और जिस दिन सत्य दिखाई पड़ता है उस दिन पता चलता है कि हम कैसे सपने में जी रहे थे। असल में जब तक सपने न टूटें तब तक पता ही नहीं चलता कि हम सपने में थे। कभी आपको नींद में पता चला है कि आप नींद में हैं? यह सुबह में आपको पता चलता है, जब नींद टूट जाती है। जब तक आप जानते हैं तब तक आपको पता रहता है कि मैं जगा हूँ, आपको कभी पता नहीं चलता है कि कब आप सो गए। आपको रात भर पता नहीं चलता कि मैं सोया था। नींद टूटे तभी पता चलता है। हम सब सपने में हैं, वह हमें तभी पता चल सकता है, जब सपना टूटता है। लेकिन अगर कोई भी हमसे कहे कि हम सब सोए हुए लोग हैं तो चित्त नाराज होता है, क्रोध आता है।

भीखण नामक एक फकीर एक गाँव में रुके हैं। सारा गांव उनको सुनने आया है। गाँव का जो धनपति है, वह सामने ही बैठा है। भीखण ने बोलना शुरू किया है। जैसा कि धार्मिक सभाओं में होता है, अधिक लोग सो जाते हैं। वह सामने बैठा हुआ धनपति भी सो गया है। और भी बहुत लोग सो गए होंगे। असल में कुछ डाक्टर तो यह कहते हैं कि जिनको नींद न आती हो, उनको धार्मिक सभा में चला जाना चाहिए। वहाँ नींद आ ही जाती है। दिन भर के थके-मांदे लोग, जिन बातों में उनकी कोई रुचि नहीं, जब उनको सुनते हैं तो नींद न आये तो क्या हो? नींद का सूत्र है कि बोर्डम पैदा हो जानी चाहिए। पहले ऊब पैदा हो जानी चाहिए तो नींद आ जाती है। इसलिए छोटे बच्चे को सुलाने की माँ जो तरकीब लाती हैं, वह बड़ी खतरनाक है। वह उससे कहती है, राजा बेटा सो जा, सो जा, मुन्ना बेटा सो जा, दोहराती ही चली जाती है। ऐसे ही बकवास दोहराती है तो राजा बेटा भाग भी नहीं सकता और सिर पकने लगता है चित्त ऊब जाता है। इसको सुनने की अब तबियत नहीं होती कि अब यह और बकवास सुनी जाय तो राजा बेटा को सोना पड़ता है। राजा बेटा के बाप के साथ भी यह प्रयोग किया जाय, वे भी सो जायेंगे। इसलिए जो लोग बैठ कर राम नाम का जाप जपते रहते हैं, वे झपकी लेते हैं। एक ही शब्द को कोई दोहरायगा तो ऊब पैदा होती है, ऊब से नींद आ जाती है। सामने बैठा हुआ धनपति भी सो गया है। भीखण के पहले और संन्यासी भी उस गाँव में आए थे, तब भी वह धनपति सोता था। लेकिन, वह दूसरे संन्यासी धनपति से कहते थे कि आप बड़े तल्लीन होकर

ध्यानमग्न होकर सुनते हैं। और वह धनपति भी मानता था और शान से कहता था कि मैं ध्यानमग्न होकर सुनता हूँ। लेकिन यह भीखण अजीब आदमी हैं। इन्होंने उसको रोका और कहा कि सो रहे हो क्या? उसने जल्दी से आँख खोली। उसने कहा कि नहीं, सो नहीं रहा हूँ, मैं तो ध्यानमग्न होकर सुन रहा हूँ। भीखण ने फिर बोलना शुरू कर दिया। उस आदमी को फिर नींद लग गई। भीखण ने फिर रोका और कहा—सो रहे हो क्या? उस आदमी ने कहा—नहीं, आप भी कैसे आदमी हैं? मैं सोता नहीं, यह मेरी आदत है, ध्यानमग्न होकर मैं सुनता हूँ। भीखण ने फिर बोलना शुरू कर दिया, वह आदमी फिर सो गया, लेकिन थोड़ी देर बाद भीखण ने फिर जोर से कहा: जीते हो क्या? उस आदमी ने कहा: नहीं, नहीं, कौन कहता है? मैं तो बराबर सुन रहा हूँ। आप कैसे आदमी हैं कि बार-बार वही बात दोहराते हैं। भीखण ने कहा: इस बार तो तुम फँस गए हो क्योंकि, इस बार मैंने नहीं कहा कि सोते हो क्या, मैंने पूछा है: जीते हो क्या? और अगर ध्यानमग्न होकर सुन रहे होते तो तुमने जरूर सुन लिया होता। नहीं, सुन नहीं रहे हो। लेकिन तुम्हारा उत्तर ठीक है। जो सो रहा है, वह जी भी नहीं रहा है। जो सो रहा है, वह एक अर्थ में मरा ही हुआ है। हम एक अर्थ में मुर्दा हैं, बहुत गहरे अर्थ में। क्योंकि हम जीवन को तो जान ही नहीं पाए। जीवन को नहीं जान पाए इसलिए तो हम पूछते हैं, परमात्मा कहाँ है? अगर हम जीवन को जान लेते तो हम यह कभी न पूछते कि परमात्मा कहाँ है क्योंकि, परमात्मा जीवन का दूसरा नाम है, इसीलिए तो हम पूछते हैं, मोक्ष कहाँ है? अगर हम जीवन को जान लेते तो कभी न पूछते मोक्ष कहाँ है क्योंकि जीवन परम मुक्ति है। जीवन को नहीं जान पाये इसलिए तो हम मौत से डरते हैं और घबराते हैं और पूछते हैं कि मर तो न जायेंगे? आत्मा अमर है न? अगर हम जीवन को जान लेते तो हम पाते कि कुछ मरता नहीं है। जो है, वह सदा है। मृत्यु का भय मिट जाता है। मृत्यु की चिंता मिट जाती है। मृत्यु एक असत्य हो जाता है। लेकिन जीवन का हमें कोई पता नहीं है, इसलिए परमात्मा का कोई पता नहीं। मुक्ति का कोई पता नहीं, इसलिए मृत्यु असत्य है, इसका कोई पता नहीं है। अगर हम जीवन को जान लेते तो हम कभी नहीं पूछते कि आनंद कहाँ है? क्योंकि जहाँ जीवन है, वहाँ आनंद है। लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं है और पता होगा भी नहीं क्योंकि जीवन जागने से दिखाई पड़ता है, सोने से नहीं

दिखाई पड़ता। सोए-सोए कैसे पता चल सकता है कि जीवन क्या है? लेकिन हमने एक तरकीब ईजाद की है, इसलिए इस नींद को मिटाना मुश्किल हो रहा है। और वह यह है कि हम इसको नींद कहते ही नहीं, हम इसको जागना कहते हैं। सुबह जब हम आँख खोल लेते हैं तो वह जो आदमी हमारे भीतर रात भर सोया रहा था, हम सोचते हैं, जाग गया। जागता नहीं, सिर्फ रात में शरीर थक गया था और आँख बन्द हो गई थी। भीतर का आदमी वही है, जो रात सोया था। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। सुबह जब आँख खुलती है तो सिर्फ शरीर ताजा हो गया, लेकिन भीतर का आदमी वही है जो रात में सोया था। आप सोए हुए ही होते हैं, पर जागे हुए समझते हैं। आपके भीतर, आपकी चेतना में, नींद में और जागने में कोई भी फर्क नहीं है। आप तो सोए ही रहते हैं। लेकिन आँख के खुली और बन्द होने से, शरीर के थक कर गिर जाने से, यह भ्रांति पैदा होती है कि रात में हम सोए थे और दिन में हम जाग गए हैं। हम चौबीस घंटे सोए हुए हैं।

बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तो किसी ने उनको पूछा कि आपको मिला क्या है? तो उन्होंने कहा : जागना मिला है। और उनसे पूछा कि आपने खोया क्या है? उन्होंने कहा : सोना खोया है। कृष्ण ने तो गीता में कहा है कि जब सब सोते हैं, तब भी वह जो योगी है, जागता है। लेकिन उलटा, जो योगी नहीं है, जब हम समझते हैं कि वह जाग रहा है, तब भी सोता है। जो योगी है, वह जब हम सोचते हैं सो रहा है, तब भी जागता है। बुद्ध के पास आनंद कोई चालीस साल तक रहा। आनंद बुद्ध का बड़ा चचेरा भाई था। लेकिन दीक्षा लेने के बाद तो बड़ा भाई नहीं रह जायगा। जब तक दीक्षा नहीं ली थी तब तक वह बुद्ध का बड़ा भाई था। उसने बुद्ध से कहा कि मैं दीक्षा लेने आया हूँ। दीक्षा लेने के पहले तुम मेरे छोटे भाई हो, बड़े भाई की हैसियत से मैं कुछ वचन तुम से ले लेना चाहता हूँ। क्योंकि दीक्षा ले लेने के बाद तो फिर मैं तुमसे कुछ नहीं ले सकूँगा, फिर तो तुम्हारे आदेश मुझे मानने पड़ेंगे। लेकिन अभी मैं तुम्हें दो-तीन आदेश देता हूँ। पहला आदेश यह है कि मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगा। दीक्षा के बाद तुम मुझे कहीं और न भेज सकोगे। मैं तुम्हारे साथ-साथ ही सोऊँगा। चालीस साल तक वह बुद्ध के साथ ही सोता था। उसे यह देख कर बड़ी हैरानी हुई कि बुद्ध सुबह उसी करवट उठते हैं, जिस करवट रात में सोते हैं। उसने कुछ दिनों तक देखने के बाद बुद्ध से

कहा कि क्या सोने में भी आप हिसाब रखते हैं ? हाथ नहीं हिलते, करवट नहीं बदलते। सोते हैं कि लेटे रहते हैं ? बुद्ध ने कहा : सोता तो हूँ लेकिन, शरीर ही सोता है। अब मेरे सोने का कोई उपाय नहीं। अब मैं जाग गया हूँ। भीतर मैं जागा ही रहता हूँ। भीतर तो सोने का अब कोई उपाय नहीं रहा। हम बाहर के जागने और सोने को ही सब समझ रहे हैं, भीतर का सोना और जागना हमारे खयाल में नहीं है। भीतर हम सोए ही हुए हैं। आनंद ने कहा : मैं कुछ समझा नहीं, यह भीतर का सोना क्या बात है ? दूसरे दिन सुबह बुद्ध को सुनने जब सारे लोग बैठे हैं, एक आदमी सामने ही बैठा है, वह अपने पैर के अँगूठे को हिला रहा है। बुद्ध ने अपना वचन बंद करके कहा कि मित्र, यह तुम क्या कर रहे हो, पैर का अँगूठा क्यों हिला रहे हो ? उस आदमी ने जैसे ही सुना, पैर का अँगूठा बन्द कर उसने कहा : मुझे पता नहीं था। तो बुद्ध ने कहा : तुम्हारा अँगूठा और तुम्हें पता न हो, जागे हुए हो या सोए हुए हो। आनन्द से कहा : देखो यह आदमी जगा हुआ मालूम पड़ रहा है लेकिन सोया हुआ है, यह कहता है, मेरा अंगूठा हिल रहा था और मुझे पता नहीं क्यों हिल रहा था। जब आपने क्रोध किया है, तब क्या आप जागे हुए होते हैं ? अगर जागे हुए होते तो आप क्रोध करते ? लेकिन क्रोध के बाद हम खुद ही कहते हैं कि पता नहीं कैसे हो गया ! क्रोध के बाद हम कहते हैं, मेरे बावजूद हो गया है। मैं तो करना ही नहीं चाहता था। हजारों हत्यारों ने अदालतों में यह गवाही दी है कि हम हत्या नहीं करना चाहते थे। जब क्रोध में ही आप नहीं रह जाते तो हत्या करने में आप कहाँ रह जायँगे ? नींद में हत्याएँ हो रही हैं। नींद में क्रोध हो रहा है, नींद में प्रेम हो रहा है। और अगर हम बहुत बारीकी से देखें तो नींद में हम रास्तों पर चल रहे हैं, दुकानों पर काम कर रहे हैं, दफ्तरों में बैठे हुए हैं। कुछ लोग होते हैं जो रात सपने में उठकर कुछ काम करते हैं। यह एक बीमारी है।

न्यूयार्क में एक आदमी था। वह अपनी छत पर से नींद में कूद जाता था। फासला लम्बा था, कोई नौ फुट का था। जागने पर वह आदमी छह फीट भी नहीं कूद सकता था। और चालीस मंजिल ऊँचे मकान पर से तो कूद ही नहीं सकता, दूसरे के मकान पर, बीच में खड्डा था इतना बड़ा। यह खबर गाँव में फैल गई। तो रात वहाँ कुछ लोग देखने को इकट्ठे हो गए। कोई एक बजे रात वह आदमी नींद में अपनी छत पर पहुँच गया और उसने छलाँग लगाई।

पहले दिन तो लोग देखकर दंग रह गए। वह छलांग लगाकर उस तरफ चला गया। वह वापिस छलांग लगाकर जब आ रहा था, तब लोगों ने आवाज कर दी, तब उसकी नींद टूट गई। आँख खुल गई, उसने देखा मैं यह क्या कर रहा हू। वह वहीं गिर पड़ा और समाप्त हो गया। सैकड़ों लोग ऐसे हैं, आपके गांव में भी दो-चार लोग मिल सकते हैं, जो रात सोते में कुछ काम करते हैं। मेडमक्यूरी ने जो आविष्कार किया वह नींद में किया। रात सोते में उठकर कागज पर उत्तर लिखा, जिसको वह जागते में कई बार कर चुकी थी और उत्तर नहीं आया था। सुबह वह हैरान हो गई। जिसको उससे नोबल प्राइज मिली, वह उसको नहीं मिलनी चाहिए, नींद को मिलनी चाहिए। सुबह उठकर उसको खुद ही भरोसा न होता था कि यह किसने लिखा, लेकिन हस्ताक्षर उसी के थे और रात उसके कमरे में कोई नहीं था। नींद में, रात में लोग उठकर कुछ करते हैं और दिन में तो हम सारे लोग उठकर कर रहे हैं। सुबह उठते हैं और वह नींद जिसको हमने रात में नींद समझी थी, टूट जाती है। वह नींद, जो धर्म की दृष्टि से नीद है, जारी रहती है। दो तलों पर हमारी नींद है। एक शरीर के तल पर और एक भीतरी आध्यात्मिक तल पर। वहाँ आध्यात्म के तल पर तो मूर्च्छा जारी रहती है, शरीर के तल पर नींद टूट जाती है। इसलिए तो इस दुनियां में इतने झगड़े हैं। ये सोए हुए आदमियों के झगड़े हैं। इतने युद्ध हैं, ये सोए हुए आदमियों के युद्ध है। इतना वैमनस्य है, इतनी ईर्ष्या है, इतनी हिंसा है, ये सोए हुए आदमी के हैं। अगर आदमी भीतर से नहीं जगाया जा सकता तो बहुत खतरा है। क्योंकि सोए हुए आदमी ने नींद में एटम बम तक ईजाद कर लिया है। अब कोई एक सोया हुआ आदमी सारे सोए हुए आदमियों को समाप्त कर सकता है। अब खतरा बहुत है। पृथ्वी पर पहले तो एक दो आदमी भी जागते रहे तो चला। अब तो पूरी मनुष्यता का बहुत बड़ा हिस्सा जागेगा तो मनुष्यता बच सकती है अन्यथा नहीं बच सकती। इसलिए धर्म जितना आज जरूरी है, इतना जरूरी कभी भी नहीं था। सारी मनुष्यता समाप्त हो सकती है। कोई भी न बचे, ऐसा हो सकता है। आईन्स्टीन से मरने के पहले कोई पूछ रहा था कि तीसरे महायुद्ध में क्या होगा ? तो आईन्स्टीन ने कहा : तीसरे के बाबत कुछ भी कहना असंभव है। लेकिन, अगर चौथे के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहो तो मैं कह सकता हूँ। उस आदमी ने कहा कि जब तीसरे के बाबत भी आप नहीं बता सकते तो चौथे के बाबत क्या बतायेंगे ? आईन्स्टीन

ने कहा : एक बात पक्की कह सकता हूँ कि चौथा महायुद्ध कभी नहीं होगा। क्योंकि आदमी चाहिए युद्ध के लिए ? चौथे के लिए कोई बचनेवाला नहीं है। इतना विराट निद्रित आदमी ने इन्तजाम कर रखा है ! कोई पचास हजार अणु बम सारी पृथ्वी पर इकट्ठे कर रखे हैं। यह इस पृथ्वी को मिटाने के लिए जरूरत से सात गुने ज्यादा हैं। जितने आदमी हैं, इनको हमें अगर एक-एक को सात-सात बार मारना हो तो हम मार सकते हैं। हालाँकि एक ही दफे में आदमी मर जाता है, लेकिन इन्तजाम पक्का किया है कि कोई बच जाय तो दुबारा मारें, तिबारा मारें, सात-सात बार एक-एक आदमी को हम मार सकते हैं। यह पृथ्वी बहुत छोटी है। इस तरह की सात पृथ्वी हों तो सबको हम भस्मीभूत कर सकते हैं। सोए हुए आदमी ने नींद में भी बहुत-कुछ उपद्रव खड़े कर लिये हैं। सोया हुआ आदमी कुछ भी कर सकता है क्योंकि वह उत्तरदायी नहीं है। जब वह कर चुकेगा, वह कहेगा कि मुझे क्या पता यह क्या हुआ ! हिटलर से आप पूछ सकते हैं कि तुमने यह क्या किया ? पाँच करोड़ आदमी हिटलर की वजह से मरे। लेकिन हिटलर को आखिरी वक्त तक यह खयाल नहीं था कि वह जिम्मेदार है। और जब बर्लिन पर बम्ब गिरने लगे और हिटलर अपने छिपने के स्थान में था, तब भी वह रेडियो पर भाषण देता रहा कि हम जीत रहे हैं, कौन कहता है कि हम हार रहे हैं ? अब लोग कहते हैं कि हिटलर पागल था। पागल कहना ठीक नहीं है। मैं इतना ही कहता हूँ कि वह गहरी नींद में सोया हुआ आदमी था। और हम भी गहरी नींद में उसी तरह के सोए हुए आदमी हैं। हम सब कम-ज्यादा मात्रा में सोए हुए लोग हैं। नहीं तो हिटलर इतने लोगों को इतने बड़े उपद्रव में संलग्न न कर पाता। एक पागल आदमी एक बुद्धिमान से बुद्धिमान मुल्क को इस तरह पागल कर सकता है तो इसका मतलब क्या होता है ? हिटलर अगर अकेला पागल है तो पूरे जर्मनी का क्या मामला है ? पूरा जर्मनी भी पागल है। और अगर पूरा जर्मनी पागल है तो सारी दुनियाँ में कोई जर्मनी से बेहतर लोग नहीं है। माओ चीन को पागल कर सकता है, कोई दूसरा हिंदुस्तान को पागल कर सकता है, कोई स्टेलिन रूस को पागल कर सकता है, कोई निक्सन अमेरिका को पागल कर सकता है। तो बाकी सारी भीड़ भी सोए हुए लोगों की भीड़ है और सोए हुए नेता हैं। सोई हुई भीड़ है। सोए हुए आदमियों के हाथ में बड़ी ताकतें हैं और वे जिम्मेवार नहीं हैं। मैं आपसे कहना चाहूँगा, उनकी जिम्मेवारी

दो तरह से कम हैं। वे दूसरे के प्रति जिम्मेवार नहीं है। यह तो खतरनाक है ही, वह अपने प्रति भी जिम्मेवार नहीं है जो ज्यादा खतरनाक है। एक जिंदगी हमें मिलती है, उसे हम ऐसे गँवा देते हैं कि उसका हम कभी उपभोग नहीं करते जैसे एक वीज मिल जाय हमें और हम जिन्दगी भर रखें, उसे सड़ा दें तो हमें सभी पागल कहेंगे। इस वीज से वहुत वड़ा वृक्ष पैदा होता, वहुत फूल पैदा होतें, वहुत सुगंध पैदा होती, वहुत छाया वनती। तुम इस वीज को रखे क्यों रहे ? हम भी अपनी जिन्दगी के वीज को रखे-रखे मर जाते हैं। उस बीज से वहुत-कुछ संभव है। उस बीज से एक कृष्ण पैदा हो सकता है। जो वीज आपके पास है, उससे एक राम पैदा हो सकता है। वह जो वीज मेरे पास है, उससे एक महावीर, एक वुद्ध पैदा हो सकते हैं, एक मोहम्मद, एक क्राईस्ट पैदा हो सकता है। हम सबके पास वह वीज है, जिसमें अनंत फूल लग सकते हैं सौंदर्य के, सत्य के, आनन्द के। कवीर ने ठेका नहीं लिया था कि उनको आकाश में बादल घिरे हुए दिखाई पड़े। हमारे भीतर भी आकाश में वादल घिर सकते हैं, जिनसे अमृत की वर्षा हो। मीरा ने कोई ठेका नहीं लिया था कि प्रभु के पास घुंघरू बाँध कर वही नाचे, हम भी नाच सकते हैं। जीसस का अकेले का ठेका नहीं है कि वे ही जान पाए कि जो भीतर है, वह नहीं मरता है। हम भी जान सकते हैं। लेकिन, हम सोये हुए कैसे जानेंगे ? जानने के लिए जागना पहली शर्त है। और जागने के लिए यह जानना पहले जरूरी है कि क्या हम सोए हुए हैं और सपने देख रहे हैं ? क्या हम सपने की स्थिति में जी रहे हैं ? हमें खयाल ठीक से गहरे वैठ जाना चाहिए कि हमारी सारी की सारी अब तक की जिन्दगी एक सपने की जिन्दगी है, जिसमें कल मौत आयगी और सब सपने ताश के पत्तों की तरह गिर जायँगे, पानी के बुलबुले की तरह फूट जायँगे, रेत के बनाए हुए मकानों की तरह ढह जायँगे और मौत सब उजाड़कर एकदम अचानक हमें किसी और दुनियाँ में प्रवेश करा देगी। हमसे पहले कितने लोग बिदा हो गए इस जमीन से ! जहाँ आप वैठे हैं, उस जगह पर न मालूम कितने लोगों की कब्र वन चुकी होगी ! ऐसी कोई जमीन का एक इंच भी टुकड़ा नहीं है, जहाँ कब्र न बन गई हो। जमीन पर मिट्टी का एक कण नहीं है, जो किसी आदमी के शरीर का हिस्सा न रहा हो। इस पृथ्वी पर कितने लोग जिये और मरे, उनके सपने सव कहाँ हैं ? उनका यश कहाँ है ? उनकी महत्वाकांक्षाएँ कहाँ हैं ? उनके वनाए हुए

महल कहाँ हैं ? उनके अहंकार के बनाए हुए बड़े-बड़े विस्तार के पर्वत कहाँ है ? कहाँ है वे सब ! उनकी सारी कथा खो गई। लेकिन हम उस पर आँख उठाकर न देखेंगे, क्योंकि उससे हमें भी खतरा है। अगर हमें यह दिखाई पड़ जाय कि जहाँ हम खड़े हैं, वहाँ कब्र है तो हमें बहुत देर न लगेगी, अपनी कब्र भी हमें दिखाई पड़ जायगी। अगर हमें यह दिखाई पड़ जाय कि पहले के बनाए हुए महल सब कागज के सिद्ध हुए तो हम जिस महल को बना रहे हैं, उस महल को हम पत्थर का मान सकेंगे। अगर हमें पता चल जाय कि सारी महत्वाकांक्षाएँ सपने की भाँति खो गईं, न महत्वाकांक्षी हैं, न महत्वाकांक्षाएँ हैं, न उनके बनाए हुए साम्राज्य हैं, वे सब खो गए, जैसे सपने खो जाते हैं, तो हमारे अपने राज्यों का क्या होगा ? हमारे अहंकार, हमारी महत्वाकांक्षा का क्या होगा ? धार्मिक आदमी इस संकट को देख पाता है कि जिन्दगी कैसे संकट में है। बीज मिटता है, ऐसे ही नष्ट हो जाता है। नहीं टूट पाता, नहीं वृक्ष बन पाता है। वीणा मिल जाती है लेकिन उसके तारों पर हम कभी अपनी अँगुलियाँ नहीं बजा पाते। उससे कभी संगीत पैदा नहीं हो पाता है। वीणा को ढोते-ढोते मर जाते हैं। और ध्यान रहे, जो कंधे पर वीणा को लेता है और बजाता नहीं, उसकी वीणा सिर्फ सूली सिद्ध होगी, त्रास सिद्ध होगी और कुछ नहीं होगी !

धर्म मनुष्य-केन्द्रित हो

हजारों वर्षों से धर्म के नाम पर खोज चलती है। किसकी खोज चलती है ? परमात्मा की खोज चलती है, मोक्ष की खोज चलती है, लेकिन हजारों साल के बाद भी न तो परमात्मा का कोई पता है, न आत्मा का कोई पता है, न मोक्ष का कोई पता। मेरे देखे यह खोज ही गलत हो गई। यह खोज वैसे ही गलत हो गई है जैसे कोई अंधा आदमी प्रकाश की खोज करे। यह खोज इसलिए गलत नहीं हो गई है कि प्रकाश नहीं है। प्रकाश तो है, लेकिन अंधा आदमी प्रकाश की खोज कैसे करे ? और अंधा आदमी अगर प्रकाश की खोज में पड़ जाय, तो एक बात निश्चित है कि अंधे को प्रकाश नहीं मिल सकता है। अंधे आदमी को प्रकाश की बात ही नहीं करनी चाहिए। अंधे आदमी को आँख की खोज करनी चाहिए। आँख होगी तो प्रकाश होगा, आँखें नहीं होंगी तो प्रकाश नहीं होगा। प्रकाश हो और आँख न हो तो भी प्रकाश नहीं है।

धर्म की खोज को ईश्वर की दिशा में लगाने से ही धर्म जगत में विकसित नहीं हो पाया। असली सवाल ईश्वर नहीं है, असली सवाल मनुष्य है। मनुष्य की खोज धर्म का आधार बनानी चाहिए। जिस दिन मनुष्य अपने को खोज लेता है, जिस दिन मनुष्य अपने को जान लेता है, उस दिन ईश्वर अनजाना नहीं रह जाता है। उस दिन मोक्ष भी अपनाया नहीं रह जाता। धर्म का केन्द्र मनुष्य होना चाहिए, ईश्वर नहीं। धर्म का केन्द्र मोक्ष नहीं होना चाहिए, पृथ्वी होनी चाहिए। और धर्म का केन्द्र दूर आकाश की बातें नहीं होनी चाहिए, मनुष्य के मनुष्यत्व की बात होनी चाहिए। हजारों साल तक धर्म की बात करने के बाद भी दुनियाँ धार्मिक नहीं हो सकी, उसका कारण अधर्म नहीं है, उसका कारण नास्तिक भी नहीं है। उसका कारण है धर्म की दिशा का गलत होना। धर्म ने ऐसे लक्ष्य बना रखे हैं, जिन लक्ष्यों तक मनुष्य को नहीं ले जाया जा सकता है, जैसे अंधों को प्रकाश के दर्शन कराने का लक्ष्य कोई बना ले, और यह भूल ही जाय कि अंधों के पास आँख नहीं हैं। मनुष्य के पास मनुष्य ही नहीं है और तुम ईश्वर की बातें कर रहे हो। मनुष्य मनुष्य ही नहं है और तुम मोक्ष की बातें कर रहे हो। मनुष्य खुद ही नहीं है अभी, खोजेगा किसे ? खोज वह सकता है जो हो। हम खुद ही नहीं हैं, हम खोज क्या करेंगे ?

एक अंधा मित्र एक घर में मेहमान हुआ। बहुत स्वागत-सत्कार हुआ उस अंधे मित्र का। भोजन के बाद वह अंधा मित्र पूछने लगा, 'यह तुमने जो मुझे खिलाया, बहुत रुचिकर लगा। यह है क्या ?' घर के लोगों ने कहा—'खीर है।' वह अंधा आदमी कहने लगा : 'खीर ? खीर क्या है ?' वे लोग कहने लगे : 'दूध से बनी है।' वह अंधा आदमी पूछने लगा : 'दूध ? दूध कैसा होता है ?' घर के लोग हैरान हो गए क्योंकि उन्होंने जो भी उत्तर दिया, अंधे ने उसी को प्रश्न बना लिया। लेकिन घर के लोग यह भूल गए कि अंधे को न खीर दिखाई पड़ती है, न दूध दिखाई पड़ता है। उसे दिए गए सारे उत्तर आँखवाले के उत्तर हैं। एक बुद्धिमान ने कहा—'बगुला देखा है कभी ? आकाश में उड़ता है वह। बगुले के सफेद पंखों की तरह शुभ्र होता है दूध।' वह अंधा आदमी कहने लगा—'मुश्किल से मुश्किल में डाल रहे हो मुझे। अब यह बगुला क्या होता है ? यह सफेदी क्या होती है ?' लेकिन घर के लोगों को फिर भी होश न आया कि हम अंधे से बात कर रहे हैं। आँख के बिना अँधेरा भी नहीं दिख सकता।

आप सोचते हैं हम आँख बन्द कर लेते हैं तो हमको अँधेरा दिखता है। तो आप यह मत सोचना कि अंधे को भी अँधेरा दिखता है। आप को आंख बन्द करने पर अँधेरा दिखता है क्योंकि आँख खुली होने से आपको उजाला दिखता है। उजाले के दिखने की वजह से आपको अँधेरा दिखता है। लेकिन घर के लोगों ने कहा 'बगुले की पंख की तरह सफेद' तो अंधे आदमी ने कहा : "आप क्यों मुझे परेशान करते हैं ? मेरा पहला सवाल अपनी जगह खड़ा है कि तुमने मुझे खिलाया है, वह क्या है ? तुमने उत्तर दिया। मेरा दूसरा सवाल खड़ा हो गया कि खीर यानी क्या ? तुमने उत्तर दिया, मेरा तीसरा सवाल खड़ा हो गया कि आखिर दूध यानी क्या ? तुम उत्तर देते हो कि बगुले के सफेद पंख-जैसा। अब और मुश्किल में डाल दिए, यह बगुला क्या है ? यह सफेद पंख क्या हैं ? यह शुभ्रता, यह सफेदी क्या है ?"

दिए गए सब जवाब प्रश्न बन गए। आज तक ईश्वर के सम्बन्ध में जितनी बातें कही गई हैं, सब प्रश्न बन गई हैं, कोई जवाब नहीं बना। आज तक मोक्ष के सम्बन्ध में जितनी बातें कही गई हैं, सुननेवालों ने उन्हें प्रश्न बना लिया है, कोई जवाब नहीं। इसका कुल कारण इतना है कि दो अलग आयामों पर बातचीत चल रही है। आदमी को ईश्वर से कोई मतलब है ? आदमी को अपने से ही मतलब नहीं है, ईश्वर से क्या मतलब हो सकता है ? आदमी को मोक्ष से कोई प्रयोजन नहीं है। फिर भी घर के लोग सोचने लगे कि कैसे समझायें ? तो अंधा कहने लगा—बगुले के संबंध में कुछ ऐसा समझाओ जो मैं समझ सकूं। एक समझदार आदमी ने कहा—हाथ पर हाथ फेरने से जैसा तुम्हें लगता है, बगुले की गर्दन पर भी हाथ फेरो तो ऐसा ही लगेगा, बगुले की गर्दन भी ऐसी ही सुडौल होती है। वह अंधा आदमी खड़ा होकर नाचने लगा। पता है क्यों ? वह नाचने लगा क्योंकि वह समझ गया कि खीर कैसी होती है। वह समझ गया कि खीर मुड़े हुए हाथ की तरह होती है। क्या उसने गलत समझा ? उसने बिलकुल ठीक समझा। खीर से सवाल उठा, हाथ पर जाकर जवाब खतम हुए। खीर और हाथ का मेल एक हो गया। घर के लोग अपना सिर पीटने लगे और कहने लगे कि इससे तो अच्छा था कि अंधा अज्ञात में ही रहता। यह ज्ञान तो और भी खतरनाक है। असल में दूसरे से मिला हुआ ज्ञान हमेशा ही खतरनाक होता है। जो हमने नहीं जाना है, वह हम दूसरे से ले लें, वह खतरनाक सिद्ध होता है। अज्ञान कम से कम

तब ईश्वर मिलेगा ? अशान्त आदमी को ईश्वर नहीं मिल सकता। इसलिए मैं कहता हूँ कि ईश्वर के मिलने से शान्ति नहीं मिल सकती। हां, शान्ति मिल जाय तो ईश्वर मिल सकता है। इसलिए असली सवाल ईश्वर नहीं है, असली सवाल है शान्त चित्त।

अगर ईश्वर को केन्द्र बनाते हैं तो हिन्दू अलग होगा, मुसलमान अलग होगा, ईसाई अलग होगा। दुनियाँ में ३०० धर्म हैं और अगर मनुष्य के चित्त की शान्ति को केन्द्र बनाते हैं तो दुनियाँ में एक धर्म होगा, तीन सौ धर्म नहीं हो सकते, क्योंकि मन की अशान्ति लाने के नियम अलग नहीं हो सकते। हिन्दू अशान्त हो तो उसके नियम अलग नहीं हो सकते। शान्ति लाने के नियम और सूत्र तो समान हैं। अशान्ति की तो वैज्ञानिक प्रक्रिया है। हम कैसे अशान्त होते हैं, यह हम जानते हैं, इसे हम खोज सकते हैं। हम कैसे शान्त होंगे, इसे हम खोज सकते हैं। यह तो विज्ञान बन सकता है। धर्म उस दिन विज्ञान बन जायगा जिस दिन हम धर्म को वास्तविक प्रश्नों से जोड़ेंगे। जब तक हम अवास्तविक प्रश्नों से जोड़ेंगे तब तक धर्म कभी विज्ञान नहीं बन सकता। ध्यान रहे, आनेवाली दुनियाँ विज्ञान की होगी। अगर धर्म वैज्ञानिक बनता है तो वह टिकेगा, अन्यथा वह जा चुका। अब वह बच नहीं सकता। धर्म को वैज्ञानिक नहीं बनने देगा वह आदमी जो कहता है कि ईश्वर का, मोक्ष का, निर्णय करना धर्म है। मनुष्य के चित्त को बदलना तथा उसके चित्त की अशान्ति और दुख को रूपांतरित करना धर्म है। चित्त शान्त हो जाय, मौन हो जाय, तो शान्त और मौन चित्त में वैसे ही जीवन के सत्य झलक आते हैं जैसे शान्त झील में ऊपर का चाँद दिखाई पड़ने लगता है। निर्धूल दर्पण पर आपका चेहरा बन जाय, ऐसे ही दर्पण-जैसा चित्त जब शांत होता है तो जीवन के सत्य उसमें दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। जीवन के सत्यों का निर्णय नहीं करना है। जीवन के सत्यों और हमारे बीच से जो धूल का, अशांति का, बड़ा पर्दा है वह कैसे दूर हो, असली सवाल यह है। क्या मुसलमान और तरह से अशांत होता है और हिन्दू और तरह से अशांत होता है ? पुरुष और तरह से अशान्त होता है स्त्री और तरह से अशांत होती है, कभी आपने सोचा ? अशांति के नियम तो जाहिर हैं। दुनियाँ में किसी को भी अशांत होना हो तो उन्हीं नियमों का पालन करना पड़ेगा, और शांत होना हो तो भी। धर्म क्यों इतने अलग-अलग हो गए ? धर्म के अलग होने का का कारण था कि धर्म को हमने

हवाई बातों पर केन्द्रित कर दिया। यह खतरनाक बात हो गई। फिर बँटवारा बिलकुल स्वाभाविक था। अंधों को हमने प्रकाश-केन्द्रित बना दिया और अंधे विचार करने लगे कि प्रकाश कैसा है? आँखवाला तो विनम्र भी हो सकता है। अंधे कभी विनम्र नहीं होते। क्योंकि अंधे को डर लगता है कि अगर हमने कुछ धीरे से कहा, विनम्रता से कहा तो कहीं शक न हो जाय कि यह आदमी नहीं जानता है। जिन-जिन को भीतर शक होता है जानने में, वे दावेदार की तरह कहते हैं कि जो मैं कहता हूँ वही है। इसे मैं सिद्ध कर दूंगा। सिद्ध सिर्फ अंधे करना चाहते हैं। आँखवाले हँस कर बात टाल देंगे। वे कहेंगे कि ठीक है। आँखवाला विनम्र हो सकता है क्योंकि प्रकाश को जानता है। अंधा विनम्र नहीं हो सकता क्योंकि प्रकाश को नहीं जानता, केवल दावा करता है। और जब दावा करना है तो दावा पूर्ण करना है, नहीं तो कमजोरी जाहिर होती है। दुनियाँ में इतने धर्मों की जरूरत नहीं है। और जब तक इतने धर्म दुनियाँ में हैं तब तक धर्म धर्म नहीं हो सकता।

दुनियाँ में आदमी को भटकने का जो रास्ता मिल गया है वह अधर्म के कारण नहीं मिल गया है, वह बहुत धर्मों के कारण मिल गया है। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि सत्य अनिर्णीत है और असत्य बिलकुल निर्णीत है। शांति अनिर्णीत है और अशांति बिलकुल निर्णीत है। और जब सत्य पर झगड़ा हो, और इतना झगड़ा हो कि तय करना मुश्किल हो जाय कि क्या सत्य है तो आदमी असत्य की ओर चला ही जायगा। वह कम से कम निश्चय तो है। उसमें कोई झगड़ा तो नहीं है। धर्म के संबंध में विराट झगड़ा है और इसलिए आदमी को अधर्म की दिशा मिल जाती है। अभी तो यह तय ही नहीं है कि धर्म क्या है, ईश्वर क्या है, है भी या नहीं। धर्म अनिर्णीत है और अधर्म बिलकुल निर्णीत है। जो निर्णीत है वह आदमी को आकर्षित कर लेता है। दुनियाँ में जिस दिन धर्म का विज्ञान होगा, उस दिन अधर्म की ताकत टूटने लगेगी। इसलिए मैं कहता हूँ हिन्दू, मुसलमान, जैन, ईसाई, बौद्ध सभी मिलकर दुनियाँ को अधर्म में डुबाये रखने का काम कर रहे हैं। जब तक ये विदा नहीं होते, तब तक दुनियाँ धार्मिक नहीं हो सकती। लेकिन ये चाहते भी नहीं कि दुनियाँ धार्मिक हो जाय। क्योंकि जिस दिन दुनियाँ धार्मिक हो जायगी उस दिन पुरोहित के धंधे का अंत हो जायगा।

एक डाक्टर एक मरीज का इलाज करता है। ऐसे ऊपर से वह पूरी चेष्टा

करता है मरीज को ठीक करने की, चेतन मन से। लेकिन अचेतन मन चाहता है कि मरीज मरीज बना रहे। क्योंकि अगर सब मरीज ठीक हो जायँ तो डाक्टर पहले मर जायगा, मरीज बाद में मरेगा। डाक्टर के लिए बहुत जरूरी है कि मरीज मरीज रहे, और अगर पैसेवाला मरीज है तो थोड़ी ज्यादा देर मरीज रहे। ऊपर चेतन मन से उसकी पूरी शिक्षा उसे कहती है कि ठीक करो और वह पूरे चेतन मन से ठीक करने की कोशिश करता है, लेकिन अचेतन मन में, गहरे में वह मरीज को देखकर खुश होता है। डाक्टर भी बात करते हैं आपस में कि इस वक्त 'सीजन' चल रहा है।

मैंने सुना है एक रात एक होटल में तीन-चार लोगों ने खूब खाना खाया, खूब शराब पी। आधी रात तक वे जमे रहे। फिर जब आधी रात को वे बिल चुकाकर बाहर निकलने लगे तो होटल के मैनेजर ने अपनी पत्नी को कहा कि ऐसे जानदार ग्राहक रोज आ जायँ तो हम कुछ ही दिनों में खुशहाल हो जायँ। चलते वक्त जिस आदमी ने पैसे चुकाए थे उसने कहा—भगवान से प्रार्थना करो कि हमारा धंधा जोर से चले तो हम भी रोज आयँगे। चलते वक्त मैनेजर ने पूछा कि यह तो बता दीजिए कि आपका धंधा क्या है ? उस आदमी ने कहा—मैं मरघट पर लकड़ी बेचने का काम करता हूँ। भगवान से प्रार्थना करो कि धंधा जोर से चले। तो डाक्टर का अचेतन मन तो यह कहता है कि बीमारी फैले, और डाक्टर का चेतन मन कोशिश करता है कि बीमारी दूर हो। पुरोहित, साधु, संन्यासी ऊपर से तो बात करते है कि धर्म फैले, लेकिन अचेतन मन में चाहते हैं कि अधर्म रहे, क्योंकि अधर्म ही उसके व्यवसाय का आधार है। जिस दिन अधर्म मिट जायगा, उस दिन पुरोहित कहाँ होगा ?

मैंने सुना है कि एक पहाड़ी रास्ते से एक चर्च का पादरी किसी गाँव में प्रवचन के लिए जाता था। पास की ही खाई में किसी आदमी ने जोर से आवाज लगाई कि मैं मर रहा हूँ, मुझे किसी ने छुरे मारे हैं। ऐ पादरी, ऐ पुरोहित, आ मेरी सहायता कर। पादरी ने नीचे झाँक कर देखा। एक आदमी खून में लथपथ पड़ा है। उसके निकट एक छुरा है। किसी ने छुरा मारा है। काफी घाव लगे हैं। खून नीचे बह रहा है। पादरी को जाकर ठीक समय पर चर्च में 'प्रेम' के ऊपर प्रवचन देना है। उसने सोचा कि अगर इस झंझट में पड़ा तो मेरे प्रवचन का क्या होगा। वह भागने लगा। लेकिन उस नीचे पड़े आदमी ने चिल्लाया कि मैंने तुम्हें भली भाँति पहचान लिया है। मैं उसी गाँव का रहने

वाला हूँ जिसमें तुम आज प्रेम पर प्रवचन देने जा रहे हो। मैं भी सुनने आने वाला था। वहीं के लिए निकला था लेकिन यहाँ मुझे छुरे मार दिए गए। ध्यान रहे, अगर मैं बच गया तो सारे गाँव में खबर कर दूंगा कि यह आदमी प्रेम पर प्रवचन देने को इतनी जल्दी में था कि एक आदमी मर रहा था और उसे उठाने नीचे नहीं उतरा। इसके प्रवचन का क्या अर्थ हो सकता है ? पादरी डरा कि कहीं जाकर उसने गाँव में यह खबर कर दी तो बड़ी मुश्किल होगी। पादरी नीचे उतरा। जाकर उसके खून से भरे चेहरे को पोंछा। चेहरा पोंछते वक्त उसके हाथ कँप गए क्योंकि यह तो पहचाना हुआ आदमी मालूम पड़ा। उसने कहा—तुम तो पहचाने हुए मालूम पड़ते हो। उस आदमी ने कहा—अच्छी तरह, क्योंकि तुम्हारे चर्च में मेरी तस्वीर लटकी हुई है, मैं शैतान हूँ। पादरी तो एकदम घबरा गया। वह खड़ा हो गया, भगवान का नाम लेने लगा कि अच्छा है कि तुम मर जाओ। क्योंकि तुम्हारे मरने के लिए तो हम सारी चेष्टाएँ कर रहे हैं निरन्तर। अच्छा हुआ कि तुम मार डाले गए, तुम्हें किसी ने छुरे भोंक दिए हैं। तुम जल्दी मर जाओ। वह शैतान जोर से हँसने लगा। उसने कहा—पागल पादरी! मालूम होता है तुझे धंधे की पूरी खबर नहीं है। जब तक मैं हूँ तब तक तेरा धंधा है। जिस दिन मैं मर जाऊँगा उस दिन तू भी मर जायगा। मुझे बचाने की जल्दी कोशिश कर। तेरी दुकान चलती है, जब तक शैतान है। जिस दिन दुनियाँ में शैतान नहीं होगा, तेरी दुकान को कौन पूछेगा ? पादरी को खयाल आया, यह तो ट्रेड सीक्रेट था। यह तो बात सच है। उसने जल्दी से शैतान को उठाया और कहा—मरो मत, ठीक से साँस लो। मैं तुम्हें अस्पताल ले चलता हूँ। भाड़ में जाय वह प्रवचन और धर्म। क्योंकि तुम हो तभी तक हम हैं, यह हम समझ गए। दुनियाँ के धर्म-गुरु और साधु और संन्यासी की जमात नहीं चाहती कि समाज धार्मिक हो जाय। समाज को अधार्मिक बनाने का सबसे बुनियादी रास्ता यह है कि धर्म को निर्णीत मत होने दो, धर्म को विज्ञान मत बनने दो; धर्म को अंधविश्वास रहने दो। जब तक धर्म अंधविश्वास है तब तक दुनियाँ धार्मिक नहीं हो सकती। लोग जितना अधार्मिक होते हैं उतना साधु, संन्यासी, पादरी और पुरोहित के लिए धर्म का प्रचार करने के लिए ठीक मौसम निर्णीत हो जाता है। आज तक धर्म को विज्ञान नहीं बनने दिया गया। धर्म तब विज्ञान बनेगा जब वह मनुष्य-केन्द्रित होगा, ईश्वर-केन्द्रित नहीं। लेकिन पादरी-पुरोहित कहेंगे कि अगर धर्म

मनुष्य-केन्द्रित हो गया तो धर्म चला गया, क्योंकि हम तो ईश्वर की बात करते हैं, इसलिए धर्म धर्म है। पर यह बात झूठ है। ईश्वर की बातों से धर्म धर्म नहीं होता। धर्म होगा मनुष्य के व्यक्तित्व की सभी खोज-बीन के रूपान्तर से। और जिस दिन मनुष्य बदलेगा, जिस दिन मनुष्य दूसरा हो जायगा, उस दिन वह दूसरी तरह से दुनियाँ को देखेगा। अभी हम जिस तरह के आदमी हैं हमें दुनियाँ में कहीं भी ईश्वर दिखाई नहीं पड़ सकता। यह ध्यान रहे, प्रकाश के कारण प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता, हमारे पास आँख होनी चाहिए तो प्रकाश दिखाई पड़ता है।

हमें सिवा पदार्थ के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, हालाँकि हम अध्यात्म की बातें करते हैं। बातें कितनी ही हम अध्यात्म की करें, हम सब पदार्थवादी हैं; क्योंकि पदार्थ दिखाई पड़ता है, परमात्मा तो दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा हमारा विश्वास है, पदार्थ हमारा अनुभव है, और अनुभव के मुकाबले विश्वास कभी नहीं जीतता है। इसीलिए रोज परमात्मा हारता है और पदार्थ जीतता है। परमात्मा के सामने भी हम खड़े होते हैं तो हम पदार्थ ही माँगते हैं। परमात्मा के सामने जाकर आदमी प्रार्थना करता है कि मेरे लड़के की नौकरी लगा दो। इसे परमात्मा से कोई मतलब है? परमात्मा को वह एक एजेन्ट बना रहा है, लड़के को नौकरी दिलाने के लिए। असली सवाल नौकरी का है। कहता है मेरी बीमारी दूर कर दो, मेरी गरीबी मिटा दो। भगवान का इससे कोई सम्बन्ध है? भगवान के सामने खड़े होकर भी पदार्थ की माँग जारी रहती है। सारी दुनियाँ के लोग पदार्थवादी हैं। जब तक जीवन आमूल रूपांतरित न हो कोई आदमी आध्यात्मिक हो नहीं सकता, केवल बातचीत कर सकता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि पश्चिम के लोग ईमानदार भौतिकवादी हैं, पूरब के लोग बेईमान भौतिकवादी हैं। सारी दुनियाँ ईमानदारी से भौतिकवादी है और हम बहुत बेईमान हैं। हमें दिखाई तो पदार्थ पड़ता है लेकिन बातें हम परमात्मा की करते हैं। हाथ परमात्मा की तरफ जोड़ते हैं, आँखें पदार्थ पर लगी रहती हैं। पूरे समय हमारा दिमाग एक दोहरी प्रक्रिया में चलता है। सारे समय भगवान की बात, और सारे समय पदार्थ की चिन्ता। भगवान की बात करेंगे और भगवान से उलटा जियेंगे। इससे तो बेहतर है कि जो दिखाई पड़ता है उसकी सचाई को स्वीकार करके जीना शुरू किया जाय। मुझे लगता है कि ठीक-ठीक ईमानदार भौतिकवादी कभी न कभी अध्यात्मवादी हो जाता है

लेकिन बेईमान भौतिकवादी कभी अध्यात्मवादी नहीं हो पाता। वह तो भौतिक-वाद और अध्यात्मवाद के बीच में एक स्वर्ण-पथ निकाल लेता है। रहता भौतिकवादी है, बातें अध्यात्म की करके उसे रास्ता मिल जाता है। उसने एक प्रवंचना का रास्ता खोज लिया। पश्चिम का भौतिकवाद वहाँ पहुँचा जा रहा है जहाँ ५० वर्षों में आध्यात्मिक जीवन की शुरूआत हो जायगी। पश्चिम का भौतिकवाद वहाँ खड़ा हो गया है जहाँ अध्यात्म का जन्म अनिवार्य होगा। लेकिन हमारे भविष्य में कोई धर्म का जन्म होगा, इसकी आशा नहीं बाँधी जा सकती, क्योंकि धर्म के जन्म के लिए पहले तो हमें ईमानदार होना पड़ेगा, और ईमानदार होने की हमने हिम्मत खो दी है। क्योंकि ईमानदारी कहती है कि पदार्थ सत्य है और परमात्मा का कोई पता नहीं है। लेकिन हम बेईमान हैं। कहते हैं पदार्थ माया है और परमात्मा सत्य है। पदार्थ सत्य है, वह हमें सत्य दिखाई पड़ता है, २४ घण्टे उसमें हम जीते हैं, उसको हम कहते हैं माया है और जिस परमात्मा का हमें बिलकुल पता नहीं चलता, उसको हम कहते हैं सत्य है। हम कहते हैं ब्रह्म सत्य है और जगत माया है। ऐसा भी शीर्षासन कोई कौम कर सकती है? बहुत हैरानी की बात है। एक ईमानदार चिन्तन भी नहीं है इसके पीछे। और जो शुरू से ही बेईमान है, वह कैसे धार्मिक हो सकता है?

धर्म को विज्ञान बनाए बिना मनुष्य जाति और धर्म के बीच कोई गहरा अन्तर्सम्बन्ध नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य को धर्म न बदल सके, तब तक कुछ नहीं हो सकता। लेकिन कोई धर्म गुरु चाहता भी नहीं कि मनुष्य बदल जाय। मनुष्य जैसा है, ऐसा ही रहे; और नीचे गिर जाय तो खुशी होती है। क्योंकि जितना आदमी नीचे गिरता है उतना उपदेश रसपूर्ण हो जाता है। यह बड़े मजे की बात है कि किसी को ऊँचा उठाने में भी अहंकार को बड़ी तृप्ति होती है। किसी को नीचा देखने में भी बड़ा मजा आता है। जब समाज नीचे गिरता है तो कुछ लोगों को बहुत आंतरिक रस और आनंद मिलना शुरू हो जाता है कि समाज इतने नीचे गिर गया। इसको ऊँचा उठाना है। धार्मिक आदमी रोता है स्थिति देखकर। जो भीतर से अधार्मिक हैं, और ऊपर से धार्मिक, वे प्रसन्न होते हैं। उन्हें दिखाई पड़ता है कि यह अच्छा अवसर है। यह दशा ईश्वर को केन्द्र में रखने से पैदा हुई। मनुष्य को रखना पड़ेगा केन्द्र में। मनुष्य को केन्द्र में रखने का क्या मतलब होता है?

मनुष्य को केन्द्र में रखना एक और ढंग से सोचना है। क्योंकि जब हम मनुष्य को केन्द्र में रखते हैं तो सवाल यह नहीं है कि सृष्टि कब पैदा हुई ? फिजूल है यह बात। इससे कोई प्रयोजन नहीं है कि सृष्टि कब बनी। सिर्फ नासमझ अपना समय और दूसरों का समय खराब करते हैं इस तरह की बातों में कि सृष्टि कब बनी है। बुद्धिमान आदमी जानता है जो है, वह है। वह कभी नहीं बनी। कभी कैसे बन सकती है ? कहाँ से आयगी ? कैसे बनेगी ? जो है, वह है। इसलिए सृष्टि कब बनी या नहीं बनी, इस झंझट में नहीं पड़ता। वह इस झंझट में भी नहीं पड़ता कि किसने बनाई, क्योंकि उसे अपना ही पता-ठिकाना नहीं है तब वह कैसे इस सारे विराट, अनादि, अनन्त जगत को बनानेवाले का विचार करे ? यह सिर्फ अहंकारी लोग विचार करते हैं। यह कभी आपने सोचा भी नहीं होगा कि मनुष्य सबसे बड़ा अहंकार क्या कर सकता है। वह यह कर सकता है कि मैं सब जानता हूँ, मैं सर्वज्ञ हूँ। एक धनी आदमी क्या अहंकार करेगा ? यही कह सकता है कि मेरे पास इतने करोड़ रुपये हैं। लेकिन वह भी जानता है कि करोड़ रुपयों का महल रेत से ज्यादा बड़ा नहीं है। कभी भी खिसक जा सकता है। कल जो करोड़पति था, आज भिखमंगा है। मनुष्य ने जो सबसे बड़े अहंकार की घोषणाएँ की हैं, वह सर्वज्ञता की है। आइंस्टीन से किसी ने पूछा कि एक वैज्ञानिक में और एक धार्मिक व्यक्ति में आप क्या अंतर पाते हैं ? आइंस्टीन ने कहा कि वैज्ञानिक आदमी से १०० बातें पूछिए तो ९८ बातों में तो वह कह देगा कि मैं नहीं जानता हूँ। दो बातों में मुश्किल से कहेगा कि मैं जानता हूँ और वह भी इस शक के साथ कहेगा कि अभी इतना जानता हूँ, कल बदल सकता है। लेकिन धार्मिक से १०० बातें पूछिए तो १०० के ही बाबत कहेगा कि मैं पूरा जानता हूँ और जो जानता हूँ उसमें बदलने का कोई सवाल नहीं, क्योंकि वह पूर्ण ज्ञान है। मैं आप से कहना चाहता हूँ कि वैज्ञानिक के पास ज्यादा धार्मिक चित्त है और धार्मिक के पास बिलकुल ही अधार्मिक चित्त है। क्योंकि वैज्ञानिक विनम्रता से यह कहता है कि वह मैं नहीं जानता हूँ और जो जानता हूँ वह भी संदिग्ध है क्योंकि कल ज्ञान की और नई धाराएँ आएँगी। सब बदल जायगा। इसलिए अब तक जो हम जानते हैं उसके आधार पर कहते हैं कि ऐसा है। लेकिन ऐसा ही है, ऐसा हम नहीं कह सकते हैं, और कैसा हो सकता है वह कल बताएगा। ज्ञान रोज खुलता जायगा। रोज नए ज्ञान के अवतरण होंगे।

धार्मिक आदमी कहता है परमात्मा अनन्त है, लेकिन फिर भी कहता है मैं परमात्मा को जानता हूँ। सत्य बात यह है कि वैज्ञानिक की मान्यता कहती है कि जो है, वह अनन्त है और जो अनन्त है उसे हम कैसे जान सकते हैं? हम थोड़ा-बहुत जान पाते हैं। वह जान पाना भी कभी पूरा नहीं हो सकता। क्योंकि पूरे को हम कभी नहीं जानते। जैसे कि कोई आदमी एक उपन्यास का एक पन्ना पढ़ ले और सोचे कि मैंने पूरा महाकाव्य जान लिया। जैसे कि किसी आदमी को गीत की एक कड़ी हाथ लग जाय और वह समझे कि मैंने पूरा महाकाव्य जान लिया। हम इतना थोड़ा जानते हैं, और इतना बड़ा अनजाना छूट जाता है कि सिर्फ पागल और अज्ञानी और हद दर्जे के मूढ़ यह दावा कर सकते हैं कि सब जान लिया गया है। जो आदमी कहता है सब जान लिया गया है वह आदमी परमात्मा को अनन्त नहीं मानता, क्योंकि अनन्त कभी भी पूरा नहीं जाना जा सकता। सर्वज्ञ का दावा सिर्फ उस परमात्मा के प्रति हो सकता है जिसकी सीमा है क्योंकि जो भी जान लिया गया वह सीमित हो गया। जानने ने उसकी सीमा बना दी। जो नहीं जाना गया वही असीम हो सकता है। एक तरफ हम कहते हैं परमात्मा अनंत है और दूसरी तरफ कहते हैं कि मैं परमात्मा को जानता हूँ। विज्ञान ने पहली बार इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि जो है वह अनन्त है, और इसलिए मनुष्य उसे पूरा कभी नहीं जान पायगा। हमें कुछ भी पता नहीं है कि जगत कैसे चल रहा है, हमें कुछ भी पता नहीं है कि जगत कैसे चलेगा, जीवन के सारे सूत्र अज्ञात हैं। जो थोड़ी–बहुत तोड़-जोड़ करके हम जान पाते हैं वह इतना कम है कि उसके कारण दावेदार नहीं हुआ जा सकता। विज्ञान ने पहली बार विनम्रता सिखाई। हालांकि सारे धर्म कहते हैं कि आदमी को विनम्र होना चाहिए, लेकिन किसी धर्म ने आदमी को आज तक विनम्रता नहीं सिखाई। धर्मों ने मनुष्य को अहंकार सिखलाया। उसी अहंकार ने हिन्दू को मुसलमान से लड़ाया क्योंकि सब सर्वज्ञ थे। जहाँ सब सर्वज्ञ हों वहाँ बड़ी मुश्किल है, क्योंकि कोई झुकने को तैयार नहीं है कि दूसरा भी ठीक हो सकता है। धर्मों ने युद्ध करवाए पर उन्होंने बातें विनम्रता की कीं।

अगर मनुष्य को केन्द्र बनाएँ और परमात्मा को केन्द्र न बनाएँ तो चीजें बहुत सुलझ सकती हैं; क्योंकि मनुष्य जाना जा सकता है। फिर हम खुद मनुष्य हैं। हमें कहीं जानने के लिए दूर नहीं जाना पड़ेगा, हम अपने भीतर उतर

सकते हैं। चीन में एक सम्राट् था। उस सम्राट् ने अपने राज्य में खबर भिजवायी कि मैं राज्य की मोहर बनवाना चाहता हूँ और उस मोहर पर एक बोलता हुआ मुर्गा चाहता हूँ। राज्य भर के चित्रकारों में जो श्रेष्ठतम चित्र बनावेगा उसको लाखों रुपए पुरस्कार मिलेंगे और वह चित्रकार 'राज्य-कलागुरु' भी हो जायगा। हजारों चित्रकारों ने चित्र बनाए। जब सारे चित्र आए तो राजा दंग रह गया, क्योंकि तय करना मुश्किल था। सभी चित्र अद्भुत थे। एक से एक सुन्दर चित्र। कैसे निर्णय हो? राजा पहले तो सोचता था कि निर्णय आसान होगा लेकिन निर्णय बहुत मुश्किल हो गया। तब उसने पूछा कि कौन निर्णय करेगा? किसी कलागुरु को बुलाओ। एक बूढ़ा चित्रकार था जिसने प्रतियोगिता में भाग नहीं लिया था, उसे बुलाया गया। उस बूढ़े से कहा गया कि इन चित्रों को देखकर पहचानो कि कौन-सा चित्र ठीक है। उसको हम राज-मोहर पर रखना चाहते हैं। वह बूढ़ा अन्दर बैठ गया। दरवाजे उसने बन्द कर लिए और साथ में एक मुर्गा भी ले गया। राजा ने पूछा, इस मुर्गे को किसलिए ले जा रहे हो? उसने कहा कि वह आप नहीं जानते। मैं कैसे पहचानूंगा कि कौन मुर्गा ठीक है? मुर्गा ही पहचान सकता है। राजा ने कहा—पागल हो गए हो। मुर्गा कैसे पहचानेगा? उस बूढ़े ने कहा—मैं जानता हूँ। एक-एक चित्र खिड़की से बाहर खींचा जाने लगा। वे अस्वीकृत हो गए। अन्त में सारे चित्र बाहर फेंक दिए गए तो राजा मुश्किल में पड़ा। पहले तो मुश्किल यह थी कि कौन-सा चित्र ठीक है। उस बूढ़े ने सब चित्र रद्द कर दिए। राजा ने पूछा—क्या मामला है? ये सब चित्र बेकार हैं? उस बूढ़े ने कहा—सब बेकार हैं। कसौटी क्या है—राजा ने पूछा। उसने कहा—मैं मुर्गे को भीतर लाया और हर चित्र के सामने मुर्गे को खड़ा किया। मुर्गे ने किसी भी चित्र में मुर्गे को देखा भी नहीं। चिन्ता भी नहीं की। अगर मुर्गे को चित्र जीवित मालूम पड़ता तो मुर्गा बांग देता, लड़ने को खड़ा हो जाता। लेकिन मुर्गे ने कोई फिक्र ही नहीं की। चित्र पड़ा रहा एक कोने में, मुर्गा कमरे में घूमता रहा। मुर्गे ने खयाल नहीं किया कि दूसरा भी मुर्गा है। इसलिए बेकार है, चित्र जिन्दा नहीं है।

राजा ने कहा—तब तो बड़ी मुश्किल हो गई, जिन्दा चित्र कैसे बनेगा? आप बनाएँ। उस बूढ़े ने कहा, मैं बहुत बूढ़ा हो गया और अब इस उम्र में बड़ी कठिनाई पड़ेगी। राजा ने कहा—क्या कठिनाई? उस बूढ़े ने कहा—पहले मुझे मुर्गा बनना पड़ेगा, तब मैं मुर्गा बना सकता हूँ।

मुर्गे को बाहर से देखना है, उसकी आकृति को देखना है, पर उसकी आत्मा बाहर से नहीं देखी जा सकती। इसलिए मुर्गे को बाहर से देखकर जो चित्र बनाता है, वह मुर्गे के शरीर का चित्र बनाना है, मुर्गे की आत्मा का नहीं।' मुर्गे की आत्मा को सिर्फ मुर्गा जान सकता है। उस बूढ़े ने कहा—बड़ी मुश्किल है। इस उम्र में मुझे मुर्गा बनना पड़ेगा। राजा ने कहा—पहली बात तो यह है कि तुम मुर्गा बनोगे कैसे? और अगर बन गए तो फिर मेरा चित्र कौन बनाएगा? क्योंकि मुर्गे तो बहुत हैं। उस बूढ़े ने कहा—मैं एक कोशिश करता हूँ, लेकिन जल्दी नहीं। जल्दी नहीं हो सकता यह काम। अगर आदमी की तस्वीर बनवानी हो, तो मैं अभी बना दूं क्योंकि मैं आदमी हूँ।' मुर्गे की तस्वीर मैं कैसे बना सकता हूँ? मुर्गे को जाना ही नहीं कि मुर्गा भीतर से कैसे अनुभव करता है। जब वह बांग देता है तो उसके भीतर क्या होता है, जब वह भयभीत होकर भागता है तो उसके भीतर क्या होता है, मुझे कुछ पता नहीं। मैं जानता हूँ कि जब मैं भयभीत होता हूँ तो क्या होता है, जब मैं क्रोध से भरता हूँ तो क्या होता है, जब मैं प्रेम से भर जाता हूँ तो भीतर क्या होता है, वह मैं जानता हूँ। आदमी कैसा अनुभव करता है, वह मैं जानता हूँ, आदमी क्या है, वह मैं जानता हूँ। मुर्गे को जानने की मैं अब कोशिश करता हूँ।

वह चित्रकार एक जंगल में चला गया, तीन साल की मोहलत माँग कर। राजा ने छह महीने बाद अपने आदमी भेजे कि देखो वह बुड्ढा है कि मर गया। आदमी ने वहाँ से लौटकर कहा कि आप पागल के चक्कर में पड़ गए हैं। वह जंगली मुर्गों के साथ बैठा हुआ है, कपड़े सब खो गए हैं, नंगा है। मुर्गों की तरह छलांग लगाता है, मुर्गों की तरह चिल्लाता है। हमें देखकर वह मुर्गे की तरह बाँग देने लगा। हमने कहा—हो गया! इस पागल से कैसे चित्र बनेगा? यह मुर्गा हो जायगा, यह तो ठीक है, लेकिन चित्र कौन बनायगा? साल भर बीत गया। फिर आदमी गए। दो साल बीत गए, तीन साल बीते। वह आदमी एक दिन दरबार में आकर खड़ा हो गया नंगा और मुर्गे की बाँग दी। राजा ने अपने सिर पर हाथ मार लिया। उसने कहा—यह तो ठीक है कि आप मुर्गे की बाँग सीख गए। लेकिन चित्र कहाँ है? उसने कहा—चित्र तो अब एक क्षण में बन जायगा। चित्र बनाने में क्या देर लगती है? मैंने मुर्गे का जीवन जीने की कोशिश की है। हालाँकि वह पूरा प्रामाणिक

सकते हैं। चीन में एक सम्राट् था। उस सम्राट् ने अपने राज्य में खबर भिजवायी कि मैं राज्य की मोहर बनवाना चाहता हूँ और उस मोहर पर एक बोलता हुआ मुर्गा चाहता हूँ। राज्य भर के चित्रकारों में जो श्रेष्ठतम चित्र बनावेगा उसको लाखों रुपए पुरस्कार मिलेंगे और वह चित्रकार 'राज्य-कलागुरु' भी हो जायगा। हजारों चित्रकारों ने चित्र बनाए। जब सारे चित्र आए तो राजा दंग रह गया, क्योंकि तय करना मुश्किल था। सभी चित्र अद्भुत थे। एक से एक सुन्दर चित्र। कैसे निर्णय हो? राजा पहले तो सोचता था कि निर्णय आसान होगा लेकिन निर्णय बहुत मुश्किल हो गया। तब उसने पूछा कि कौन निर्णय करेगा? किसी कलागुरु को बुलाओ। एक बूढ़ा चित्रकार था जिसने प्रतियोगिता में भाग नहीं लिया था, उसे बुलाया गया। उस बूढ़े से कहा गया कि इन चित्रों को देखकर पहचानो कि कौन-सा चित्र ठीक है। उसको हम राज-मोहर पर रखना चाहते हैं। वह बूढ़ा अन्दर बैठ गया। दरवाजे उसने बन्द कर लिए और साथ में एक मुर्गा भी ले गया। राजा ने पूछा, इस मुर्गे को किसलिए ले जा रहे हो? उसने कहा कि वह आप नहीं जानते। मैं कैसे पहचानूंगा कि कौन मुर्गा ठीक है? मुर्गा ही पहचान सकता है। राजा ने कहा—पागल हो गए हो। मुर्गा कैसे पहचानेगा? उस बूढ़े ने कहा—मैं जानता हूँ। एक-एक चित्र खिड़की से बाहर खींचा जाने लगा। वे अस्वीकृत हो गए। अन्त में सारे चित्र बाहर फेंक दिए गए तो राजा मुश्किल में पड़ा। पहले तो मुश्किल यह थी कि कौन-सा चित्र ठीक है। उस बूढ़े ने सब चित्र रद्द कर दिए। राजा ने पूछा—क्या मामला है? ये सब चित्र बेकार हैं? उस बूढ़े ने कहा—सब बेकार हैं। कसौटी क्या है—राजा ने पूछा। उसने कहा—मैं मुर्गे को भीतर लाया और हर चित्र के सामने मुर्गे को खड़ा किया। मुर्गे ने किसी भी चित्र में मुर्गे को देखा भी नहीं। चिन्ता भी नहीं की। अगर मुर्गे को चित्र जीवित मालूम पड़ता तो मुर्गा बाँग देता, लड़ने को खड़ा हो जाता। लेकिन मुर्गे ने कोई फिक्र ही नहीं की। चित्र पड़ा रहा एक कोने में, मुर्गा कमरे में घूमता रहा। मुर्गे ने खयाल नहीं किया कि दूसरा भी मुर्गा है। इसलिए बेकार है, चित्र जिन्दा नहीं है।

राजा ने कहा—तब तो बड़ी मुश्किल हो गई, जिन्दा चित्र कैसे बनेगा? आप बनाएँ। उस बूढ़े ने कहा, मैं बहुत बूढ़ा हो गया और अब इस उम्र में बड़ी कठिनाई पड़ेगी। राजा ने कहा—क्या कठिनाई? उस बूढ़े ने कहा—पहले मुझे मुर्गा बनना पड़ेगा, तब मैं मुर्गा बना सकता हूँ।

मुर्गे को बाहर से देखता है, उसकी आकृति को देखना है, पर उसकी आत्मा बाहर से नहीं देखी जा सकती। इसलिए मुर्गे को बाहर से देखकर जो चित्र बनाता है, वह मुर्गे के शरीर का चित्र बनाना है, मुर्गे की आत्मा का नहीं। मुर्गे की आत्मा को सिर्फ मुर्गा जान सकता है। उस बूढ़े ने कहा—बड़ी मुश्किल है। इस उम्र में मुझे मुर्गा बनना पड़ेगा। राजा ने कहा—पहली बात तो यह है कि तुम मुर्गा बनोगे कैसे ? और अगर बन गए तो फिर मेरा चित्र कौन बनाएगा ? क्योंकि मुर्गे तो बहुत हैं। उस बूढ़े ने कहा—मैं एक कोशिश करता हूँ, लेकिन जल्दी नहीं। जल्दी नहीं हो सकता यह काम। अगर आदमी की तस्वीर बनवानी हो, तो मैं अभी बना दूं क्योंकि मैं आदमी हूँ। मुर्गे की तस्वीर मैं कैसे बना सकता हूँ ? मुर्गे को जाना ही नहीं कि मुर्गा भीतर से कैसे अनुभव करता है। जब वह बाँग देता है तो उसके भीतर क्या होता है, जब वह भयभीत होकर भागता है तो उसके भीतर क्या होता है, मुझे कुछ पता नहीं। मैं जानता हूँ कि जब मैं भयभीत होता हूँ तो क्या होता है, जब मैं क्रोध से भरता हूँ तो क्या होता है, जब मैं प्रेम से भर जाता हूँ तो भीतर क्या होता है, वह मैं जानता हूँ। आदमी कैसा अनुभव करता है, वह मैं जानता हूँ, आदमी क्या है, वह मैं जानता हूँ। मुर्गे को जानने की मैं अब कोशिश करता हूँ।

वह चित्रकार एक जंगल में चला गया, तीन साल की मोहलत माँग कर। राजा ने छह महीने बाद अपने आदमी भेजे कि देखो वह बुड्ढा है कि मर गया। आदमी ने वहाँ से लौटकर कहा कि आप पागल के चक्कर में पड़ गए हैं। वह जंगली मुर्गों के साथ बैठा हुआ है, कपड़े सब खो गए हैं, नंगा है। मुर्गों की तरह छलांग लगाता है, मुर्गों की तरह चिल्लाता है। हमें देखकर वह मुर्गे की तरह बाँग देने लगा। हमने कहा—हो गया ! इस पागल से कैसे चित्र बनेगा ? यह मुर्गा हो जायगा, यह तो ठीक है, लेकिन चित्र कौन बनायगा ? साल भर बीत गया। फिर आदमी गए। दो साल बीत गए, तीन साल बीते। वह आदमी एक दिन दरबार में आकर खड़ा हो गया नंगा और मुर्गे की बाँग दी। राजा ने अपने सिर पर हाथ मार लिया। उसने कहा—यह तो ठीक है कि आप मुर्गे की बाँग सीख गए। लेकिन चित्र कहाँ है ? उसने कहा—चित्र तो अब एक क्षण में बन जायगा। चित्र बनाने में क्या देर लगती है ? मैंने मुर्गे का जीवन जीने की कोशिश की है। हालांकि वह पूरा प्रामाणिक

नहीं होगा, क्योंकि फिर भी मैं आदमी हूँ। लेकिन अब मैं मुर्गे के पास रहा हूँ, मुर्गे से लड़ा हूँ, मुर्गे को प्रेम किया है, मुर्गे से दुश्मनी की है, मुर्गे से दोस्ती की है, मुर्गे की भाषा में समझने लगा हूँ, मुर्गे मेरी भाषा समझने लगे हैं। अब मैं कुछ थोड़ा मुर्गे को बना सकता हूँ। उसने कलम उठाई और चित्र बना दिया। एक मुर्गे को अंदर बुलाया। चित्र देखकर मुर्गा दरवाजे पर ही ठहर गया और जोर से उसने बाँग दी। कमरे के भीतर आने से मुर्गे ने इनकार कर दिया। कमरे के भीतर और भी जानदार मुर्गे हैं। मुर्गा डरा और भागने लगा। मुर्गे को भीतर लाने की कोशिश की, मुर्गा बाहर भागने लगा। उस चित्रकार ने कहा—बस, ठीक है, यह मुर्गा काम देगा, क्योंकि इसे मुर्गा भी मानता है कि यह मुर्गा है।

आदमी न ईश्वर को जान सकता है, न आदमी दूर की अनन्त बातों को। आदमी अगर प्रामाणिक रूप से कुछ जान सकता है तो सिर्फ आदमी को। और अगर आदमी को जान ले तो आदमी इतनी बड़ी इकाई है कि आदमी को जितना जानता चला जाय उतनी नई-नई दिशाएँ आदमी के भीतर से खुलती हैं। और उन दिशाओं से वह वहाँ तक की भी यात्रा कर सकता है जहाँ हमें नहीं दिखाई पड़ता कि आदमी जुड़ा हुआ है। हम अपने भीतर ही नहीं गए हैं। न हम अपने क्रोध को जानते हैं, न अपने प्रेम को, न अपनी चिन्ता को, न अपनी अशान्ति को, न अपने तनावों को, न अपनी नींद को, न अपने जागरण को, हम कुछ भी नहीं जानते अपने बाबत। हम सोते जरूर हैं लेकिन कोई अगर पूछ ले कि नींद क्या है, एक आदमी भी उत्तर नहीं दे सकता। हम कहेंगे कि हम सो जाते हैं। लेकिन नींद क्या है? यह कौन सी घटना है जो नींद में घट जाती है और आदमी एकदम किसी और दुनियाँ में चला जाता है। जागरण क्या है? क्रोध क्या है? और प्रेम क्या है? मनुष्य के व्यक्तित्व को हम केन्द्र बनायँगे तो ये सारे आयाम खोजने पड़ेंगे। जितना हम इन आयामों में खोज करते हैं उतने ही नए-नए द्वार खुलते चले जाते हैं और एक दिन मनुष्य द्वार बन जाता है परमात्मा का और हम मनुष्य को जानकर उसे जान लेते हैं जिसे मनुष्य को जाने बिना जानने का कोई उपाय नहीं है। जिस दिन हम मनुष्य के व्यक्तित्व के सारे पहलू जान लेते हैं, उसी दिन मुक्ति शुरू हो जाती है। क्योंकि जो निरर्थक है, वह गिर जाता है और जो सार्थक है वह शेष रह जाता है। एक आदमी जानता है तो काँटों पर नहीं चलता, नहीं

जानता है तो चला जाता है। जानता है तो फिर कांटों से बच कर चलता है। जैसे ही हम भीतर जानने लगते हैं, जीवन के जो कांटें हैं वे विसर्जित होने लगते हैं। अभी तो हमारी हालत ऐसी है कि हम कांटें बोते हैं, उनको पानी डालते हैं, उनको खाद डालते हैं, उनको बड़ा करते हैं और जब लहूलुहान हो जाते हैं तो चिल्लाते हैं कि हम इन अशांतियों से कैसे बचें ? हम ही अशांतियों को पैदा करते हैं, निर्मित करते हैं, हम उनके जन्मदाता हैं, उनको पानी देते हैं और सँभालते हैं, उनको बड़ा करते हैं। जब अशांति प्राणों को छेदने लगती है तो गुरु के चरणों में जाकर पूछते हैं कि शांत होने का रास्ता बताओ। वह हमें कह देता है कि जाओ, राम-राम जपो और शांत हो जाओ। जैसे राम-राम न जपने से अशांति पैदा हुई हो। अगर राम-राम न जपने से अशांति पैदा हुई हो तब तो राम-राम जपने से चली जायगी, लेकिन अशांति को पैदा करने के कारण बिलकुल दूसरे हैं। उनके राम-राम से कोई सम्बन्ध ही नहीं। वे कारण मौजूद रहेंगे और आप राम-राम जपते रहेंगे। तब परिणाम यह होगा कि अशांति कायम रहेगी और राम-राम जपना एक नई अशांति हो जायगी। सारी अशांति अपनी जगह है, आपका क्रोध अपनी जगह है, घृणा अपनी जगह है, चिन्ता अपनी जगह है। वह सब अपनी जगह है और ऊपर से घृणा और क्रोध से भरा हुआ आदमी राम-राम भी जप रहा है। यह एक और परेशानी उसने मोल ले ली है। इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी और भी अशांत हो जाते हैं। एक साधारण आदमी उतना अशांत नहीं मिलेगा जितना धार्मिक आदमी अशांत मिलेगा। एक साधारण आदमी उतना क्रोधी नहीं मिलेगा, जितना सन्यासी क्रोधी मिलेगा। उसका कारण है। क्योंकि सारी अशांतियों के कारण तो अपनी जगह मौजूद हैं और उन्होंने नए पागलपन ईजाद कर लिये हैं। इनकी अशांति गहरी हो जायगी, दुगनी हो जायगी। कोई आदमी कभी इस तरह शांत नहीं हो सकता। ध्यान रहे, अशांत आदमी शान्त हो ही नहीं सकता। आप कहेंगे फिर तो बड़ी मुश्किल हो गई। हम तो सब अशांत हैं फिर शांत कैसे होंगे ? अशांत आदमी कभी शान्त नहीं होता। अशान्ति को समझ लें तो अशान्ति गिर जाती है और जो शेष रह जाता है उसका नाम शान्ति है। शान्ति अशान्ति के विपरीत नहीं है कि आप अशान्त हैं और शान्त हो जायें। शान्ति अशान्ति का अभाव है। जब आप अशान्त नहीं रह जाते हैं तब जो घटना घटती है उसका नाम

शान्ति है। इसलिए सवाल शान्त होने का नहीं है, सवाल अशान्ति को जानने-पहचानने का है। अशान्ति को जितना कोई आदमी पहचान लेगा, उतना अशान्त वह कम होगा। जितनी गहरी पहचान बढ़ेगी, अशान्ति गिरती चली जायगी। एक दिन आयगा, अशान्ति के सारे कारण जान लिये जायेंगे, फिर कैसे कोई अशान्त होगा? अशान्ति खत्म हो जायगी। लेकिन हम अशान्ति खोना नहीं चाहते और शान्ति पाना चाहते हैं, तब एक अद्भुत एक तनाव पैदा होता है जो जिन्दगी को खा जाता है। हिंसा से भरा हुआ आदमी अहिंसक नहीं हो सकता। हाँ, हिंसा चली जाय तो जो शेष रह जाती है उसका नाम अहिंसा है। आदमी अपने को जितना जाने, उतना ही वह बदलने लगता है। ज्ञान से मेरा मतलब वेद का ज्ञान नहीं, उपनिषद् का ज्ञान नहीं। ज्ञान से मतलब मनुष्य का ज्ञान, वह जो मैं हूँ, उसका ज्ञान जैसा मैं हूँ। उस ज्ञान का मतलब यह नहीं कि किताब में लिखा है कि मैं ब्रह्म हूँ तो बैठ कर आत्मज्ञानी कह रहा है कि मैं ब्रह्म हूँ। मैं ब्रह्म हूँ, यह कोई ज्ञान नहीं है। किताब में लिखा है कि आप ब्रह्म हैं और आप भली भाँति जानते हैं कि ब्रह्म आप बिलकुल नहीं हैं। आप क्रोध हो सकते हैं, दुश्मन हो सकते हैं, जहर हो सकते हैं, ब्रह्म कहाँ? और आप ब्रह्म होते तो फिर यह दोहराने की क्या जरूरत थी बैठकर? ब्रह्म कहीं बैठ कर दोहराता होगा कि मैं ब्रह्म हूँ? अगर कोई पुरुष किसी कोने में बैठकर दोहराने लगे कि मैं पुरुष हूँ तो पास-पड़ोस के लोगों को शक होगा कि कुछ गड़बड़ है। क्योंकि अगर यह है, तो दोहराना क्या है। बात खतम हो गई। हम हमेशा वही दोहराते हैं जो हम नहीं होते। ध्यान रखना, हम हमेशा वही घोषणा करते हैं जो हम नहीं होते हैं। अज्ञानी ज्ञान की घोषणा करता है, मूढ़ सर्वज्ञ होने की घोषणा करता है, अहंकारी विनम्र होने की घोषणा करता है, हिंसक अहिंसक होने का दावा करता है। लेकिन जो होता है उसके दावे खो जाते हैं, उसे दावे का पता ही नहीं चलता। जिसके भीतर से हिंसा चली गई, उसे कैसे पता चल सकता है कि मैं अहिंसक हूँ? होने का पता सिर्फ उनको चलता है जिनकी हिंसा पूरी तरह मौजूद है। स्वयं के ज्ञान का मतलब यह नहीं है कि शास्त्रों में जो लिखा है उसे हम दोहरायें। स्वयं के ज्ञान का मतलब है जो हूँ अपनी असलियत में, जैसा भी हूँ। बहुत नारकीय है यह स्थिति। उसे खोलेंगे तो बहुत दुर्गन्ध आयगी। लोग आम तौर से कहते हैं कि अगर हम शरीर को खोलेंगे तो हड्डी

मांस-मज्जा मिलेगा। लेकिन अपनी आत्मा को खोलिएगा तो हड्डी, मांस-मज्जा से भी ज्यादा गंदगी मिलेगी, क्योंकि शरीर में कहीं भी क्रोध नहीं है, शरीर में कहीं भी घृणा नहीं है, शरीर में कहीं भी ईर्ष्या नहीं है। ये सब कहाँ हैं ? ये आप हैं। ये हमारे भीतर हैं। वहाँ खोलना पड़ेगा। वहाँ खोलने से बहुत घबराहट होगी। लेकिन उसे खोले बिना, उसे जाने बिना कोई रूपान्तरण नहीं है। और जिस दिन हम शास्त्रों को नहीं, परमात्मा को नहीं, मनुष्य को केन्द्र बनायेंगे, उस दिन हम मनुष्य को पूरा खोल सकेंगे। और ध्यान रहे जितना हम स्वयं को जान लें, उतने ही हम दूसरे होने शुरू हो जाते हैं। क्योंकि जानते हुए कोई भी आदमी दीवाल से निकलने की कोशिश नहीं करता, दरवाजा मालूम हो तो आदमी दरवाजे से निकलता है। दरवाजा मालूम न हो तो दीवाल से टकराता है। हमें पता ही नहीं कि हम क्या हैं ? इसलिए जिन्दगी में रोज टकराहट होती है। मनुष्य को जानने से एक दिन परमात्मा उपलब्ध हो जाता है।

आचार्य रजनीश का साहित्य

अज्ञात की ओर	२.००
अन्तर्यात्रा	प्रेस में
अन्तर्वीणा	६.००
अमृतकण	०.६०
अस्वीकृति में उठा हाथ	५.००
इशावास्योपनिषद्	१२.००
(भारत, गाँधी और मेरी चिन्ता)	
कामयोग, धर्म और गाँधी	३.००
क्रान्तिबीज	४.००
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१.००
गहरे पानी पैठ	५.००
गीतादर्शन : पुष्प १, २, ३, ५,	१७.००
जीवन और मृत्यु	१.००
जिन खोजा तिन पाइयाँ	२०.००
ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया	४.००
ढाई आखर प्रेम का	५.००
नए संकेत	२.००
पथ के प्रदीप	प्रेस में
परिवार नियोजन	०.७५
प्रभु की पगडंडियाँ	४.००
पूर्व का धर्म : पश्चिम का विज्ञान	०.५०
प्रेम के फूल	५.००
प्रेम और विवाह	१.५०
प्रेम है द्वार प्रभु का	८.००
महावीर : मेरी दृष्टि में	३०.००
मिट्टी के दीए (द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण)	५.००
मैं कहता आँखन देखी	६.००
मैं कौन हूँ ? (द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण)	३.००
मन के पार	१.००
महावीर वाणी	प्रेस में
शान्ति की खोज	२.००
साधनापथ	प्रेस में
सत्य का सागर शून्य की नाव	३.००

समुन्द समाना बुंद में	७.००
सत्य के अज्ञात सागर का आमन्त्रण	१.५०
सत्य की पहली किरण	६.००
समाजवाद से सावधान	४.००
सिंहनाद	१.५०
संभावनाओं की आहट	६.००
संभोग से समाधि की ओर	५.००
शून्य का स्वर	प्रेस में
सारे फासले मिट गए	१.२५
ज्योतिशिखा—त्रैमासिक पत्रिका	१.२५
युक्रान्द—मासिक पत्रिका	१.००
आचार्य रजनीश : समन्वय, विश्लेषण एवं संसिद्धि (द्वितीय संशोधित संस्करण) —डा० रामचन्द्र प्रसाद	प्रेस में

आचार्यश्री का नवीनतम सर्वोत्तम प्रकाशन

महावीर : मेरी दृष्टि में

प्रस्तुत कृति साधनाशिविर काश्मीर में दिए गए आचार्यश्री के प्रवचनों का संग्रह है। इसमें जैनधर्म के चौवीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के जीवन-प्रसंगों तथा उनकी मान्यताओं को वैज्ञानिक ढंग से समझाया गया है और प्रतिक्रमण, सामायिक, व्रत, काय क्लेश, उपवास, अहिंसा, ध्यान आदि जैनधर्म के अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों के अद्‌भुत रहस्य प्रकट हुए हैं। साथ ही साथ अशरीरी आत्माओं से सम्पर्क, जातिस्मरण, मुक्त आत्माओं का पुनरागमन, जड़ एवं पशुजगत से तादात्म्य, निगोद आदि धार्मिक जगत के परम गुह्य विषयों का भी पहली बार उद्‌घाटन हुआ है।

कृति प्रयोगात्मक है। आचार्य श्री द्वारा प्रदर्शित मार्ग से गहरे तल पर उतर कर पाठक स्वयं सत्य का अनुभव कर सकते हैं।

आकार : डिमाई : : पृष्ठ ७६४ : : दिल्ली १९७१ : : सजिल्द : :
मूल्य रु० ३०·००

ACHARYA RAJNEESH'S BOOKS

I. TRANSLATED FROM THE ORIGINAL HINDI VERSION :

1. Path of Self-Realization	4.00
2. Seeds of Revolutionary Thoughts	4.50
3. Philosophy of Non-Violence	0·80
4. Who am I ?	3·00
5. Earthen Lamps	4·50
6. Wings of Love and Random Thoughts	3·50
7. Towards the Unknown	1·50
8. From Sex to Superconsciousness	6·00

II. ORIGINAL ENGLISH BOOKS :

9. The Mysteries of Life and Death	4·00
10. Meditation : A New Dimension	2·00
11. Beyond and Beyond	2·00
12. Flight of the Alone to the Alone	2·50
13. LSD : A Short cut to False Samadhi	2·00
14. Yoga : As Spontaneous Happening	2·00
15. The Vital Balance	1·50
16. The Gateless Gate	2·00
17. The Silent Music	2·00
18. The Turning In	2·00
19. The Eternal Message	2·00
20. What is Meditation ?	3·00
21. Wisdom of Folly	6·00

III. CRITICAL STUDIES ON ACHARYA RAJNEESH :

22. *Acharya Rajneesh* : A Glimpse	1·25
23. *The Mystic of Feeling* : A Study in Rajneesh's Religion of Experience—Dr. R. C. Prasad	20·00
24. *Lifting the Veil* : (Kundalini Yoga) —Dr. R. C. Prasad	10-00

आचार्य रजनीश की चार अनमोल कृतियाँ

१. सम्भावनाओं की आहट

(मनुष्य के स्वयं के अस्तित्व एवं आत्मबोध का परिचय)—
आकार डिमाई, पृष्ठ १६२, दिल्ली १९७१, रु० ६·००

अनुक्रम :—विरामहीन अन्तर्यात्रा; चेतन का अपना द्वार; विपरीत ध्रुवों का समन्वय संगीत; अपना-अपना अँधेरा; धारणाओं की आग; अंधे मन का ज्वर; संकल्पों के बाहर ।

२. प्रेम है द्वार प्रभु का

(तेरह प्रवचनों का संकलन)— सं० स्वामी योग चिन्मय और निकलंक
आकार डिमाई, पृष्ठ २५६, दिल्ली १९७१, रु० ८·००

अन्तर्वस्तु : (१) भय या प्रेम ? (२) जीवन की कला, (३) आनन्द-खोज की सम्यक् दिशा, (४) यह अधूरी दिशा, (५) शिक्षा, महत्त्वाकांक्षा और युवा-पीढ़ी का विद्रोह, (६) महायुद्ध या महाक्रान्ति ? (७) शिक्षा में क्रान्ति, (८) नारी और क्रान्ति, (९) अन्तर्यात्रा के सूत्र, (१०) अहंकार, (११) क्या मनुष्य एक यंत्र है ? (१२) मित्र ! निद्रा से जागो, (१३) प्रेम है द्वार प्रभु का ।

३. कामयोग, धर्म और गाँधी

सं० डा० रामचन्द्र प्रसाद
पृष्ठ २२४ : मूल्य रु० ३·००

४. समुंद समाना बुंद में

सं० डा० रामचन्द्र प्रसाद
पृष्ठ २०४ : मूल्य रु० ७·००

५. सूली उपर सेज पिया की

(प्रेसमें)

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली : बनारस : पटना